उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

MAPS-118

अर्वाचीन राजनीतिक सिद्धान्त

खण्ड 1

प्रत्यक्षवाद और राजनीतिक सिद्धान्त

इकाई - 1 5

प्रत्यक्षवाद और तार्किक प्रत्यक्षवाद

इकाई -2 24

कार्ल आर. पॉपर 1902-1994

इकाई -3 37

जॉन डीवी का व्यवहारवाद

संरक्षक

प्रो० एम०पी० दुबे — कुलपति

प्रो० डी.पी. त्रिपाठी — कुलसचिव

पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड/विशेषज्ञ समिति)

डॉ० एम०एन० सिंह
निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज।

प्रो. संजय श्रीवास्तव
राजनीति विज्ञान विभाग
बी.एच.यू. वाराणसी

प्रो० एच०के० शर्मा
प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश

डॉ. के.डी. सिंह
राजनीति विज्ञान विभाग
हंडिया पी.जी. कालेज, इलाहाबाद

डॉ. दीपशिखा श्रीवास्तव
असि० प्रोफेसर (सं), राजनीतिक विज्ञान,
समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज।

पाठ्यक्रम लेखन

प्रो. संजय श्रीवास्तव
राजनीति विज्ञान विभाग
बी.एच.यू. वाराणसी
लेखक
खण्ड. 01
इकाई – 01, 02, 03

डॉ. ए.पी. सिंह
शैक्षणिक परामर्शदाता, राजनीतिक विज्ञान,
समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज।
लेखक
खण्ड. 02
इकाई – 01, 02, 03

डॉ. दीपशिखा श्रीवास्तव
असि० प्रोफेसर (सं), राजनीतिक विज्ञान,
समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज।
लेखक
खण्ड. 03
इकाई – 01, 02, 03

डॉ. के.डी. सिंह
राजनीति विज्ञान विभाग
हंडिया पी.जी. कालेज,, इलाहाबाद
लेखक
खण्ड. 04
इकाई – 01, 02, 03

प्रो० एच०के० शर्मा
प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश
लेखक
खण्ड. 05
इकाई – 01, 02, 03

डॉ. दीपशिखा श्रीवास्तव — **समन्वयक**

असि० प्रोफेसर (सं), राजनीतिक विज्ञान,
समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज।

संपादक

प्रो० एच०के० शर्मा
प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज– 2022

MAPS - 110 – अर्वाचीन राजनीतिक चिन्तन
ISBN:

सर्वाधिक सुरक्षित। इस सामग्री के किसी भी अंश को उत्तर प्रदेश राजर्षि टंडन मुक्त विश्वविद्याल की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में माइमोग्राफी (चक्रमुद्रण) द्वारा या किसी अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नही है।
उत्तर प्रदेश राजर्षि टंडन मुक्त विश्वविद्याल, प्रयागराज सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्यसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टंडन मुक्त विश्वविद्याल, की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।
नोट : पाठ्य सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आमडों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की ओर से विनय कुमार, कुलसचिव द्वारा पुनः मुद्रित एवं प्रकाशित २०२४

मुद्रक : चन्द्रकला यूनिवर्सल प्रा. लि. 42/7 जवाहरलाल नेहरू रोड, प्रयागराज.

PEPE-120

खण्ड परिचय–01 : प्रत्यक्षवाद और राजनीतिक सिद्धान्त

राजनीति सिद्धान्त के अध्ययन हेतु 1950 के दशक में वैज्ञानिक पद्धति (अनुभवमूलक तथा तार्किक पद्धति) पर विशेष बल दिया गया। 1953 में अमरीकी राजनीतिक वैज्ञानिक डेविड–ईस्टन ने व्यवहारवादी क्रान्ति के द्वारा इसे गति प्रदान की। पहली बार राजनीति सिद्धान्त के अन्तर्गत अपनायी जाने वाले इस अनुभवमूलक (Empirical) तथा तार्किक (Logical) पद्धति को प्रत्यक्षवाद की संज्ञा दी गयी। पारिभाषिक रूप में देखा जाय तो प्रत्यक्ष्वाद वह सिद्धान्त है जो केवल वैज्ञानिक पद्धति से प्राप्त ज्ञान को प्रासंगिक और प्रामाणिक मानता है। प्रत्यक्षवाद के अन्तर्गत यह मांग की जाती है कि सामाजिक विज्ञानों की प्रमाणिकता के लिए उसे प्राकृतिक विज्ञानों की पद्धति के अनुरूप ढालना चाहिए। प्रत्यक्षवाद के मुख्य प्रवर्तक आगस्त काम्टे ने इसके लिऐ क्रमशः तीन सैद्धान्तिक अवस्थाओं को बतलाया है जिसमें धर्म मीमांसीय अवस्था को ज्ञान की पहली अवस्था कहा तत्वमीमांसीय अवस्था को मध्यवर्ती और अंतिम अवस्था वैज्ञानिक प्रत्यक्षवाद को कहा है।

परन्तु बीसवीं सदी के प्रारम्भ में प्रत्यक्षवाद की उपर्युक्त मान्यताओं को जिस विचार समूह ने अस्वीकार किया उसे नवप्रत्यक्षवाद और तार्किक प्रत्यक्षवाद कहा गया। इस तार्किक प्रत्यक्षवाद को एक आन्दोलन का रूप देने में 'विएना सर्किल' ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसके अन्तर्गत प्रत्यक्षवाद द्वारा अपने तत्वमीमांसा के अन्तर्गत घटनाओं को अमूर्त तत्वों तथा अनुमानों के आधार पर को जाने वाली व्याख्या पर असहमति प्रकट की गयी। तार्किक प्रत्क्षवादियों का विचार था कि जिन प्रश्नों का वैज्ञानिक उत्तर नहीं दिया जा सकता वे निरर्थक होते है अतः राजनीति सिद्धान्त का अध्ययन कठोर वैज्ञानिक पद्धतियों के आधार पर प्रासंगिक हो सकता है। प्रत्यक्षवाद और तार्किक प्रत्यक्षवाद के अन्तर्गत जॉन डीवी और कॉल पापर का विशेष योगदान रहा है।

इस खण्ड के अन्तर्गत हम समकालीन राजनीतिक सिद्धान्त की निरन्तर बढ़ती हुई महत्ता को देखते हुए विशेष रूप से प्रत्यक्षवाद का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे। समकालीन राजनीतिक सिद्धान्त के विकास में प्रत्यक्षवाद की भूमिका का भी यहॉ विश्लेषण किया जायेगा।

इकाई–01 में प्रत्यक्षवाद और तार्किक प्रत्यक्षवाद पर ही विस्तारपूर्वक चर्चा की गयी है। इसके अन्तर्गत प्रत्यक्षवाद की उत्पत्ति, वैज्ञानिक पद्धति और उसकी मूलभूत मान्यताओं तथा प्रत्यक्षवाद के विकास में आगस्ट काम्टे की

भूमिका का विश्लेषण किया गया है। इसके साथ ही प्रत्यक्षवाद एवं तार्किक प्रत्यक्षवाद में अन्तर को दर्शाते हुए उसकी एक समीक्षा भी प्रस्तुत की गयी है।

इकाई–02 में कार्ल पॉपर द्वारा प्रत्यक्षवादी पद्धति के विकास में उनकी भूमिका पर विस्तृत चर्चा की गयी है। कार्ल पॉपर का उत्तरोत्तर परिवर्तन का सिद्धान्त तथा इतिहासवाद के खण्डन का सिद्धान्त से सम्बन्धित एक विश्लेषण यहाँ प्रस्तुत किया गया है। कार्ल पॉपर द्वारा खुले समाज के शत्रुओं (प्लेटो, हीगल और मार्क्स) से सम्बन्धित अवधारणा का समीक्षात्मक अवलोकन भी प्रस्तुत किया गया है।

इकाई 01: प्रत्यक्षवाद और तार्किक प्रत्यक्षवाद

इकाई की रूपरेखा

1.0 प्रस्तावना

1.1 उद्देश्य

1.2 'विज्ञान' और 'वैज्ञानिक पद्धति'

1.3 वैज्ञानिक पद्धति की मूलभूत मान्यताएं

1.4 प्रत्यक्षवाद की उत्पत्ति

1.5 विज्ञानों का श्रेणीतंत्र

1.6 कॉम्टे के प्रत्यक्षवाद की आलोचना

1.7 नव प्रत्यक्षवाद और तार्किक प्रत्यक्षवाद

1.8 विज्ञान एवं वैज्ञानिक पद्धति एवं प्रत्यक्षवाद को चुनौती : पॉपर एवं कुह्न

1.9 टॉमस सेमुअल कुह्न (Thomas Samuel Kuhn) द्वारा प्रत्यक्षवाद की आलोचना

1.10 समालोचना

1.11 सार संक्षेप

1.12 परिभाषाएं

1.13 **प्रश्न**

- **1.13.1** लघुउत्तरीय प्रश्न
- **1.13.2** दीर्घ उत्तरीय प्रश्न
- **1.13.3** वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1.0 प्रस्तावना

प्रत्यक्षवाद वह सिद्धान्त है, जो केवल वैज्ञानिक पद्धति (Scientific Method) से प्राप्त ज्ञान को उपयुक्त (Relevant) विश्वस्त (Reliable) और प्रामाणिक (Valid) मानता है। प्रत्यक्षवाद के समर्थक यह मांग करते हैं कि सामाजिक विज्ञानों (Social Sciences) की सामग्री को प्रामाणिक रूप देने के लिए उसे प्राकृतिक विज्ञानों (Natural Science) के पद्धतिविज्ञान (Methodology) के अनुरूप ढालना जरूरी है।

1.1: उद्देश्य– इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप

- अनुभवमूलक कथन, तार्किक कथन तथा मूल्यपरक कथन में अन्तर कर सकेंगे।
- वैज्ञानिक पद्धति तथा प्रत्यक्षवादी विचारधारा तथा उसके पीछे निहित तर्कों की विस्तृत विवेचना कर सकेंगे।
- तार्किक प्रत्यक्षवाद किस प्रकार प्रत्यक्षवाद में संशोधन करता है, यह बताने में भी आप सक्षम होगे।
- प्रत्यक्षवाद को समझने से पूर्व यह अवष्यक प्रतीत होता है कि हम सर्वप्रथम विज्ञान और वैज्ञानिक पद्धति को समझें।

12 : "विज्ञान" और वैज्ञानिक पद्धति (Science & Scientific Method)

मूल रूप में विज्ञान, जगत् और वस्तु/वस्तुओं की खोज है। वानडायक ने कहा कि विज्ञान उस ज्ञान से सम्बन्ध रखता है, जो हो चुका है, या है, या होगा, चाहे किसी परिस्थिति में कोई भी 'चाहिए' (Ought) क्यों न हो। वह यथार्थ (Reality) के विवेचन की विधि है, इसलिए प्रेक्षण या अवलोकन पर आधारित है तथा उसकी सीमाएँ बँधी हुई हैं। जिसका अवलोकन नहीं किया जा सकता, वह विज्ञान की अध्ययन–सामग्री नहीं बन सकता, किन्तु यहाँ अवलोकन या प्रेक्षण का अर्थ केवल नेत्रों द्वारा देखना मात्र न होकर, सभी ज्ञानेन्द्रियों या कम से कम एक या दो के द्वारा उस वस्तु का ज्ञान है। इसमें वस्तु, घटना, क्रिया व प्रक्रिया के साथ संलग्न नाम, भाव, विचार आदि सभी आ जाते हैं। इस प्रकार प्रेक्षण का ज्ञान है।

विज्ञान का मूलाधार प्रेक्षण है। उसकी विशिष्ट प्रेक्षणीयता को वैज्ञानिक पद्धति कहा जाता है। किसी अनुशासन को विज्ञान को बनाने के लिए उसकी विषय–वस्तु नहीं, अपितु वैज्ञानिक पद्धति महत्वपूर्ण होती है। लुण्डबर्ग (George A. Lundberg) ने कहा विज्ञान, पद्धति से माना जाता है, विषय–वस्तु से नहीं।

व्यापक दृष्टिकोण से वैज्ञानिक पद्धति विश्व के प्रति एक चित्तवृत्ति (Attitude) एक दृष्टि–बिन्दु जाँचशील ज्ञान का व्यवस्थित निकाय तथा खोज करने का एक तरीका है। आगस्त कॉम्ते (August Comte) के अनुसार,

समस्त जगत कतिपय शाश्वत प्राकृतिक नियमों से व्यवस्थित एवं निर्देशित होता है। इन नियमों को धार्मिक एवं आध्यात्मिक आधारों का सहारा लिए बिना समझा और जाना जा सकता है।

सरल शब्दों में, वैज्ञानिक पद्धति एक ऐसी प्रक्रिया है जिससे किसी वस्तु या घटना को जैसी वह है, उसी रूप में उतना ही जाना जाता है, न कम और न अधिक। इसे जानने की सत्यता या प्रामाणिकता के लिए आवश्यक है कि उस प्रक्रिया को काम में लेकर दूसरे लोग भी वैसा ही जाने।

वैज्ञानिक–पद्धति प्रेक्षण (Observation) पर बल देती है तथा तथ्यों या विचारों की वास्तविक परीक्षा करती है। वह ऐसे प्रयोग करने या आदर्श परिस्थितियाँ तैयार करने का प्रयास करती है जिनसे उन विचारों की जाँच हो सके। वह क्रमशः ऐसे उपकरणों एवं प्रविधियों का अविष्कार करती हैं जिनसे अधिक निश्चित रूप से जाँच या अध्ययन के समय वह शोधक को अपने निजी मूल्यों का बहिष्कार करने के लिए बाध्य करती है।

1.3 वैज्ञानिक पद्धति की मूलभूत मान्यताएँ

वैज्ञानिक–पद्धति शोधक या अध्येता को अपने निजी मूल्यों को दूर रखने का आग्रह करती है, किन्तु स्वयं उसके अपने मूल्य होते हैं तथा वह इन मूल्यों, धारणाओं या मान्यताओं का त्याग नही कर सकता। इन मूल्यों का त्याग कर देने पर वैज्ञानिक–पद्धति असम्भव, निरर्थक एवं अनुपयोगी हो जाती है ।

इन मान्यताओं के अनुसार, (i) यह जगत् (Universe) बोधगम्य है । इस जगत् में रहने वाले मनुष्यों, समूहों, संस्थाओं तथा उनके अन्तःसम्बधों एवं प्रक्रियाओं को जाना जा सकता है। (ii) मनुष्यों में समवैयक्तिकता (Consubjectivity) पायी जाती है । (iii) प्रकृति के आचरण में व्यवस्था है, उसमें ऋतु, काल व जलवायु सम्बन्धी नियमितताएँ पायी जाती हैं। (iv) मनुष्यों में न्यूनाधिक मात्रा में बोध या समझ (Understanding) होती है। उसमें किसी को सत्य (True) या असत्य (False) समझने की थोड़ी बहुत स्वतंत्रता होती है। तथ्यात्मक सत्य का अनुसंधान उसका स्वसभाविक कर्म होता है। नये तथ्यों के प्रकाश में वह अपने ज्ञात 'सत्य' को बदलने के लिये तैयार रहता है ।

यह बात महत्त्वपूर्ण है कि स्वयं वैज्ञानिक पद्धति दार्शनिक चिंतन (Philosphical Thinking) की देन है। दार्शनिक चिंतन के अंतर्गत कुल मिलाकर तीन तरह के कथन को मान्यता दी जाती है

1. अनुभवमूलक कथन–

जैसे कि हम क्या देखते, सुनते या अनुभव करते हैं? हम अपनी ज्ञानेंद्रियों (Sense Organs) (आंख, कान, नाक, जिह्वा, और त्वचा) से जो भी निरीक्षण करते है, वह सब अनुभवमूलक कथन के रूप में व्यक्त किया जाता है। यह बात महत्वपूर्ण है कि सामान्य अवस्था में सब मनुष्यों में निरीक्षण (Observation) की एक जैसी क्षमता पाई जाती है, अतः हम अपने अनुभव से मिलाकर उसकी पुष्टि और सत्यापन कर सकते हैं।

2. तार्किक कथन

जैसे कि 'दो और दो मिलकर चार होते है'। हम अपनी तर्कबुद्धि (Reason) से जिन बातों पर पूरा विश्वास कर सकते है, वह सब तार्किक कथन के रूप में व्यक्त किया जाता है। यहां भी सामान्य अवस्था में सब मनुष्य एक जैसी तर्कबुद्धि से मार्गदर्शन प्राप्त करते हैं, अतः हम अपने कथन को तर्क की कसौटी पर कसकर उसकी पुष्टि और सत्यापन कर सकते हैं।

3. मूल्यपरक कथन

जैसे कि 'शुभ और अशुभ' 'उचित और अनुचित' 'सुन्दर और कुरूप क्या है। हमें अपना जीवन कैसे जीना चाहिए, मानव–जीवन और संपूर्ण सृष्टि का प्रयोजन (Purpose) क्या है, इत्यादि। प्रत्यक्षवादियों के अनुसार, ये व्यक्तिगत या सामूहिक निर्णय के विषय है, और इनकी जांच करने की कोई विश्वस्त विधि या अंतिम कसौटी नही है। अतः ऐसे कथन पर मतभेद पैदरा होना स्वाभाविक है।

प्रत्यक्षवाद (Positivism) से जुड़ी वैज्ञानिक पद्धति के अंतर्गत केवल 'अनुभवमूलक' और 'तार्किक' कथन को मान्यता दी जाती है, क्योंकि उसकी पुष्टि और सत्यापन में कोई बाधा नही आती। प्रत्यक्षवाद के समर्थक यह तर्क देतै है कि मूल्यपरक कथन केवल भावात्मक अधिमान्यता (Emotional Preference) का विषय है जिसका चरित्र आत्मपरक (Subjective) है, वस्तुपरक (Objective) नहीं। अनुभवमूलक और तार्किक स्तर पर इसकी पुष्टि नही की जा सकती। वैज्ञानिक पद्धति के समर्थक ऐसे किसी कथन को मान्यता नहीं देते जिसकी वैज्ञानिक स्तर पर पुष्टि नहीं की जा सकती। अतः वे मूल्य–निरपेक्ष उपागम (Value Free Approach) का समर्थन करते है।

1.4 प्रत्यक्षवाद की उत्पत्ति

मूलतः प्रत्यक्षवाद अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी के यूरोप का एक दार्शनिक आंदोलन था, जिसने वैज्ञानिक दृष्टिकोण को बढ़ावा दिया। उन्नीसवीं

शताब्दी के फ्रांसीसी दार्शनिक ऑगस्ट कॉम्टे 1798—1857 को प्रत्यक्षवाद का मुख्य प्रवर्तक माना जाता है। कॉम्टे की प्रसिद्ध कृति 'द पॉजिटिव फिलॉसफी' प्रत्यक्षवादी दर्शन 1830—42 के अनुसार, मानवीय ज्ञान की प्रत्येक शाखा को अपनी प्रौढ़ावस्था तक पहुँचने के पहले तीन सैद्धांतिक (Theoretical) या पद्धतिवैज्ञानिक (Methodological) अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है।

ये अवस्थाएं हैः

1. **धर्ममीमांसीय अवस्था —**

   इसमें सब घटनाओं की व्याख्या अलौकिक (Supernatural) या आध्यात्मिक शक्तियों (Spiritual Forces) के संदर्भ में दी जाती है; यह ज्ञान की आरंभिक अवस्था हैः

2. **तत्त्वमीमासीय अवस्था :—**

   इसमें सब घटनाओं की व्याख्या अमूर्त्त तत्त्वों और अनुमान के आधार पर दी जाती है। यह ज्ञान की मध्यवर्ती अवस्था है। यह नकारात्मक अवस्था है जिसका अपना ऐतिहासिक महत्व है। इसमें संसार तथा सामाजिक जीवन के बारे में पुरानी संकल्पनाओं की आलोचना करके उन्हें ध्वस्त किया जाता है। यह अवस्था प्रत्यक्षवादी दर्शन या प्रत्यक्षवाद की स्थापना के लिए आवश्यक भूमिका तैयार करती है क्योंकि नई व्यवस्था स्थापित करने के लिए पुरानी व्यवस्था के अवशेषों को मिटाना जरूरी होता है।

3. **वैज्ञानिक—प्रत्यक्षवादी अवस्था—**

   इसमें यह मानते है कि सारी घटनाएं निर्विकार प्राकृतिक नियमों से बँधी हैं, निरीक्षण (Observation) और प्रयोग क्रिया (Experimentation) की सहायता से इन नियमों का पता लगा सकते हैं। इस पद्धति के अंतर्गत यथार्थ कार्य—कारण संबंधों (Real Causal Relations) का ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

कॉम्टे के अनुसार विज्ञान (Science) और दर्शन (Philosophy) एक श्रेणी के ज्ञान को व्यक्त करते है जिसे धर्ममीमांसा (Theology) और तत्वमीमांसा (Metaphysics) से पृथक् करके पहचान सकते हैं। फिर, धर्ममीमांसा और विज्ञान एक दूसरे से इतने भिन्न है कि इनके बीच की दूरी तय करने के लिए तत्वमीमांसा के पुल को पार करना जरूरी है। इसके अलावा, विज्ञान का

सरोकार केवल तथ्यों (Facts) के ज्ञान से नही है; वह मूल्यों (Values) का ज्ञान भी प्रदान करता है। दूसरे शब्दों में, 'सत्य' का ज्ञान होने पर 'कर्त्तव्य' का ज्ञान अपने आप प्रकट होता है। इस दृष्टि से कॉम्टे का विचार प्राचीन यूनानी दार्शनिक सुकरात की परंपरा को आगे बढ़ाता है।

1.5 विज्ञान का श्रेणीतंत्र

कॉम्टे के अनुसार भिन्न–भिन्न विज्ञान–चाहे वे प्राकृतिक विज्ञान (Natural Science) हो या सामाजिक विज्ञान (Social Science) हो–एक ही ढंग से विकसित होते हैं। परन्तु सब विज्ञानों की विषय–वस्तु एक जितनी जटिल नही होती, अतः भिन्न–भिन्न विज्ञान, भिन्न–भिन्न समय पर अपनी प्रौढ़ावस्था में पहुँचते हैं। इस तरह भिन्न–भिन्न विज्ञान एक प्रकृति और तर्कसंगत क्रम से विकसित होते हैं। सबसे पहले वह विज्ञान विकसित होता है (क) जो सबसे कम जटिल हो या जिसका सरोकार सबसे सामान्य घटनाओं से हो, और (ख) जो मानव–जीवन के विश्लेषण से अत्यंत दूर हो। सबसे अंत में वह विज्ञान विकसित होता है (क) जो सबसे अधिक जटिल हो, और (ख) जो मानव जीवन के साथ निकट से जुड़ा हो। इस आधार पर कॉम्टे ने समस्त विज्ञानों को एक विकास–क्रम के अनुसार व्यवस्थित किया है, जिसे 'विज्ञानों का श्रेणीतंत्र' कहा जाता है।

'विज्ञानों के श्रेणी की बुनियाद गणित है। गणित अन्य विज्ञानों से भिन्न है क्योंकि (क) इसका सरोकार अत्यंत सामान्य और अमूर्त्त विषयों से है; (ख) यह सबसे महत्वपूर्ण विज्ञान है जो संपूर्ण विज्ञान एवं दर्शन का आध ाार प्रस्तुत करता है; और (ग) इसमें शुरू से ही वैज्ञानिक–प्रत्यक्षवादी पद्धति अपनाई जाती है; अतः इसे अपनी प्रौढ़ावस्था में पहुँचने के लिये ज्ञान के विकास की तीन अवस्थाओं से नही गुजरना पड़ता है। इसके बाद जैसे–जैसे इस श्रेणीतंत्र में आगे बढ़तें है (क) प्रत्येक विज्ञान की विषय–वस्तु अधिक जटिल होती जाती है। (ख) यह सबसे महत्वपूर्ण विज्ञान है जो सम्पूर्ण विज्ञान एवं दर्शन का आधार प्रस्तुत करता है; और (ग) इसमें शुरू से ही वैज्ञानिक–प्रत्यक्षवादी पद्धति अपनायी जाती है; अतः इसे अपनी प्रौढ़ावस्था में पहुँचने के लिए ज्ञान के विकास की तीन अवस्थाओं से नहीं गुजरना पड़ता है इसके बाद जैसे–जैसे इस श्रेणीतंत्र में आगे बढ़ते हैं (क) प्रत्येक विज्ञान की विषय–वस्तु अधिक जटिल होती जाती है, (ख) उसमें वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग कठिन से कठिनतर हो जाता है; और (ग) मानव–जगत् से उसकी

विषय–वस्तु का सरोकार बढ़ता जाता है। इस दृष्टि से कॉम्टे ने विज्ञानों के विकास का यह क्रम निर्धारित किया हैः

1. गणित
2. ज्योतिर्विज्ञान
3. भौतिक विज्ञान
4. रसायन विज्ञान
5. शरीर–क्रिया विज्ञान
6. समाजिक विज्ञान

कॉम्टे का विश्वास है कि इस क्रम में बढ़ती हुई कठिनता के बावजूद प्रत्येक विज्ञान को वैज्ञानिक–प्रत्यक्षवादी स्तर पर लाया जा सकता है। इस दृष्टि से प्रत्येक परवर्ती विज्ञान को अपने पूर्ववर्ती के स्तर पर लाने का प्रयत्न करना चाहिए, और यह प्रयत्न तब तक जारी रखना चाहिए जब तक समाजविज्ञान भी गणित जितनी यथातथ्यता के स्तर पर न आ जाए।

यह बात महत्वपूर्ण है कि जहां कॉम्टे ने सामाजिक विज्ञान में प्राकृतिक विज्ञानों की पद्धति को अपनाने का इतना प्रबल समर्थ किया, वहाँ उसने तथ्यों (Facts) और मूल्यों के विचार क्षेत्रों के बीच कोई दीवार खड़ी नहीं की। उसने प्रगति के सिद्धांत में आस्था व्यक्त करते हुए यह विश्वास प्रकट किया कि प्रत्यक्षवाद पर आधारित समाजिक विज्ञान हमें सामाजिक संगठन के लिए उपयुक्त मूल्यों की सूझ–बूझ प्रदान करेगा, और सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए मार्गदर्शन भी देगा।

1.6 कॉम्टे के प्रत्यक्षवाद की आलोचना

कॉम्टे के प्रत्यक्षवाद (ज्ञान केवल इन्द्रियानुभावों से ही प्राप्त किया जा सकता है) की आलोचना प्रत्यक्षवाद के आन्तरिक और बाह्य दोनों ही क्षेत्रों में हुई। प्रत्यक्षवाद के अन्दर ही तार्किक प्रत्यक्षवाद नामक शाखा का बीसवीं सदी के आरम्भ में प्रादुर्भाव हुआ। इसका दावा था कि विज्ञान तर्कसंगत तथा अवलोकनीय तथ्यों पर आधारित होता है और किसी भी कथन की सत्यता इन्द्रियानुभव द्वारा उसकी पुष्टि में निहित होती है। प्रत्यक्षवाद के बाहर भी कुछ विचार पद्धतियाँ विकसित हुई। इनमें प्रमुख थीं– प्रतीकात्मक अन्तर्क्रियावाद (Symbolic Interactionsim), घटनाक्रियावाद (Phenomenology) प्रजाति–पद्धति विज्ञान (Ethnomethodology) इन विचार पद्धतियों ने प्रत्यक्षवादी

कार्य प्रणाली और इसके द्वारा किए गए समाजिक के यथार्थ बोध (Perception) पर प्रश्न चिह्न लगा दिये

फ्रेंकफर्ट और मार्क्सवादी विचार पद्धतियों ने भी प्रत्यक्षवाद की तीव्र आलोचना की। किन्तु, 1950 व 1960 के दशकों के बाद से विद्वानों द्वारा अनुभववाद को अधिक स्वीकार किया जाने लगा। अनुसंधान में नवीन चरण उभर कर आये हैं– उत्तर–अनुभववादी अनुसंधान, जिसका यह विचार है कि केवल वैज्ञानिक पद्धति ही ज्ञान, सत्य और वैधता की स्रोत नही है। अतः आज समाजशास्त्रीय कार्यप्रणाली प्रत्यक्षवादी कार्यप्रणाली पर आधारित नही है।

1.7 नव–प्रत्यक्षवाद और तार्किक प्रत्यक्षवाद

प्रत्यक्षवाद के परवर्ती समर्थकों ने तथ्य–मूल्य–संबंध के बारे में कॉम्टे की मान्यताओं को स्वीकार नही किया। अतः बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में इस विषय पर जो नया दृष्टिकोण उभर कर सामने आया, उसे नव–प्रत्यक्षवाद या तार्किक प्रत्यक्षवाद की संज्ञा दी जाती है। इस दृष्टिकोण के उन्नायकों में जर्मन समाजवैज्ञानिक मैक्स वेबर (1864– 1920) और 'विएना सर्किल' के सदस्यों का विशेष योगदान रहा है। मैक्स वेबर ने अपने प्रसिद्ध निबंध 'साइंस एज ए वोकेशन' (विज्ञान एक व्यवसाय) (1919) के अन्तर्गत यह विचार व्यक्त किया: ''विज्ञान हमें इस प्रश्न का उत्तर नही देता कि हमें क्या करना चाहिए , और हमें किस तरह को जीवन जीना चाहिए, और हमें किस तरह का जीवन जीना चाहिए? शैक्षिक ज्ञान हमें सृष्टि के अभिप्राय की व्याख्या करने में कोई सहायता नही देता। इसके बारे में परस्पर–विरोधी व्याख्याओं में सामंजस्य स्थापित नही किया जा सकता।'' इसी तरह टी. डी. वैल्डन ने अपनी चर्चित कृति' वोकेबुलरी ऑफ पॉलिटिक्स' (राजनीति की शब्दावली) (1953) के अंतर्गत वेबर की इस मान्यता को दोहराया कि कोई भी राजनीति–दर्शन लोगो की अपनी–अपनी अभिरूचि का विषय है। कोई व्यक्ति अपनी अभिरूचि बता तो सकता है, परंतु उस पर तर्क–वितर्क करने से कोई फायदा नही।

तार्किक प्रत्यक्षवाद को बाकायदा एक आंदोलन का रूप देने में 'विएना सर्किल' ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई यह संप्रदाय विएना विश्वविद्यालय के मोरिटज शिलक (1882–1936) के नेतृत्व में 1920 के दशक में विकसित हुआ। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में यह लुड्विख विट्‌जेंस्टाइन (1889–1951) के नेतृत्व में आगे बढ़ा और ऑक्सफर्ड विश्वविद्यालय में ए.जे. एयर (1910–89) ने इसके विकास में योग दिया। तार्किक प्रत्यक्षवादियों ने यह तर्क दिया कि चिंतनमूलक

दर्शन केवल ऐसे प्रश्नों से सरोकार रखता है जिन्हें अनुभवमूलक दृष्टि से नही परखा जा सकता—जैसे कि सत्य, शिव और सुन्दर क्या है? उनका कहना था कि जिन प्रश्नों का वैज्ञानिक उत्तर नही दिया जा सकता, ऐसे प्रश्न ही निरर्थक हैं; वे केवल छद्म प्रश्न है। हमें केवल उसी ज्ञान पर विश्वास करना चाहिए जिसे प्राकृतिक विज्ञान की कठोर पद्धति के माध्यम से प्राप्त किया गया हो। अतः उन्होंने तत्वमीमांसा में निहित ज्ञान का विशेष रूप से खंडन किया।

प्रत्यक्षवाद का प्रभाव का विधि, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, आदि सभी क्षेत्रों पर पड़ा। तर्कशास्त्र से मनोविज्ञान की दिशा में चले जाने पर भी उनकी इन परानुभविक धारणाओं में कोई अन्तर नहीं आता और वे ही तथ्यों के प्रत्यक्षण का आधार बनी रहती है। इस प्रकार प्रत्यक्षवाद भी मूल्यभारित हो जाता है।

तार्किक प्रत्यक्षवादियों ने इन नैतिक पूर्वधारणाओं और मूल्यों को विश्लेषण—क्षेत्र को दूर रखने में असाधारण योगदान दिया है। ये 1928 में वियना—वृत के रूप में मोरिज श्लिक के नेतृत्व में संगठित हुए थें। इनमें से रूडोल्फ कारनैप, ओटो न्यूरथ, एच. हीगल, पी. फ्रैन्क आदि अधिक प्रसिद्ध हुए हैं। इस दार्शनिक—सम्प्रदाय के प्रति विज्ञान, गणित तथा समाजशास्त्र के विद्वान् भी अत्यधिक आकर्षित हुए। इसकी अनेक शाखाएँ पोलैण्ड, जर्मनी और ग्रेट ब्रिटेन में खोली गयीं। महायुद्ध—काल में प्रायः सभी तार्किक प्रत्यक्षवादियों को यूरोप से भागकर अन्यत्र शरण लेनी पड़ी। संयुक्त—राज्य अमरीका में, कारनैप, न्यूरथ और रीशनवाश ने ड्यूवी, रसल, बोहर मारिस आदि के साथ मिलकर 'विज्ञान—की एकता' आन्दोलन चलाया और एक विश्व—कोष प्रकाशित किया। इस सम्प्रदाय के विचारक भी अनेक शाखाओं और उपशाखाओं में बँट गये। स्वयं तार्किक प्रत्यक्षवाद अनेक नामों से पुकारा जाने लगा यथा तार्किक अनुभववाद, वैज्ञानिक अनुभववाद, बैद्धिक अनुभववाद आदि। तार्किक प्रत्यक्षवाद के पक्ष हैं— (1) ध्वंसात्मक, तथा (2) रचनात्मक। इसकी विचारधारा में ह्यूम, मिल, मैक, जेम्स आदि के साथ—साथ माइनकेर आइन्सटीन, रसेल, ह्वाइटहैड, मूर, विटगैन्स्टीन आदि के विचारों को शामिल किया जाता है। अपने ध वंसात्मक रूप में तार्किक प्रत्यक्षवादी अध्यात्मशास्त्र नैतिक मूल्यों आदि की असम्भावना का विवेचना करते हैं। वे आनुभविक पर्यवेक्षण तथा अनुभव से परे किसी भी वास्तविकता को नहीं मानते। उनके अनुसार, समस्त ज्ञान अन्ततोगत्वा ऐन्द्रिक—अनुभवों पर तथा भाषा के तार्किक विश्लेषण पर आश्रित होता है। ये अर्थ के सत्यापनात्मक—सिद्धांत पर विश्वास करते हैं। परानुभविक ज्ञान के वे 'सत्य' या 'असत्य' कहने के बजाय 'निरर्थक' कहते हैं। उनके अनुसार यदि

ज्ञान प्रत्यक्षतः या सिद्धांत अथवा सम्भाव्यात्मक रूप से पर्यवेक्षणीय होना चाहिए।

तार्किक प्रत्यक्षवादियों का रचनात्मक रूप यह है कि वे विज्ञान की विभिन्न शाखाओं के परिणामों का समेकन तथा तार्किक निर्वचन करके उसे एक शाश्वत भाषा प्रदान करते हैं। ये प्रागनुभविक नियमों के आधार पर विचार–व्यवस्थाएँ बनाने से दूर रहते हैं। ऐसी व्यवस्थाओं से वे कोई भी निष्कर्ष निकालना पसन्द नही करते, वे दर्शन को 'विज्ञानों के विज्ञान' के रूप भी स्वीकार नही करते। वे केवल आनुभविक विवरणों का तार्किक विश्लेषणमात्र करते हैं। वे सभी विज्ञानो ंको वस्तुनिष्ठ–भाषा या अधिभाषा में अभिव्यक्त कर देना चाहते हैं। इनके तीन रूप हैं– प्रथम रूप विभिन्न सामाजिक सम्बन्धों से भाषा की भूमिका का विवेचन करता है। द्वितीय रूप वस्तु तथा उसकी संज्ञाओं के मध्य सुनिश्चित अर्थों का पता लगाता है। तीसरा रूप विभिन्न प्रतीकों और संकेतों का विश्लेषण करता है।

न्यूरथ, कारनैप तथा उनके सहयोगियों के अनुसार, विश्लेषण तथा रूपात्मी कारण के द्वारा समस्त विज्ञानों की भाषा को एक सामान्य भाषा या भौतिक–भाषा में परिवर्तित किया जा सकता है। न्यूरथ के मतानुसार, प्रत्येक वैज्ञानिक तथ्य को स्थान, समय भार आदि की भाषा में परिमाणात्मक ढंग से बताया जा सकता है। इन शाश्वत–विज्ञानवादियों के अनुसार जीवन और मस्तिष्क सम्बन्धी तथ्यों को भी ज्ञात किये जाने के पूर्व और उत्तर काल में उपस्थित दशाओं तथा परिणामों के आधार पर स्थान, समय और मापन की भाषा में अभिव्यक्त किया जा सकता है। व्यवहारवादिता तथा प्रयोगात्मक मनोविज्ञान सम्बन्धी अध्ययन इसी प्रकार किये जाते हैं। इन्हीं धारणाओं को आगे चलकर समाजशास्त्र, जीवशास्त्र आदि ने काम में लिया है। जेस्टाल्ट मनोविज्ञान ने उनकी व्यष्टि रीति से अध्ययन करने की प्रक्रिया को समग्रात्मक विश्लेषण में बदल दिया। इस प्रकार इन प्रत्यक्षवादियों का सम्बन्ध कालान्तर में व्यवहारवादियों से जुड़ गया। वे अनुभव के आंतरिक जगत में पाये जाने के बजाय बाहरी व्यवहार, भाषा आदि तक ही अपना ध्यान केन्द्रित रखने लगे। प्रत्यक्षवादियों के अनुसार शब्दों को पर्यवेक्षणीय व्यवहार के रूप में बताकर, ज्ञान को 'अन्तर्वैयक्तिक रूप से संचारणीय' बनाया जा सकता है अर्थात् उसे भौतिक–शब्दावली में अभिव्यक्त करके यथावत् एक व्यक्ति के मस्तिष्क से दूसरे व्यक्ति के मस्तिष्क तक ले जाने योग्य बनाया जा सकता है। परन्तु रसेल ने इस दृष्टिकोण के साथ सहानुभूति रखते हुए भी उसे अतिरंजित बनाया है।

प्रत्यक्षवाद और तार्किक प्रत्यक्षवाद का राजनीति के अध्ययन पर भी गहरा प्रभाव पड़ा और वह क्रमशः अधिक अनुभवात्मक होने लगा। इस अनुभववाद को वाल्टर बैजहाट, जेम्स ब्राइस, ग्राहम बालास, जार्ज केटलिन, चार्ल्स बियर्ड, ए0 एल0 लावेल, आर्थर बेन्टले आदि के विश्लेषणों में देखा जा सकता है। संयुक्त–राज्य अमेरिका में इस प्रवृत्ति को चार्ल्स ई0 मेरियम के व्यक्तिगत नेतृत्व के माध्यम से सर्वाधिक बल मिला और प्रसिद्ध शिकागों–सम्प्रदाय की स्थापना हुई। 1925 में प्रकाशित उसकी पुस्तक 'New Aspects of Politics' (राजनीति के नवीन पक्ष) अनुभववादियों की बाइबिल बन गयी। मेरियम ने मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, समाज मनोविज्ञान, भूगोल, मानवजाति–विज्ञान, जीवशास्त्र और सांख्यिकी की उपलब्धियों एवं पद्धतियों पर अधिक ध्यान देने पर बल दिया। राजनीति के अध्ययन में संख्यात्मक पद्धतियो का प्रयोग होने लगा। 'शिकागों–सम्प्रदाय' से सम्बद्ध राजवेत्ताओं में लओनार्ड ह्वाइट, हेरोल्ड, ग्रोस्नैल, क्वींसी राइट, हेरोल्ड लासवैल, फ्रीडरिक शूमां, वी0ओ0 काइ, ग्रैब्रील आमंड, एवरी लीसरन, हर्बर्ट साइमन डेविड ट्रूमैन अधिक प्रसिद्ध हैं। 'व्यवहार वादी–क्रांति इन्ही राजवैज्ञानिकों के संयुक्त प्रयासों का परिणाम मानी जाती है, किन्तु उसका वास्तविक प्रसार द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् ही हुआ है। इस दिशा में, यूरोपीय समाजशास्त्रियों, जैसे, कॉम्टे, दुर्खीम तथा मैक्स वैबर और सुप्रसिद्ध मनोवेत्ता फ्रायड का योगदान भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

1.8 विज्ञान एवं वैज्ञानिक पद्धति एवं प्रत्यक्षवाद को चुनौतीः पॉपर एवं कुह्न

कार्ल रेमंड पॉपर 1902–1994 को बीसवीं शताब्दी के विज्ञान के महानतम दार्शनिकों में गिना जाता है। इसके अलावा उसे सामाजिक–राजनैतिक दर्शनशास्त्री, स्वघोषित विवेची–बुद्धिवादी, विज्ञान में संशयवाद, रूढ़िवाद एवं सापेक्षवाद का घोर विरोधी, 'खुले समाज' का प्रतिबद्ध प्रवक्ता और सर्वाधिकारवाद के समस्त रूपों का अथक आलोचक माना जाता है।

कार्ल पॉपर ने किसी विषय को 'विज्ञान' मानने के लिए वैज्ञानिक प्रविधियों अवलोकन, सत्यापन आदि को भ्रमपूर्ण माना है। वह विज्ञान को गैर–विज्ञान से अलग रखने के लिए असत्यनन् (Falsifiability) को आधार बनाता है। 'असत्यनन्' का अर्थ है झूठा या असत्य ठहराये जा सकने योग्य। वैज्ञानिक सिद्धांत खण्डनीय, असिद्धनीय या असत्यननीय होता है। वह डेविड ह्यूम द्वारा प्रतिपादित आगमन (Induction) की आलोचना को स्वीकार करता है। किन्तु

उसका दृढ़ विचार है कि विज्ञानी (Scientist) द्वारा आगमन का कभी उपयोग नही किया जाता है।

पॉपर का वैज्ञानिक सिद्धांत वस्तुतः निषेधपरक (Prohibitive) है। उसमें विशिष्ट घटनाओं का निषेध है। उसमें जाँच और असत्यनन् तो है पर सत्यापन नही है। वह तथ्यों पर खड़ा नही होकर समनुकूलता पर स्थित है। समनुकूलता के आधार वह असत्य होने अथवा अधिक श्रेष्ठ सिद्धांत के आ जाने तक सर्वोत्तम उपलब्ध सिद्धांत के रूप में बना रह सकता है।

पॉपर के मत में वैज्ञानिक नियम पूरी तरह सत्यापनीय (या तथ्यानुकूल) हुए बिना पूरी तरह असत्यननीय हो सकता है। उपलब्ध साक्ष्यों से टकराते हुए या उनसे अयुक्त हुए भी 'वैज्ञानिक' सिद्धांत मान्य बने रह सकता है। उसका विभिन्न दिशाओं से सृजन हो सकता है। वैज्ञानिक सिद्धांत की कोई एक पद्धति या एक मार्ग नही होता उसका कोई तर्क आधारित पथ भी नही होता। उसे अन्तर्प्रज्ञा या बौद्धिक प्रेम के माध्यम से भी प्राप्त किया जा सकता है। विज्ञान की शुरूआत समस्या से, न कि अवलोकनों से, होती है। समस्या से जूझने के दौरान अवलोकन किये जाते हैं। सन्तोषजनक समाधान प्राप्त होने तक अवलोकनों का परीक्षण किया जाता है। अतः असत्यननीयता के होने या नही होने का मानदण्ड है।

पॉपर खण्डनीयता या भ्रमशीलता को 'ज्ञान के सिद्धांत' तथा 'सामाजिक दर्शनशास्त्र' को जोड़ने वाला सूत्र मानता है। समाज के सभी स्तरों पर विवेची भावना अपनायी जानी चाहिए।

इस तरह, उसने वैज्ञानिक पद्धति एवं सिद्धांत के नये आधार (New Bases of Scientific Method and Theory) दिये हैं। ऐसा करके उसने समाज–विज्ञानों को प्राकृतिक विज्ञानों के भौतिक शिकंजों से मुक्त करने का प्रयास किया है। पॉपर ने मुक्त–समाज को अपना अपरिमित एवं तार्किक समर्थन दिया है। वह विज्ञानवादियों, के इस विचार का विरोध करता है कि विज्ञान एक दिन हमारे सभी प्रश्नों और समस्याओं का उत्तर दे देगा?

1.9 टॉमस सेमुअल कुह्न (Thomas Samuel Kuhn) द्वारा प्रत्यक्षवाद की आलोचना

टी. एस. कुह्न (1922–1996) संयुक्त राज्य अमेरिका (ओहियो– राज्य) के विश्वविख्यात प्रोफेसर थे। वह विज्ञान के इतिहास एवं दशर्नशास्त्र के महानतम् विद्वानों में गिना जाता है। उसकी पाँच पुस्तकों एवं अगणित लेखों में से सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृति ''द स्ट्रक्चर ऑफ साइन्टिफिक रिवोल्यूशन्स''

(The Structure of scientific Revolutions) मानी जाती है। कुह्न से पहले विज्ञान के दर्शनशास्त्र में दो परम्पराएँ थीं– (क) तार्किक पुर्नसंरचनावाद– यह विज्ञान को विशुद्ध तार्किक शब्दावली में प्रस्तुत करता था तथा (ख) व्हिग वादी निर्वचन– यह विज्ञान के इतिहास को वर्तमान की दृष्टि से देखा जाता था। इसमे विज्ञान को अधिकाधिक परिष्कृत होते–होते सत्य की ओर जाते हुए देखा जाता था। पहली परम्परा दूसरी परम्परा को सहायता और समर्थन देती थी। इन परम्पराओं के कारण बड़े–बड़े विज्ञानी या वैज्ञानिक भी चिन्तन की जटिलताओं में उलझकर रह जाते थे। कुह्न ने विज्ञान के इतिहास में घटित इन्हीं जटिलताओं की छानबीन की है ।

विज्ञान को प्रायः निरपेक्ष एवं तटस्थ रूप से कतिपय विज्ञानियों एवं शोधकर्त्ताओं द्वारा एकत्रित ज्ञान का भण्डार माना जाता है। किन्तु कुह्न के अनुसार, विज्ञान ज्ञान का शनैः शनै निरन्तर इकट्ठा होने वाला भण्डार नहीं है। वस्तुतः निकोलस वाडे के अनुसार, वह शांतिपूर्ण विरामों का ऐसा अनुक्रम है जिसे बौद्धिक दृष्टि से विस्फोटक क्रान्तियो के द्वारा तोड़ा जाता है। ऐसी घटनाओं में सामान्य विज्ञान की परम्पराबद्ध गतिविधियों को परम्पराभंजक प्रयत्नों द्वारा तोड़ कर योगदान किया जाता है। इन्हें क्रन्ति कहा जाता है। ऐसी क्रान्तियों में एक अवधारणात्मक विश्वदृष्टि को दूसरी अवधारणात्मक विश्वदृष्टि के द्वारा स्थानापन्न किया जाता है। यह कार्य नये विचारचित्र या विचारपुंज के माध्यम से किये जाते हैं। समस्त वैज्ञानिक सिद्धांत, पद्धतियाँ एवं प्रविधियाँ विज्ञानी के विचारपुंज की सामग्री होती है।

1.10 समालोचना

यह सत्य है कि वैज्ञानिक पद्धति (Scientific method) से सामाजिक जीवन के लिए उपयुक्त मूल्यों और लक्ष्यों का पता नही लगाया जा सकता। ये नैतिक निर्णय के विषय है, वैज्ञानिक निर्णय (Moral Judgement) के विषय हैं; वैज्ञानिक निर्णय (Scientific Judgement) के विषय नहीं। परन्तु सामाजिक जीवन को चलाने के लिए नैतिक निर्णय भी उतने ही जरूरी हैं। राजनीति–वैज्ञानिक इस विषय को अपने विचारक्षेत्र से बाहर मानते हुए अपने महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व से मुँह नही मोड़ सकते। यदि वे इस समस्याओं से दूर भागेंगे तो इनका निर्णय किसी और के हाथों में–विशेषतः किन्ही निहित स्वार्थो के हाथों में चला जाएगा । इससे समाज को भारी क्षति पहुँच सकती है। अतः उत्तर व्यवहारवाद के अंतर्गत राजनीति वैज्ञानिकों से यह मांग की

जाती है कि उन्हें सामाजिक जीवन के लक्ष्यों और मूल्यों से भी सरोकार रखना चाहिए ।

समकालीन चिंतन मे आलोचनात्मक सिद्धांत के अंतर्गत प्रत्यक्षवाद पर विशेष रूप से प्रहार किया गया है। हर्बर्ट मार्क्यूजे (1898–1979) ने तर्क दिया है कि आज के युग मे सामाजिक विज्ञान की भाषा को प्राकृतिक विज्ञान की भाषा के अनुरूप ढालने के कोशिश हो रही है ताकि मनुष्य अपने सोचने के ढंग से ही यथास्थिति का समर्थक बन जाए। इस तरह वैज्ञानिक भाषा को आलोचनात्मक दृष्टि से रिक्त किया जा रहा है। उदाहरण के लिए, चुनावों के अध्ययन में हम केवल निरीक्षण और परिमापन को अपने अन्वेषण का विषय बनाकर इस बात पर कोई ध्यान नही देते कि स्वयं चुनाव की वर्तमान प्रक्रिया लोकतंत्र के सिद्धांत को कितना सार्थक करती है? प्रत्यक्षवाद से प्रेरित अनुसंधान में सामाजिक प्रक्रियाओं को आलोचनात्मक विश्लेषण (Critrical Analysis) की कोई गुंजाइश नही रह जाती। वैज्ञानिक ज्ञान स्वयं अपनी प्रमाणिकता का दावा करता है। केवल वैज्ञानिक पद्धति से ही उसका खंडन किया जा सकता है । दूसरी ओर, सामाजिक ज्ञान केवल व्याख्या और कार्यवाही का एक विकल्प प्रस्तुत करता है। इसमें इसमे ंअन्य विकल्पों के साथ तुलना की गुंजाइश हमेशा बनी रहती है। यदि सामाजिक ज्ञान भी वैज्ञानिक ज्ञान की तरह अपनी प्रमाणिकता का दावा करने लगेगा तो वह आलोचना का विषय नह रह जाएगा, और अनेक विकल्पो में से उपयुक्त विकल्प के चयन की संभवना नही रह जाएगी। इस क्षेत्र में प्रत्यक्षवाद को अपना लेने पर सामाजिक विज्ञान सामाजिक अन्वेषण का साधन नही रह जाएगा बल्कि सामाजिक नियंत्रण का साधन बन जाएगा।

सामाजिक जीवन के गुणात्मक उत्कर्ष (Qualitative Improvement) के लिए मूल्यों के प्रति सजगता जरूरी है। मूल्यों का सार्थक विश्लेषण मुक्त वातावरण की मांग करता है। समकालीन राजनीति–सिद्धांत मूल्यपरक कथन को निरर्थक नहीं मानता। प्रत्यक्षवाद पर आधारित राजनीति विज्ञान का ध्येय केवल वस्तुस्थिति को किन्हीं आदर्शों और मूल्यों की कसौटी पर परखता है, और उसकी त्रुटियों को दूर करने के उपाय भी सुझाता है। वस्तुतः मूल्यों से राजनीति सिद्धांत का मुख्य सरोकार इसलिए है, ताकि वह वस्तुस्थिति का मूल्यांकन और आलोचना कर सके। देखा जाए तो राजनीति–दर्शन का उदय ही इसलिए हुआ कि कुछ सजग विचारकों ने अपने समय की राजनीति को आलोचनात्मक दृष्टि से देखा और उसकी त्रुटियों का प्रबल विरोध किया।

प्राचीन यूनानी दार्शनिक सुकरात ने 'सत्ताधारी के प्रति सत्य बोलने' का बीड़ा उठाया, और इसके लिए उसे अपने जीवन का बलिदान करना पड़ा। सच्चे राजनीति–दार्शनिक सदैव मत विरोधी रहे हैं। इनसे बड़े–बड़े ताना शाह भी डरते हैं। 1962 में जब म्यांमार (तत्कालीन वर्मा) में जनरल ने बिन ने प्रधानमंत्री ऊ नू को हटाकर सैनिक अधिनायकतंत्र स्थापित कर दिया तब उसने अपने देश के विश्वविद्यालय और कॉलेजों में राजनीति विज्ञान के विभागों पर प्रतिबंध लगा दिया, क्योंकि राजनीति–सिद्धांत का अध्ययन भी इन्हीं विभागो में होता था। अतः डांटे जर्मीनो का यह कथन बहुत सटीक हैः ''राजनीति–सिद्धांत सचमुच राजनीति का आलोचनाशास्त्र है, और कुछ नहीं। (बियोंड आइडियोलॉजी–द रिवाइवल ऑफ पॉलिटिकल थ्योरि : विचारधारा से परे–राजनीति सिद्धांत का पुनरूत्थान) (1967)

वैज्ञानिक पद्धति से जो ज्ञान प्राप्त किया जाता है, यह संचित ज्ञान (Cumulative Knowledge) होता है। इसमें प्रत्येक नया सिद्धांत अपने पूर्ववर्ती सिद्धांत का उन्नत रूप होता है, अतः किसी भी घटना के संबंध में यहां नवीनतम मान्य होता है जो पुराने सिद्धांत को अमान्य बना देता है। यदि किन्ही नए तथ्यों का पता चलने पर प्रचलित सिद्धांत उनकी व्याख्या देने में असमर्थ सिद्ध होता है तो इस सिद्धांत का संशोधन जरूरी हो जाता है। दूसरी ओर मूल्यपरक कथन पर यह बात लागू नहीं होती। इसमें मतभेद की गुंजाइश बनी रहती है, और नया या पुराना होने के कारण किसी कथन को मान्य या अमान्य नही ठहराया जा सकता। उदाहरण के लिए, राजनीतिक दायित्व के आधार या सीमाओं के बारे में या न्याय के स्वरूप के बारे में निरंतर वाद–विवाद चला आ रहा है, और चलता रहेगा। इन समस्याओं के बारे में किसी भी दृष्टिकोण को अंतिम रूप से मान्य नहीं माना जा सकता।

मूल्यपरक कथन के बारे में तीन प्रकार की संभावनाओं पर विचार कर सकते हैंः

1. एक दृष्टिकोण यह हे कि मूल्य व्यक्तिगत या समूहगत अधिमान्यता का विषय है । किसे क्या अच्छा लगता है या नही लगता – इस पर बहस बेकार है । यह दृष्टिकोण मूल्यों के विवेचना को राजनीति – सिद्धांत के क्षेत्र से बाहर निकालने की वकालत करता है

2. दूसरा दृष्टिकोण मूल्य को 'विचारधारा' का विषय मानता है। उसके अनुसार, मूल्य का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है बल्कि वह सत्तारूढ़ वर्ग या विरोधी वर्ग के अपने–अपने हितों के अनुरूप किसी प्रचलित या प्रस्तावित

व्यवस्था को उचित ठहराने का प्रयास है। मार्क्स के अनुसार, विचारधारा शासक वर्ग के निहित स्वार्थों को प्रतिबिंबित करती है; अतः वह 'मिथ्या चेतना' को व्यक्त करती है। यह दृष्टिकोण भी प्रचलित मूल्यों के विश्लेषण को प्रायः निरर्थक समझता है;

3. तीसरा दृष्टिकोण यह है कि मूल्यपरक कथन केवल व्यक्तिगत या समूहगत अधिमान्यता को व्यक्त नहीं करते, बल्कि उनकी तार्किक संरचना का पता लगा सकते हैं। अतः परस्पर विरोध मूल्यों और विचारधाराओं का उपयुक्त विश्लेषण करके वस्तुपरक सत्य का पता लगाने की कोशिश कर सकते हैं। कार्ल मैन्हाइम (1893–1947) ने यह आशा व्यक्त की है कि भिन्न–भिन्न विचारधारा रखने वाले वर्गों के बीच मे बुद्धिजीवियों (Intelligentsia) के एक ऐसे 'मुक्त विचरणशील स्तर' का अस्तित्व संभव है जो अपनी–अपनी सामाजिक स्थिति से निर्लिप्त होकर तटस्थ ज्ञान प्राप्त कर सकता है। ये लोग शुरू–शुरू में यह स्वीकार करके चलेंगे कि उनका अपना–अपना दृष्टिकोण उनकी पृथक–पृथक सामाजिक स्थिति के साथ जुड़ा है; इसलिए वह अधूरा है। अतः वे दूसरों के दृष्टिकोण को समझकर इस कमी को पूरा करने का प्रयत्न करेंगे। इस तरह वे वर्तमान ऐतिहासिक परिस्थिति के बारे में संश्लिष्ट सामान्य ज्ञान (Synthetic Common Knowledge) प्राप्त कर सकेंगे जहां आकर उनके आपसी मतभेद मिट जाएंगे।

कार्ल पॉपर (1902–94) ने अपनी विख्यात कृति 'द ओपन सोसाइटी एंड इट्स एनिमीज' (मुक्त समाज और उसके दुश्मन) (1945) के अंतर्गत यह तर्क दिया कि विचारधारा केवल सर्वाधिकारवादी समाज में पाई जाती है, क्योंकि वहां सब मनुष्यों को एक ही सांचे में ढालने की कोशिश की जाती है; मुक्त समाज में उसके प्रयोग की कोई गुंजाइश नहीं है, क्योंकि उसमें लोग प्रचलित संस्थाओं और शक्ति–संरचनाओं की आलोचना करने के लिए पूरी तरह स्वतंत्र होते हैं।

अतः मूल्यों का सार्थक विश्लेषण मुक्त वातावरण की मांग करता है। यह बात याद रखने की है कि मूल्यों का विश्लेषण निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। मूल्य–निर्णय वैज्ञानिक पद्धति का विषय नहीं है– यह इसका गुण है, त्रुटि नहीं। मूल्यों के सार–तत्व को पहचानने के लिए विवेक–बुद्धि (Wisdom) की आवश्यकता है; वैज्ञानिक प्रक्रिया इसके लिए पर्याप्त नहीं है। विवेकशील मनुष्य सहिष्णुता के (Tolerance) के आधार पर परस्पर संवाद (Consensus) पर पहुँच सकते हैं। परंतु कोई भी व्यक्ति या समूह यह दावा

नहीं कर सकता कि उसने सत्य को पा लिया है। यदि ऐसा होगा तो मूल्यों की तलाश खत्म हो जाएगी और तथाकथित सत्य को निर्ममतापूर्वक लागू करना ही बंद समाज (Closed Society) और सर्वाधिकारवादी व्यवस्था है। जिसमें मनुष्य की स्वतंत्रता का दमन कर दिया जाएगा।

1.11 सार संक्षेप

मूल्यों के प्रति उदार दृष्टिकोण की यही मांग है कि समाज में वैकल्पिक कार्यवाही (Aternative Courses of Action) की गुंजाइश लगातार बनी रहे; व्यक्ति को अनेक विकल्पों में से चयन (Choice) का पूरा अवसर रहे। इसका अर्थ होगा—एक मुक्त, बहुलवादी समाज (Open, Pluralist Society)। इसमें वैकल्पिक कार्रवाही के गुण—दोषों पर मुक्त चर्चा की अनुमति रहेगी; प्रत्येक समूह को अपने – अपने दृष्टिकोण की पुष्टि के लिए वैज्ञानिक आधार—सामग्री (Scientific Data) जुटाने और उसका प्रयोग करने में अभिरूचि रहेगी। भिन्न—भिन्न प्राक्कल्पनाओं (Hypotheses) की जांच के लिए तर्कसंगत मानदंडों की तलाश की जाएगी। इस तरह वैज्ञानिक ज्ञान और मूल्यों—निर्णय के बीच गहरी खाई नहीं खोदी जाएगी बल्कि इन दोनों के बीच संपर्क सेतु का निर्माण होगा।

राजनीति—सिद्धान्त की सार्थकता इस बात में है कि वह सार्वजनिक जीवन के लक्ष्य निर्धारित करे, और ऐसी संस्थाओं एवं प्रक्रियाओं का पता लगाए जो उन लक्ष्यों की सिद्धि में सहायक हों। ज्ञान—विज्ञान की कोई अन्य शाखा यह कार्य नहीं करती। राजनीति—सिद्धान्त के विचार—क्षेत्र में विचार और दर्शन के जैसा मणिकांचन संयोग देखने को मिलता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। प्राचीन यूनानी दार्शनिक अरस्तू ने राजनीतिशास्त्र को 'परम विद्या' या 'सर्वोच्च विज्ञान' (Master Science) की संज्ञा इसलिए दी थी क्योंकि यह अन्य सब विद्याओं की उपलब्धियों को सद्जीवन की सिद्धि के लिए नियोजित करता है।

1.12 परिभाषाएं

1. **वैज्ञानिक पद्धति—** वह पद्धति जिसके अंतर्गत वस्तुस्थिति या तथ्यों (Facts) पर ध्यान केंद्रित करते हैं, और उनमें परस्पर संबंध का पता लगाने का प्रयास करते हैं। अतः यह तथ्यों के निरीक्षण (Observation) और नियमों (Laws) के अन्वेषण का क्षेत्र है। इसका ध्येय वस्तुस्थिति के बारे में विश्वस्त

ज्ञान (Reliable Knowledge) अर्जित करना है। राजनीति के अध्ययन में इस पद्धति के प्रयोग से 'राजनीति विज्ञान' (Political Science) का जन्म होता है।

2. **तत्वमीमांसा–** दर्शन (Philosophy) की एक शाखा जिसमें मुख्यतः इस प्रश्न पर विचार करते हैं कि सृष्टि का कोई यथार्थ अस्तित्व है भी या नहीं; यदि वह कुछ है तो वह क्या है? इस प्रश्न उत्तर ढूंढने के लिए साधारणतः अनुभवातीत ज्ञान (Transcedenatal Knowledge) का सहारा लिया जात है क्योंकि अनुभवमूलक ज्ञान (Empirical Knowledge) के आधार पर इसका कोई उत्तर नहीं दिया जा सकता।

3. **अनुभवमूलक ज्ञान**– ऐसा ज्ञान जो ज्ञानेंद्रियों (Sense Organs) (आंख, कान, नाक, जिह्वा, और त्वचा) के अनुभव पर आधारित हो।

4. **अनुभवातीत ज्ञान**– ऐसा ज्ञान जो ज्ञानेंद्रियों (Sense Organs) (आंख, कान, नाक, जिह्वा, और त्वचा) के अनुभव से परे हो और सीधे तर्कबुद्धि (Reason) के प्रयोग पर आधारित हो।

5. **विचारधारा**– उन युक्तियों और मान्यताओं का समुच्चय जिनके आधार पर कियी वर्तमान या प्रस्तावित राजनीतिक व्यवस्था को उचित ठहराने का प्रयत्न किया जाता है। विचारधारा विश्वास (Faith) का विषय है; यह तर्क–वितर्क (Reasoning) को बढ़ावा नहीं देती। यह लोगों को कार्रवाही (Action) की ओर प्रेरित करती है। इससे प्रेरित लोग प्रचलित व्यवस्था की रक्षा के लिए या नई व्यवस्था की स्थापना के लिए अहुत बड़ा त्याग करने को तैयार हो सकते हैं।

1.13 प्रश्न

1.13.1 लघुत्तरीय प्रश्न–

I. प्रत्यक्षवाद से आप क्या समझते है?

II. राजनीति विज्ञान में वैज्ञानिक पद्धति का क्या महत्व है।

1.13.2 दीर्घउत्तरीय प्रश्न–

I. तार्किक प्रत्यक्षवादियों ने प्रत्यक्षवाद में किस प्रकार संशोधन किया?

II. कार्ल पॉपर ने प्रत्यक्षवादियों की आलोचना करते हुए क्या तर्क रखें?

1.13.3 वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. प्रत्यक्षवाद का मुख्य प्रवर्त्तक माना जाता है।

A. मैक्स वेबर

B. जे. एस. मिल.

C. ऑगस्ट काम्टे

D. कार्ल पॉपर

2. तार्किक प्रत्यक्षवाद को एक आन्दोलन का रूप देने में 'विएना सर्किल' ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। निम्न में से किसने उसका नेतृत्व किया।

A. लुड्विख विट्जेंस्टाइन

B. लास्की

C. हीगल

D. कार्ल पॉपर

3. समकालीन चिंतन में अलोचनात्मक सिद्धान्त के अन्तर्गत प्रत्यक्षवाद पर विशेष रूप से प्रहार किया है।

A. ग्राम्सी

B. मैकाइवर

B. हर्बर्ट मार्क्यूजे

D. मैक्स वेबर

उत्तर–

1. A. 2. A. 3. C.

संदर्भ सूची

1. गाबा ओ. पी.– राजनीतिक विज्ञान विश्वकोष मयूर पेपर बैक्स पब्लिकेशन, नोएडा

2. वर्मा, एस. एल.– राजनीति विज्ञान में अनुसंधान, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।

3. वर्मा, एस. एल. समकालीन राजनीतिक चिन्तन का इतिहास, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ

इकाई–02 : कार्ल आर. पॉपर 1902–1994

इकाई की रूपरेखा–

2.0 प्रस्तावना
2.1 कार्ल आर. पॉपर का जीवन परिचय
2.2 उद्देश्य
2.3 वैज्ञानिक ज्ञान का स्वरूप
2.4 इतिहासवाद का खंडन
2.5 उत्तरोत्तर परिवर्तन का सिद्धान्त
2.6 पॉपर द्वारा प्लेटो की आलोचना
2.7 पॉपर द्वारा हीगल की आलोचना
2.8 पॉपर द्वारा मार्क्सवाद की आलोचना
2.9 निष्कर्ष
2.10 प्रश्नोत्तर

2.0 प्रस्तावना

पॉपर की विशेष ख्याति विज्ञान–दर्शन (Logic and Scientific Method) के क्षेत्र में है। राजनीतिक चिंतन और व्यवहार के क्षेत्र में वैज्ञानिक विधि का प्रयोग करते हुए उसने जिन मूल्यों का समर्थन किया, वे उदारवादी मूल्यों (Liberal Values) की श्रेणी में आते हैं।

2.1 कार्ल आर. पॉपर का परिचय

कार्ल रेमंड पॉपर (1902–94) का जन्म विएना (आस्ट्रिया) के एक यहूदी परिवार में हुआ। 1937 में वह आस्ट्रिया से न्यूजीलैंड चला गया, और 1945 में लंदन स्कूल ऑफ इकानॉमिक्स पहुँच गया वहां से 1969 में वह तर्कशास्त्र एवं वैज्ञानिक विधि (Philosophy of Science) के प्रोफेसर के रूप में सेवा–निवृत्त हुए।

2.2 उद्देश्य

कार्ल पॉपर ने वैज्ञानिक ज्ञान की जरूरी शैली की छानबीन करते हुए यह दिखाया है कि ऐसा कोई भी ज्ञान वैज्ञानिक दृष्टि से विश्वसनीय नहीं हो

सकता, जो समाज को सर्वाधिकारवाद की ओर ले जाता है केवल मुक्त समाज ही वैज्ञानिक ज्ञान को बढ़ावा देता है और उसकी मांग यह है कि सामाजिक परिवर्तन की राह पर थोड़ा–थोड़ा करके कदम बढ़ाया जाय। पॉपर ने मानव समाज को सर्वाधिकारवाद और क्रान्ति के खतरों के प्रति विशेष रूप से चेतावनी दी है।

फासिज्म और कम्युनिजम की क्रूरता तथा उदासीनता का अनुभव करने के बाद पॉपर ने ऐसे किसी भी सिद्धान्त पर प्रश्न चिन्ह लगाया जो विज्ञान होने का दावा करता है।

2.3 वैज्ञानिक ज्ञान का स्वरूप

पॉपर ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'द लॉजिक ऑफ साइंटिफिक डिस्कवरी' (वैज्ञानिक अन्वेषण का तर्कशास्त्र) (1934) के अंतर्गत ज्ञान के स्वरूप के बारे में तार्किक प्रत्यक्षवादियों (Logical Positivists) की मान्यता को चुनौती देते हुए अपनी नई व्याख्या प्रस्तुत की हैं। तार्किक प्रत्यक्षवादी यह मानते थे कि सारा वैज्ञानिक ज्ञान तात्कालिक अनुभव (Immediate Experience) पर आश्रित होता है। तर्कशास्त्र (Logic) हमें ऐसी भाषा प्रदान करता है जिसके द्वारा हम, अपने अनुभवों विवरणों को आपस में जोड़कर नियमों और सिद्धान्तों का निर्माण करते हैं। वैज्ञानिक कथन की कसौटी यह है कि उसका सत्यापान (Verification) किया जा सकता है। यह विज्ञान (Science) को तत्त्वमीमांसा या पराभौतिकी (Metaphysics) से पृथक् करती है। चूंकि पराभौतिकीय कथन (Metaphysical Statements) अनुभव पर आधारित नहीं होते, और उनका सत्यापन भी नहीं किया जा सकता, इसनिए वे अर्थहीन (Meaningless) होते हैं।

तार्किक प्रत्यक्षवादियों की उपर्युक्त मान्यताओं के विपरीत, पॉपर ने तर्क दिया कि वैज्ञानिक कथन की कसौटी सत्यापनीयता (Verifiability) नहीं, बल्कि उसकी मिथ्यापनीयता (Falsifiability) हैं। दूसरे शब्दों में, विज्ञान सत्य का पता नहीं लगा सकता। वह केवल यह पता लगा सकता है कि झूठ क्या है? उसे अस्वीकार करके हम सच की ओर बढ़ सकते हैं। अतः पराभौतिकीय कथन अर्थहीन नहीं होते बल्कि वे मिथ्यापन (Falsification) का आधार प्रस्तुत करते हैं, और वे बहुधा विज्ञान का पूर्वसंकेत देते हैं। उनकी निंदा तभी करनी चाहिए जब वे विज्ञान होने का झूठा दावा करें जैसे कि ज्योतिष (Astrology) और कीमियागरी (Alchemy) अपने–आपको विज्ञान

मानते हैं। पॉपर ने इन्हें छद्मविज्ञान (Pseudoscience) कहा है। छद्मविज्ञान यह दावा करता है कि उसे मिथ्या सिद्ध नहीं किया जा सकता, या वह 'मिथ्यापन' से कतराता है, या फिर वह अपने कथन में ऐसी शर्तें जोड़ता चला जाता है जिनसे उसका मनचाहा अर्थ लगाया जा सके। इसके आधुनिक उदाहरण मार्क्सवाद (Marxism) और मनोविश्लेषण (Psychoanalysis) हैं।

दूसरे, तार्किक प्रत्क्षवादी यह मानते थे कि विज्ञान के अंतर्गत निरीक्षण (Observation) से आरंभ करते हैं। जब बहुत सारे ऐसे उदाहरण हमारे सामने आते हैं जिनसे हमें किसी नियमितता (Regularity) का पता चलता है, तब हम नियम या सिद्धान्त का निर्माण करते है। इस प्रक्रिया में हम विशेष से सामान्य की ओर (From Particular to General) अग्रसर होते हैं। इस पद्धति को आगमन पद्धति (Inductive Method) कहा जाता है। इसके विपरीत, पॉपर ने तर्क दिया है कि वैज्ञानिक अन्वेषण निरीक्षण किन्हीं सैद्धांतिक पूर्वमान्यताओं (Theoretical Presumptions) से निर्देशित होता है। दूसरे शब्दों में, निरीक्षण आरंभ करने से पहले हम यह निर्णय करते हैं कि हमें किस बात का निरीक्षण करना है? अतः हमारा निरीक्षण स्वभावतः चयनात्मक (Selective) होता है। इस तरह हम अपना वैज्ञानिक अन्वेषण किसी प्राक्कल्पना (Hypothesis) से आरंभ करते हैं। प्राक्कल्पना ऐसा विचार या वक्तव्य है जो हमारे निरीक्षण पर आधारित नहीं होता बल्कि तथ्यों की व्याख्या के लिए एक प्रारंभिक मान्यता के रूप में उसका प्रयोग किया जाता है। इसे हम एक अटकल या अनुमान (Conjecture) की संज्ञा दे सकते हैं। पॉपर के अनुसार, वैज्ञानिक ज्ञान 'अनुमान और खंडन' (Conjecture and Refutation) की प्रक्रिया से विकसित होता है। चूंकि प्राक्कल्पना विश्वसनीय (Universal) होती है, इसलिए सीमित संख्सा के उदाहरण लेकर उसकी पुष्टि नहीं की जा सकती। परंतु उसके खंडन के लिए उदाहरण भी पर्याप्त है।

अतः वैज्ञानिक विधि (Scientific Method) के अनुसार चलने के लिए सबसे पहले, जहां तक संभव हो, एक सार्थक अनुमान (Substantial Conjecture) प्रस्तुत किया जाता है। फिर बड़े परिश्रम से उन स्थितियों का निरीक्षण किया जाता है। जिनमें उस अनुमान का खंडन किया जा सके, या उसे मिथ्या सिद्ध (Falsify) किया जा सके। जब तक वह मिथ्या सिद्ध नहीं होता, उसकी परिपुष्टि (Corroboration) होती जाती है। जब वह मिथ्या सिद्ध होता है तब हम अपनी नई जानकारी के अनुरूप संषोधित अनुमान (Revised Conjecture) प्रस्तुत करते हैं और उसके 'मिथ्यापन का प्रयास फिर से शुरू कर देते हैं। इस

तरह अपनी त्रुटियों का निराकरण करते हुए हम उत्तरोत्तर परिष्कृत (Successively Refined) अनुमान प्रस्तुत करते चलते हैं। अतः 'सत्य के निकट पहुँचने, का प्रयास निरंतर चलता रहता है; इसी से वैज्ञानिक ज्ञान की उन्नति होती है।

इस पद्धति के अन्तर्गत हम 'सामान्य से विशेष की ओर' (From General to Particular) अग्रसर होते हैं; इसे निगमन पद्धति (Deductive Method) कहा जाता है। पॉपर ने यही पद्धति अपनाने का समर्थन किया है। उसने सुझाव दिया है कि यदि किसी विषय पर हमारे सामने दो प्राक्कल्पनाएं हों तो हमें उस प्राक्कल्पना को परीक्षण के लिए चुनना चाहिए जिसके मिथ्यापन की संभावना अधिक हो ताकि उसका उत्तरोत्तर संषोधन करते हुए हम सत्य के निकट पहुँचने का निरंतर प्रयास कर सकें। यह बात ध्यान देने की है कि पॉपर ने वैज्ञानिक ज्ञान के बारे में अपनी संकल्पना का प्रयोग करते हुए सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले हैं।

2.4 इतिहासवाद का खंडन

पॉपर ने 'इतिहासवाद' को छद्मविज्ञान की श्रेणी में रखा है, और अपनी दो प्रसिद्ध कृतियों 'द ओपेन सोसाइटी एंड इट्स एनिमीज़' (मुक्त समाज और उसके दुश्मन) (1945) तथा 'द पावर्टी ऑफ हिस्टोरिसिज्म' (इतिहास की सारहीनता) (1957) के अंतर्गत इतिहासवाद पर प्रबल प्रहार किया है। इतिहासवाद से उसका अभिप्राय है, यह विश्वास कि ऐतिहासिक परिवर्तन किन्हीं बँधे–बँधाए नियमों के अनुसार होते हैं; सामाजिक विज्ञान (Social Science) की सहायता से उन नियमों का पता लगाया जा सकता है; और हमें अपनी राजनीति को इन्हीं नियमें के अनुसार ढालना चाहिए। पॉपर ने लिखा है कि सर्वाधिकारवादी आंदोलन (Totalitarian Movements) इतिहासवादी सिद्धान्तों को उचित ठहराते हैं। 'द ओपेन सोसायटी एंड इट्स एनिमीज' के अंतर्गत (जो कि दो खंडों में प्रकाशित हुई है) पॉपर ने विशेष रूप से तीन इतिहासवादी दृष्टिकोणों पर प्रहार किया है– अर्थात् प्लेटो (428–348 ई0पू0), हेगेल (1770–1831) और मार्क्स (1818–83) की मान्यताओं पर। उसने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि इनमें से प्रत्येक विचारक ने समाज की समग्र व्याख्या (Total Explanation) का प्रयत्न करते हुए सर्वाधिकारवादी शासन प्रणाली (Totalitarian Government) के लक्ष्यों और सिद्धान्तों का समर्थन किया है।

पॉपर ने तर्क दिया है कि विज्ञान और स्वतंत्रता (Science and Freedom) दोनों ऐसे समाज में पनपते हैं जो खुला या मुक्त समाज (Open Society) हो, अर्थात् जो नए विचारों को अपनाने के लिए तत्पर हो। प्लेटो का दर्शन सत्तावादी (Authoritarian) और सर्वाधिकारवादी (Totalitarian) है, क्योंकि उसने संरक्षक–वर्ग (Guardians) के शासन को मिथकों (Myths) के द्वारा सुरक्षित रखने का सुझाव दिया है। प्लेटो 'बंद समाज' (Closed Society) का सिद्धान्तकार है; वह ऐसा प्रतिक्रियावादी (Reactionary) है जो दार्शनिक–विशिष्टवर्ग को पूर्ण सत्ता प्रदान करके सामाजिक परिवर्तन को रोकने की कोशिश करता है। हेगेल स्वयं 'पूर्ण ज्ञान' (Absolute Knowledge) रखने का दावा करता है, और उसके आधार पर इतिहास के विकास तथा भविष्य का विवरण देता है। मार्क्स समग्रवादी (Holist) और नियतिवादी (Determinist) है जो भविष्यवाणी (Prophecy) को प्रधानता देते हुए व्याख्या (Explanation) को गौण बना देता है। वह यह घोषणा करता है कि पूँजीवाद का पतन अवश्यंभावी है; फिर अपने अनुयायियों को विद्रोह के लिए प्रेरित करता है ताकि वे 'अवश्यंभावी' को कार्यान्वित कर सकें!

'द पॉवर्टी ऑफ हिस्टोरिसिज्म' के अंतर्गत पॉपर ने प्रामाणिक नियमें (Genuine Laws) और ऐतिहासिक प्रवृत्तियों (Historical Trends) में अंतर स्पष्ट किया है। उसने तर्क दिया है कि ऐसा कोई नियम नहीं हो सकता जो संपूर्ण ऐतिहासिक प्रक्रिया पर लागू हो सके, क्योंकि प्रत्येक ऐतिहासिक परिवर्तन एक विलक्षण घटना होती है। तथाकथित ऐतिहासिक नियम बहुत–से–बहुत किसी ऐतिहासिक प्रवृत्ति का संकेत देते हैं; वे सही अर्थ में नियम नहीं होते। मार्क्स ने जो 'पूँजीं के बढ़ते हुए जमाव का नियम' (Law of the Increasing Concentration of Capital) प्रस्तुत किया है, वह केवल एक प्रवृत्ति का सूचक है, और किसी प्रवृत्ति के आधार पर भविष्यवाणी करना एक भूल है; इसके परिणाम कभी सही नहीं निकलते।

2.5 उत्तरोत्तर परिवर्तन का सिद्धान्त

'द ओपेन सोसायटी एंड इट्स एनिमीज' के अंतर्गत पॉपर ने यह तर्क दिया है कि जैसे वैज्ञानिक अन्वेषण के अन्तर्गत हम यह दावा कभी कर सकते कि हमने 'सत्य' को पा लिया है, वैसे ही राजनीति के अंतर्गत हम निश्चय पूर्वक यह नहीं बता सकते कि 'सर्वगुणसंपन्न शासक' (Perfect Rulers) कैसे होने चाहिए? उपयुक्त प्रश्न यह होगा कि ''हम अपनी गलतियों को किस तरह जल्दी–से–जल्दी पहचान कर सुधार सकते हैं?''

मतलब यह कि "बुरे शासक हमें जो हानि पहुँचा सकते हैं, उसे जितना कम किया जा सकता हो, उतना कम कैसे कर सकते हैं? राजनीति की मूल समस्या यह नहीं कि शासन की बागडोर किसके हाथों में सौंप देना चाहिए, बल्कि हमें ऐसी संस्थाओं के निर्माण पर ध्यान देना चाहिए जिनके अंतर्गत बुरे–से–बुरे शासन भी हमें कम–से–कम हानि पहुँचा सकें, और ऐसे शासकों को आसानी से हटाया जा सकें चूंकि ऐतिहासिक परिवर्तनों की भविष्यवाणी नहीं की जा सकती, इसलिए हमें भविष्य के लिए अपनी योजनाएं छोटे–छोटे टुकड़ों में बनानी चाहिए, ताकि ज्यों ही हमें अपनी कार्रवाई का कोई अप्रत्याशित प्रभाव दिखाई दे, त्यों ही हम भूल–सुधार करके आगे बढ़ सकें।

फिर, 'द पॉवर्टी ऑफ हिस्टोरिसिज्म' के अंतर्गत पॉपर ने लिखा है कि स्वयं ज्ञान का विकास ऐतिहासिक परिवर्तन को प्रभावित करता है। न तो हम ज्ञान के विकास की भविष्यवाणी कर सकते हैं, न तो उसके सामान्य प्रभाव की। ज्ञान के विकास की भविष्यवाणी का अर्थ यह होगा कि हमें वह ज्ञान पहले से प्राप्त है, परंतु यह बात यथार्थ के विपरीत होगी। दूसरे सामाजिक विज्ञान की प्रकृति ऐसी है कि इसमें समग्र सामाजिक विकास के नियम स्थापित नहीं किए जा सकते, बल्कि केवल छोटी–छोटी और पृथक्–पृथक् सामाजिक इकाइयों (Social Units) से संबंधित नियम प्रस्तुत किये जा सकते हैं। इस दृष्टिकोंण को 'पद्धतिवैज्ञानिक समग्रवाद (Methodological Holism) का विपरीत रूप कहा जा सकता है। पद्धति वैज्ञानिक समग्रवाद के अनुसार सामाजिक जीवन की व्याख्या संपूर्ण समाज या सामाजिक संरचना (Social Structure) के संदर्भ में देनी चाहिए, जैसा कि हेगेल और मार्क्स के चिंतन में देखने को मिलता है। इसके विपरीत, पद्धति वैज्ञानिक व्यक्तिवाद यह मांग करता है कि सामाजिक घटनाओं के अध्ययन के लिए उनके सूक्ष्म हिस्सों या उनसे जुड़े हुए व्यक्तियों पर ध्यान देना चाहिए। पॉपर इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि सामाजिक समस्याओं के बारे में कोई ऐसा तर्कसंगत उपागम (Rational Approach) नहीं हो सकता समग्र परिवर्तन का आधार प्रस्तुत कर सकें। अतः सामाजिक सुधार (Social Reform) का एकमात्र तर्कसंगत तरीका 'खंडशः निर्माण (Piecemeal Engineering) का तरीका है। इसे 'उत्तरोत्तर परिवर्तन' का सिद्धान्त भी कहा जाता है, क्योंकि इसमें थोड़ा–थोड़ा करके आगे बढ़ते हैं।

पॉपर ने तर्क दिया है कि मानवीय ज्ञान हमेशा अपूर्ण रहता है, इसलिए सामाजिक निर्माण का कोई भी कार्यक्रम लागू करने पर उसके कुछ

अनदेखे और अनचाहे परिणाम (Unforeseen and Unintended Consequences) सामने आ सकते हैं। सामाजिक विज्ञान ऐसे परिणामों का जल्दी–से–जल्दी पता लगाने की कोशिश करता है। दूसरे शब्दों में, हम चाहे कितनी भी सावधानी क्यों न बरतें, किसी भी मानवीय कार्यवाही के ऐसे दुष्प्रभावों का खतरा बना रहता है जिनका हमें पहले से कोई अनुमान नहीं था। अतः पॉपर के अनुसार, सामाजिक परिवर्तन के सभी कार्यक्रम छोटे–छोटे चरणों में संपन्न किए जाने चाहिए, ताकि ज्यों ही किसी कार्यवाही का दुष्प्रभाव दिखाई दे, उसे तुरंत सुधार लिया जाए, और कोई बड़ी क्षति न होने दी जाए। फिर, थोड़ा–थोड़ा करके आगे बढ़ने से हम 'सत्तावाद' (Authoritarianism) के शिकंजे से बच जाते हैं। समाज में परिवर्तन छोटे–छोटे, तात्कालिक और सीधे–सादे कार्यक्रमों के बार में जितनी सहमति की संभावना रहती है, उतनी बड़े–बड़े, दूरगामी और जटिल कार्यक्रम के बारे में नहीं होती। फिर, क्रांति (Revolution) किसी आदर्श की सिद्धि के लिए की जाती है; जो लोग उसमें आस्था नहीं रखते, उनके दमन के लिए इसमें हिंसा का सहारा लिया जाता है। अंततः, स्वप्नदर्शी सामाजिक पुनर्निर्माण (Utopian Social Engineering) का कार्यक्रम लोगों से बहुत बड़े त्याग बोझ डाल देता है जो शायद उसके परिणामों का लाभ उठाने के लिए जीवित न रहें। फिर, उन्हें क्रान्ति का फल मिलता है, उन्होंने इसके लिए विशेष संघर्ष नहीं किया होता। अतः वे उसके महत्व को उतनी गहराई से अनुभव नहीं कर पाते। उत्तरोत्तर सामाजिक परिवर्तन का रास्ता अपनाने से समाज इस तरह के अन्याय से बच जाता है।

2.6 पॉपर द्वारा प्लेटो की आलोचना

प्लेटो की सबसे तीव्र आलोचना पॉपर 1945 की ओर से आई जिन्होंने प्लेटो, हेगेल ओर मार्क्स को खुले समाज का शत्रु बताया। खुला समाज वह था जिसके सदस्य इसकी संस्थाओं और सत्ता रचनाओं की आलोचना बिना दमन के डर से करते हैं। शिक्षा बुद्धि–दमन से अलग चीज होती है और विचार स्वतंत्रता की इजाजत देती है। यह स्वीकार किया जाता है कि सच्चाई पर किसी का एकाधिकार नहीं है। यह अपने सदस्यों को स्वभाविक रूप से विकसित होने की इजाजत देती है। उन पर किन्हीं ऐसे व्यक्तियों की देखरेख नहीं होती, कथित रूप से बुद्धि या नैतिकता में बेहतर होते हैं। साथ ही उन पर सामाजिक भलाई और व्यवस्था के नाम पर कठोर अनुशासन लागू किया जाता।

संकुचित दृष्टि और वैचारिकतावाद के प्रति पॉपर की शंका उनकी रचना 'द ओपन सोसाइटी एंड इट्स एनिमीज' (1945) में मिलती है। फासिज्म और कम्युनिज्म की क्रूरता तथा उदासीनता का अनुभव करने के बाद पॉपर ने ऐसे किसी भी सिद्धान्त पर प्रश्न चिह्न लगाया जो विज्ञान होने का दावा करता हो। पॉपर के अनुसार विज्ञान तथा गैर विज्ञान के बीच अंतर यह था कि प्रथम को साबित किया जा सकता था, जबकि दूसरा हर संभव तथ्य का आत्मसात करके खंडन से लगातार बचता था।

कार्ल आर. पॉपर 1902-1994

द ओपेन सोसाइटी में पॉपर ने बताया कि प्लेटो, हेगेल और मार्क्स द्वारा ऐतिहासिक नियमों के जरिए समाज की वैज्ञानिक व्याख्या मूल रूप में तानाशाही है। वैज्ञानिक सिद्धान्त वह था जो हर किसी चीज की व्याख्या का प्रयत्न नहीं करता था। यदि कोई भविष्यवाणी सही साबित नहीं होती तो उस घटना का अस्तित्व की नहीं रह जाता। यह समस्या मार्क्सवाद और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण दोनों ही के साथ है। यदि कोई सिद्धान्त बिना परीक्षणों को परखे वास्तविक घटनाओं का ध्यान रखे संभावनाओं की व्याख्या करता है, तब उसमें कोई वैज्ञानिक जानकारी नहीं होती है।

पॉपर की दृष्टि में कोई भी प्रभुत्वकारी व्यवस्था खुले समाज का निषेध है। कल्पनावाद इस मान्यता पर आधारित है। चूंकि पॉपर के लिए परिवर्तन आवश्यंभावी था और ''परिवर्तन कभी रुकने वाला नही था इसलिए एक अच्छे समाज की रूपरेखा का विचार अर्थहीन था। यदि रूपरेखा के अनुसार समाज बना भी दिया जाए तो वह लगातार इससे अलग होता रहेगा। इसलिए आदर्श समाज हासिल नहीं किए जा सकते, न केवल इसलिए कि वे आदर्श हैं बल्कि इसलिए भी कि उन्हें किसी रूपरेखा के अनुरूप ढलना होगा और स्थिर अपरिवर्तनीय बनना पड़ेगा। कोई भी समाज ऐसा नहीं हो सकता। वास्तव में सामाजिक परिवर्तन की गति हर साल धीमी होने के बजाए तेज होती जा रही है और इस प्रक्रिया का कोई अंत दिखाई नहीं देता। इसलिए राजनैतिक रुख परिस्थितियों के बारे में नहीं बल्कि परिवर्तन से संबंधित होना चाहिए। हमारा कर्त्तव्य एक विशेष प्रकार के समाज की स्थापना का असंभव कार्य नहीं बल्कि वास्तविक परिवर्तनों पर अपना नियंत्रण बढ़ाना और इन अंतहीन परिवर्तनों को बुद्धिमानी से नियंत्रित करना है।'' (मैगी, 1984; 106)

द ओपन सोसाइटी में पॉपर ने एक आम जन–नीति की सलाह दी: पीड़ा कम–से–कम करने की। विशेष सामाजिक बुराइयों को उनके कारण खोजकर कम किया जा सकता था। खुला समाज व्यक्ति की आजादी बढ़ा सकता है यदि इससे दुख कम हो। इसके लिए शिक्षा, कला, निवास स्वास्थ्य

इत्यादि का इंतजार करके व्यक्ति के चुनाव के लिए अधिकाधिक अवसर प्रदान किए जाएँ। ऐसा समाज संवैधानिक कानून के तहत राज्य और बाजार के बीच एक संतुलन होगा।

संपूर्ण क्रांतिकारी परिवर्तनों के बजाए पॉपर ने थोड़े–थोड़े और धीमे विकासवादी परिवर्तनों की सलाह दी। इससे गलतियाँ भी सुधारी जा सकती हैं। क्योंकि सारे नतीजों का अनुमान पहले से नहीं किया जा सकता। ऐसे सुधारों में विभिन्न विचारों के बीच आम बहस होगी।

पॉपर ने आदर्श समाज का विचार शुद्ध रूप से बौद्धिक और विज्ञान के लिए संदर्भहीन बताया। विज्ञान के समान राजनीति में भी विचार नहीं बल्कि उनकी व्यवहारिक कसौटी महत्वपूर्ण थी।

पॉपर के अनुसार प्लेटो व्यक्ति विरोधी और जनतंत्र विरोधी थे जिनका उद्देश्य सामाजिक परिवर्तन को रोकना था। प्लेटोवादी राज्य में कठोर अनुशासन के नियंत्रित अन्य वर्गों के आधार पर शासक वर्ग के हितों का सामूहिकीकरण कर दिया गया था। साथ ही पाबंदी और प्रचार के जरिए राज्य राजनैतिक नियंत्रण बनाए रखता था। आर्थिक रूप से यह राज्य आर्थिक तानाशाही था।

पॉपर की आलोचना दूसरों की तुलना में अधिक मौलिक थी। इसमें वैज्ञानिक ज्ञान और सम्पूर्ण समाज की रचना के सिद्धान्त पर प्रश्नचिह्न लगाया गया था। रसैल की दृष्टि में पॉपर द्वारा आलोचना अपरंपरागत होते हुए भी उचित थी।

2.7 : पॉपर द्वारा हेगेल की आलोचना–

पॉपर ने हेगेल की तीखी आलोचना करते हुए उन्हें प्लेटो एवं मार्क्स के समान खुले समाज का मुख्य शत्रु बताया। उनकी दृष्टि में हेगेल का इतिहासवाद अरस्तू के तीन विचारों पर आधारित था– 1) व्यक्ति या राज्य का विकास ऐतिहासिक विकास के जुड़ा हुआ है, 2) परिर्वतन का सिद्धान्त जो सार का सिद्धान्त स्वीकार करता है, 3) परिवर्तन वस्तु की वास्तविकता प्रतिबिम्बिंत करता है। प्रथम में, ऐतिहासिक तरीके में हेगेल 'इतिहास की आराधना' करते है; दूसरे में भाग्य के अविकसित रूप के साथ संबंध होता है; और तीसरे में हेगेल प्रभुत्व का सिंद्धान्त देते हैं, जिसके जरिए स्वामी–दास संबंध ठहराया जाता है। पॉपर के अनुसार हेगेल हेराक्लिटस, प्लेटो एवं अरस्तू के सच्चे शिष्य थे। जर्मन विज्ञान के कम विकसित होने के कारण हेगेल नया दार्शनिक अनुसंधान कर सकें। यह 'बेईमानी का युग' था जिसमें प्रशियाई राज्य की सहायता

से हेगेल एक महत्वपूर्ण दार्शनिक बन गए। इसीलिए हेगेलवाद प्रशियावाद को उचित ठहराता है। हेगेलवादी ऐतिहासिकता और आधुनिक निरंकुशता एक ही चीज बन जाती है। हेगेल प्रमुख उद्देश्य ''खुले समाज से लड़ना, और इस प्रकार अपने मालिक प्रशिया के फ्रेडरिक विलियम की सेवा करना था।'' (पॉपर 1963; 24)

पॉपर ने यह भी तर्क दिया कि वास्तविक के साथ तार्किक का हेगेल द्वारा एकीकरण शुद्ध राजनीति की सत्ता के दर्शन को जनित करता है। 'राज्य की आराधना' के अतार्किक स्वरूप 'कबीलावाद के रेनेसाँ' को जन्म देते हैं। (पॉपर 1963; 30–31) हेगेल में एक और त्रुटि यह है कि उन्होंने स्वीकार किया कि इतिहास की प्रक्रिया आंशिक रूप से ज्ञान की दिशा से नियंत्रित होती है। यदि दिशा की भविष्यवाणी नहीं की जा सकती, तो हेगेल में खुलेपन और अनिश्चितता के कारक का कम–आकलन होता है।

2.8 पॉपर द्वारा मार्क्सवाद की आलोचना

पॉपर (1945) द्वारा मार्क्सवाद की आलोचना का खंडन उतना ही कठिन है क्योंकि मार्क्सवाद वास्तविकता को देखते हुए लगातार अपने सिद्धान्त में सुधार लाता रहता है। पॉपर मार्क्स की वैज्ञानिकता के बारे में षंकालु थे क्योंकि वैज्ञानिक सिद्धान्त हर वस्तु की व्याख्या नहीं करता। वे प्लेटो और हेगेल के साथ मार्क्स को भी खुले समाज का विरोधी समझते थे। मार्क्सवाद के अनुसार इतिहास के नियमों का अध्ययन करके मूलभूत परिवर्तन लाए जा सकते हैं। लेकिन पॉपर ने मार्क्स की सामाजिक इंजीनियरिंग को अस्वीकृत कर दिया क्योंकि वह व्यक्ति को समाज के सामने गौण मानता था। पॉपर ने ऐतिहासिकता, संपूर्णवाद और यूटोपियाई मार्क्सवादी विचार भी अस्वीकृत कर दिया। बदले में उन्होंने कदम–ब–कदम सामाजिक इंजीनियरी का विचार पेश किया, जो धीरे–धीरे होगा और थोड़ा, ताकि कमियां और त्रुटियां सुधारी जा सकें। इससे आम बहस और जनतांत्रिक तथा बहुमतवादी प्रक्रिया में हिस्सेदारी संभव हो सकती है।

पॉपर का दावा था कि वैज्ञानिक समाजवाद न सिर्फ समाज के बारे में गलत था बल्कि विज्ञान के बारे में भी। मार्क्स के पूँजीवाद का कभी अस्तित्व था ही नहीं। मार्क्स ने अर्थशास्त्र को ही सबसे महत्वपूर्ण बना दिया और ध र्म, राष्ट्रीयता, मित्रता जैसे कारकों की उपेक्षा कर दी। समाज उससे कहीं अधिक था जितना मार्क्स ने पेश किया। लेकिन अर्थशास्त्र के प्रभाव बढ़–चढ़कर

पेश करने के बावजूद यह सच है कि, ''मार्क्स सामाजिक एवं ऐतिहासिक विज्ञानों में यह महत्वपूर्ण विचार लाया कि आर्थिक परिस्थितियाँ समाज के जीवन में बड़े महत्व की होती हैं मार्क्स से पहले गंभीर आर्थिक इतिहास नाम की कोई चीज नहीं थी।'' (पॉपर 1996; 20)

कॉर्नफोर्थ ने द ओपन फिलॉसफी एंड द ओपन इनिमीज (1956) में पॉपर पूँजीवाद और खुला समाज साथ–साथ रहने और पूँजीवाद के मूलभूत रूप बदल जाने के विचारों पर विश्वास करने का आरोप लगाया। उनके लिए ''खुले समाज के मित्र जो पूंजीवाद से मुक्ति चाहते है, इसके शत्रु हैं खुले समाज के लिए संघर्श वास्तव में शोषण रोकने के हर कदम के विरूद्ध संघर्ष है। वे कम्युनिज्म व्यक्तिगत आजादी, विज्ञान, कला, संस्कृति और सभ्यता नष्ट करेगा और जड़सूत्रवाद को मजबूत करेगा। कम्युनिज्म का अर्थ कानूनहीन निरंकुशता और हिंसा नहीं थी।

2.9 निष्कर्ष

पॉपर ने वैज्ञानिक ज्ञान के स्वरूप और प्रक्रिया पर विचार करते हुए जो निष्कर्ष निकाले है, वे उदारवादी मूल्यों के समर्थन का एक नया आधार प्रस्तुत करते है। यह पॉपर की विलक्षण प्रतिभा का परिचायक है। उसके तर्क का सारांश यह है कि जैसे वैज्ञानिक ज्ञान का उत्तरोत्तर विकास होता है, वैसे ही सुधार का कार्य भी धीरे–धीरे संपन्न करना चाहिए, क्योंकि उसकी सफलता ज्ञान के विकास पर आश्रित है। इसी आधार वह 'क्रान्ति' का विरोध करता है। परंतु चिंतन के क्षेत्र में वह क्रान्ति का उतना विरोध नहीं करता जितना कि सामाजिक पुनर्निर्माण के क्षेत्र में करता है, क्योंकि चिंतन के क्षेत्र में क्रान्ति होने पर रक्त की एक बूँद भी नहीं बहाई जाती।

कुछ भी हो, सामाजिक परिवर्तन के क्षेत्र 'क्रमिक सुधार' अधिक उपयुक्त है, या क्रान्ति, यह विवाद का विषय है। उदाहरण के लिए बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में फ्रांसीसी विचारक जॉर्ज सॉरेल (1847–1922) ने यह तर्क दिया था कि क्रमिक सुधार से वास्तव में कुछ भी फायदा नहीं होता। विशेषाधिकार–प्राप्त वर्ग जब वंचित वर्ग को छोटी–छोटी रियायतें देता है तो वे उसके तात्कालिक असंतोष को तो शांत कर देती है, परंतु उनका कोई चिरस्थायी प्रभाव नहीं होता। क्रान्ति के समर्थक यह मानते हैं कि क्रमिक सुधार के द्वारा सामाजिक विषमताओं (Social Inequalities) में कोई यथार्थ अंतर नहीं आ पाता। परंतु क्रान्ति के विरोध उससे जुड़े हुए रक्तपात, हिंसा

और नर–संहार की निंदा करते हैं। देखा जाए तो सामाजिक पुनर्निर्माण का कोई बँधा–बँधाया रास्ता नहीं सुझाया जा सकता। क्रमिक सुधार कहीं छोटी–छोटी रियायतें बन कर न रह जाएं जो कालांतर में प्रभावशून्य हो जाते हैं, बल्कि इनका प्रयोग 'अवसर की समानता' (Equality of Opportunity) बढ़ाने तथा सामाजिक जीवन में धन–संपदा, पद–प्रतिष्ठा और शक्ति की भारी विषमताओं में सार्थक अंतर लाने के लिए किया जाए।

2.10 प्रश्न

दीर्घउत्तरीय प्रश्न–

1. कार्ल पॉपर के अनुसार तार्किक प्रत्यक्षवादियों का खंडन किस प्रकार किया गया।

2. पॉपर का कहना था कि वैज्ञानिक कथन की कसौटी सत्यापनीयता नहीं बल्कि उसकी मिथ्यापनीयता है व्याख्या करें।

3. कार्ल पॉपर ने किन आधारों पर प्लेटो हेगेल और मार्क्स को खुले समाज का शत्रु बताया?

4. कार्ल पॉपर के ''इतिहासवाद के खण्डन'' सिद्धान्त का आलोचनात्मक विवेचन कीजिए।

लघुउत्तरीय प्रश्न–

1. कार्ल पॉपर ने उत्तरोत्तर विकास या परिवर्तन के सिद्धान्त का समर्थन क्यों किया?

2. ''इतिहासवाद एक छद्म विज्ञान है'' टिप्पणी कीजिए।

3. कार्ल पॉपर के अनुसार ओपेन सोसाइटी या खुला समाज क्या है?

4. प्लेटो हीगल व मार्क्स को पॉपर किन आधारों पर खुले समाज का शत्रु मानता है?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. द लॉजिक ऑफ साइंटिफिक डिस्कवरी के लेखक कौन हैं–

(अ) कार्ल पॉपर (ब) प्लेटो

(स) अरस्तू (द) जोन रायल

2. पॉपर का पूरा नाम क्या था?

(अ) कार्ल जोन पॉपर (ब) कार्ल पॉपर

(स) जोन पॉपर (द) कार्ल रेमंड पॉपर

3. कार्ल पॉपर के अनुसार वैज्ञानिक कथन की कसौटी क्या है?

(अ) सत्यापनीयता (ब) प्रमाणिकता

(स) मिथ्यापनीयता (द) प्रयोग

4. कार्ल पॉपर ने निम्न विचारक को खुले समाज का शत्रु कहा।

(अ) अरस्तू (ब) हॉब्स

(स) लॉक (द) प्लेटो

उत्तर–

1. अ 2. द 3. स 4. द

संदर्भ सूची–

1. गाबा ओ.पी.– राजनीतिक विचारक विश्वकोष, मयूर पेपर वैक्स पब्लिकेशन

2. मुखर्जी प्रो0 सुब्रत– पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

इकाई–3 : जॉन डीवी का व्यवहारवाद

इकाई की रूपरेखा

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 जॉन डीवी का जीवन परिचय

3.4 जॉन डीवी व्यवहारवादी विचारो का विकास

3.5 डीवी का व्यवहारवादी दर्शन

3.6 व्यवहारवादी दर्शन की कमियां

3.7 बोध प्रश्न

3.8 उपयोगी पुस्तके/संदर्भ सूची

3.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप–

- जॉन डीवी के जीवन के विषय जान सकेंगे।
- उनके व्यवहारवादी दर्शन से अबगत होंगे।
- व्यवहारवाद की कमियां जान सकेंगे।

3.2 प्रस्तावना

जॉन डीवी व्यवहारवाद को प्रस्तुत करने वाले प्रमुख दार्शनिक विचारक थे जिनके जीवन काल में व्यवहारवाद ऊँचे शिखर तक पहुँचा। उनके विचारों का प्रभाव केवल अमेरिका में ही नहीं बल्कि अन्य देशों पर भी पड़ा। व्यवहारवादी दर्शन में डीवी के मुख्य सिद्धान्तों में शिक्षा, अनुभववाद, उपकरणवाद रहें हैं। जिसका उन्होंने विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया है।

3.3 जॉन डीवी का जीवन परिचय

जॉन डीवी का जन्म अमेरिका के वर्माण्ट में 1859 में हुआ था। डीवी अपने जीवन में डार्विन के विकासवादी सिद्धान्त से प्रभावित थे। डीवी अमेरिका के प्रमुख दार्शनिक, समाज सुधारक रहें हैं जिन्होने दार्शनिक व्यवहारवाद को विकसित किया। डीवी अपने विचारों में पियर्स और विलियम जेम्स के विचारों से प्रभावित रहे और उन्होंने ''प्रैगमैटिज्म'' नामक एक नए दर्शनशास्त्र के एक सम्प्रदाय की शुरूआत की।

जॉन डीवी व्यवहारवादी दर्शन को उसकी प्रौढ़ावस्था तक पहुँचाने वाले प्रमुख दार्शनिक हैं। जॉन डीवी ने कुछ महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की जैसे– How we think, Human Nature and conduct, common faith, logic. The theory of Inquiry freedom and culture, Public and its Problems.

जॉन डीवी का प्रभाव अपने देश (अमेरिका) में ही नहीं बल्कि अन्य देशों पर भी पड़ा। डीवी व्यवहारवाद के प्रमुख दार्शनिक है अतः उनपर अपने पूर्ववर्ती दार्शनिकों का गहरा प्रभाव पड़ा है। जॉन डीवी अपने जीवन काल में हीगल से काफी प्रभावित रहे हैं।

जॉन डीवी ने जॉन हॉकिन्स से पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की और अमेरिका के प्रसिद्ध विश्वविद्यालयों से अध्ययन का कार्य सम्पादित किया। दर्शन के क्षेत्र में उपयोगी ग्रन्थो को प्रकाशित किया। जॉन डीवी ने 'विश्वविद्यालय प्रारम्भिक विद्यालय की स्थापना की यह विद्यालय 'डीवी स्कूल' के नाम से जाना जाता है।

3.4 जॉप डी.वी. का व्यवहारवादी विचारों का विकास

व्यवहारवाद का विकास 19वी शताब्दी के अन्त में अमेरिका में प्रारम्भ हुआ व्यवहारवाद एक महत्वपूर्ण दर्शन था जिसे आधुनिक युग के अनेक दार्शनिको ने अपने विचारों के माध्यम से प्रस्तुत किया। व्यवहारवादी लक्षण यूनानी काल में सुकरात, अरस्तू, सोफिस्ट के विचारो में देखने को मिलते है और आधुनिक काल में कॉंट, डेविड ह्यूम, काम्टे के विचारो में इसके दर्शन देखने को मिलते हैं। जॉन डीवी ने अपने जीवन काल में कांट के विचारों से प्रेरित होकर व्यवहारवादी विचारों को प्रस्तुत किया जिसे प्रैगमैटिज्म भी कहा जाता है। जिसका अर्थ क्रिया से है इसी शब्द से व्यवहार और व्यवहारिक शब्द उत्पन्न हुए है। सामान्य अर्थो में प्रैगमैटिज्म व्यवहारों और क्रियाओं का दर्शन है जिसमे हम विचारो को एक अर्थ प्रदान करते हैं। इसके अन्तर्गत

प्रत्येक विचार किसी क्रिया का संकेत देता है क्रिया का परिणाम विचार के अर्थ और प्रामाणिकता की जाँच को प्रस्तुत करते है।

जॉन डीवी ने दर्शन में सबसे बड़ी कमी व्यवहार और अनुभवों का अभाव देखा। डीवी अपने दर्शन में कारणवाद पर अधिक जोर देते हैं क्योंकि कोई विचार समस्या के समाधान एक साधन के रूप में प्रयुक्त होता है। जीवन में इस साधन का प्रयोग करना चाहिये।

प्रयोगवाद से तात्पर्य तर्क पर आधारित स्वरूप से है जिसकी महत्वता इस बात पर निर्भर करती है कि उसकी प्रामाणिकता की जाँच ठीक से हुई हैं कि नहीं।

डीवी का प्रैगमैटिज्म का दर्शन इस बात पर बल देता है कि विचारों को कितनी सत्यता की कसौटी और प्रामाणिकता में लाभदायकता के साथ माना गया है। उन विचारों को सत्य की कसौटी पर देखने के बाद उसे उपयोगितावादी कहा जा सकता है इसे प्रैगमैटिज्म के अतिरिक्त अर्थक्रियावाद भी कहा जाता है।

डीवी के अनुसार विचारों की उपयोगिता परिस्थितियों के साथ बदलती रहती है। उसके दर्शन की मुख्य विशेषता उसका यथार्थवादी दृष्टिकोण, वस्तुवाद भौतिकवाद, प्रयोगवाद, क्रिया का महत्व, रहा है।

डीवी ने अपने सिद्धान्तो में सहभागिता और वास्तविक समस्या का समाधान करने के लिए उसे आपस में जोड़ने पर बल दिया। उन्होंने शिक्षा के सिद्धान्त को प्रभावित किया।

जॉन डीवी का मानना था कि सत्य का पोषण तब तक नही किया जा सकता है जब तक कि वह क्रियात्मक व्यवहार द्वारा मजबूत न हो। उनका मानना था कि चिंतन के परिणामों की जाँच करने के लिए उनको कसौटी पर कसना आवश्यक होता है। जॉन डीवी न चिंतन और ज्ञान कि प्रक्रियाओं को समझाने के लिए व्यवहारवादी सिद्धान्तो को बताया।

अर्थक्रियावादी चिंतन का प्रारम्भ मनुष्य की समस्याओं को दूर करने के लिए हुआ। डीवी ने ऐसी रचनाओं की चर्चा कि जिसमें समस्याओं से बचने के उपाय भी सुझाए गये हैं। उन्होंने ऐसी मानसिक अवस्थाओं के बारे में बताया जिससे कारणात्मक स्वभाव पर प्रकाश डाला जा सके।

डीवी के अनुसार जब हम समस्याओं से जूझते है तो हम निर्धारित परिस्थितियों को अनिर्धारित परिस्थितियों में बदलना चाहते हैं डीवी के अनुसार स्वतन्त्र विचार एक भ्रामक कल्पना है और तथ्यों के निरीक्षण से विचार उत्पन्न होते हैं यह विचार किसी परिणाम की अपेक्षा करते हैं। दूसरी ओर यह संकेत देते हैं कि परिणाम की प्राप्ति संभावना हो। इस प्रकार विचार और निरीक्षण आपस में सहसंबंधित होकर समस्या का निर्धारण करते हैं।

डीवी के अनुसार नियंत्रित चिंतन का बहुत महत्व है। वह व्यापारो को अपने मार्गदर्शन द्वारा नियंत्रित करता है। जॉन डीवी ने अपने अर्थ–क्रियावाद को कारणात्मक कहा था और आगे चलकर 1938 में उन्होंने क्रियात्मक सिद्धान्त अपना लिया।

3.5 डीवी का व्यवहारवादी दर्शन

डीवी ने प्रयोग विधि को अपने दर्शन में पर्याप्त स्थान दिया है। सामान्य जीवन के अनुभवों में ही वैज्ञानिक विधि का विकास हुआ है। उनके अनुसार दैनिक जीवन में जो भी निरीक्षण–परीक्षण होता है, उसका सम्बन्ध ा अधिकतर उपभोग की वस्तुओं से होता है। सामान्य विचार व्यावहारिक अधिक होता है, बौद्धिक कम। इसका विकास समूहों के सांस्कृतिक जीवन क्रम में परम्पराओं, व्यवसायों, तकनीको के माध्यम से होता है और यह ज्ञान समूह की सामान्य भाषा के माध्यम से वितरित होता है। विज्ञान इसके विपरीत अपनी विकसित विधियों द्वारा सम्बन्धों का संस्थान निर्मित करता है वस्तुएं गौण हो जाती है अथवा साधनों के रूप में स्वीकृत होती है और सम्बन्ध पृच्छा का विषय बन जाते हैं। डीवी यह स्वीकार करते है कि सामान्य दैनिक जीवन से विज्ञान में प्रवेश करने पर गुणात्मकता पीछे छूट जाती है।

सामान्य मनुष्य के अनुभव तथा वैज्ञानिक अध्ययन की मूल सामग्री में कोई अन्तर नहीं रहता है। दोनों में अन्तर यह है कि सामान्य मनुष्य का ज्ञान विशिष्ट गुणो तक सीमित रह जाता है। अतः अनुभव की वस्तुओं को कोई व्यापक अर्थ नहीं मिल पाता है। जब वस्तुएं संस्थाओं की दृष्टि से देखी जाती है तो व्यष्टि न रहकर वे एक समष्टि का अंग बन जाती है और उन्हें अधिक व्यापक अर्थ प्राप्त हो जाता है।

सामान्यता डीवी के अर्थक्रियावादी विचार अस्थिर प्रतीत होते है। आज के वैज्ञानिक की दृष्टि परिवर्तनों के पीछे छिपे हुए किसी स्थिर सत्य को नहीं खोजती। उसका ध्यान परिवर्तनो की ओर है जो नवीन सम्भावनाओं, नवीन लक्ष्यों तथा किसी स्वर्णिम प्रभाव का संकेत करते हैं। अब परिवर्तन का अर्थ पतन नहीं बल्कि उनके शब्दो में उन्नति है।

अर्थक्रियावाद की माँग विश्व के स्वभाव सम्बन्धी विचार में परिवर्तन करने की है। डीवी के अनुसार विश्व एक स्थिर सत्य प्रक्रिया नहीं है। काल्पनिक आदर्शो के चक्कर मे न पड़कर दर्शन इसी जगत के उच्चतम सम्भव सामाजिक एवं नैतिक उद्देश्यो की पूर्ति में लगकर मनुष्य की सहायता कर सकता है।

जॉन डीवी यूँ कि अपने जीवन काल में जॉन वियर्स और विलियम जेम्स से काफी प्रभावित थे और उनके विचारो का प्रभाव हमे उनके दर्शन के उपकरणवाद में स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है।

डीवी के दर्शन में उनके प्रमुख व्यवहारवादी सिद्धान्त देखने को मिलते है। जैसे–

1. जॉन डीवी के व्यवहारवादी दर्शन की प्रमुख देन उसका उपकरणवाद का सिद्धान्त था। इस सिद्धान्त को डीवी ने बड़ी लगन से कई वर्षो में पूरा किया। इसमें तर्कशास्त्र, मनोविज्ञान, ज्ञान मीमांसा सम्बन्धी विचारों को शामिल किया गया है। डीवी अपने विचारो में बुद्धिवाद और अनुभववाद की आलोचना करते हैं। उनका मानना था कि मनुष्य चिंतन करने के अतिरिक्त कार्य करने में भी सहायक है। परन्तु मनुष्य चिंतन से किसी वस्तु की खोज नहीं कर सकता है। डीवी ज्ञान को मात्र एक उपकरण मानता है।

शोभा निगम के अनुसार चिंतन करने में मनुष्य कोई खोज नहीं करता है और वह खोजकर भी नही सकता है। क्योंकि सत्य न तो बुद्धि में स्थित है और न ही वह किसी वस्तु में स्थित है। सत्य का तो केवल निर्माण होता है और निर्माण परिस्थिति तथा पर्यावरण का परीक्षण हमारी बुद्धि करती है।

डीवी के अनुसार मनुष्य समस्याओं को सुलझाकर अपने और पर्यावरण के अनुकूल बनाता है। डीवी ऐसे दर्शन की आलोचना करते है जो मनुष्य को केवल दर्शनमात्र बनाये। उनके अनुसार चिन्तन और क्रिया को साथ–साथ

चलना चाहिए। जो चिन्तन व्यवहारिक समस्याओं से अलग होकर चलता है वह बेकार हो जाता है। किसी भी चिन्तन का उद्‌भव उसकी समस्याओं से होता है। इन समस्याओं का समाधान ज्ञान के माध्यम से ही सम्भव होता है।

2. जॉन डीवी ने प्रयोगवाद और अनुभववाद पर अपने विचारों को प्रस्तुत किया। डीवी के 'प्रयोगवाद' सम्बन्धी विचार ने को प्रस्तुत किया। डीवी के 'प्रयोगवाद' सम्बन्धी विचार एक कानून और लक्ष्य दोनो है जो कि उसके शिक्षा के दर्शन में स्पष्ट दिखता है। उनके अनुसार विचारों की उपयोगिता समय के साथ बदलती रहती है। डीवी अनुभववाद को महत्वपूर्ण मानता है और उसमें थोड़ा सुधार कर वह इसे प्रयोगात्मक अनुभववाद का नाम देता है। उनके अनुसार जीवन में प्रत्येक वस्तु अनुभव के पश्चात् ही अपनानी चाहिए क्योंकि किसी भी वस्तु को ज्ञान बुद्धि और अनुभव से ही प्राप्त किया जा सकता है।

3. जॉन डीवी ने अपनी पुस्तक 'प्रजातंत्र और शिक्षा' में शिक्षा के प्रगतिशील सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया और बालक केन्द्रित पढ़ाई पर बल दिया। बालकों के अनुभवो को उन्होंने महत्वपूर्ण माना। क्योंकि यह अनुभव ही उनकी समस्याओं के समाधान में महत्वपूर्ण है।

डीवी का मानना था कि देश में एक अच्छी समाज व्यवस्था बनाने एवं अच्छे नागरिक बनाने के लिए शिक्षा की अत्यन्त आवश्यकता है। उन्होंने अपने जीवन काल में शिक्षा के सुधार एवं विकास के लिए महत्वपूर्ण कार्य किए। डीवी का मानना था कि मनुष्य अपनी मूल प्रवृत्तियो से प्रभावित होता है और उसी से वह जीवन का संचालन करता है यही प्रवृत्तियाँ उसे अपने वंश से प्राप्त होती है। शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति के अच्छे चरित्र का निर्माण होता है तथा वह ऐसी आदतों का निर्माण करता है जो उसके लिए उपयोगी और लाभकारी हो।

अमेरिकी दार्शनिक डीवी ने इस प्रकार ऐसा दर्शन प्रस्तुत कर अपने जीवन में महत्पूर्ण एवं सराहनीय योगदान प्रस्तुत किया है।

3.6 व्यवहारवादी दर्शन की कमियां

जॉन डीवी ने व्यवहारवादी दर्शन प्रस्तुत कर एक प्रशंसनीय कार्य किया।

व्यवहारवाद में कुछ कमियां या दोष दिखाई देते हैं जो निम्नलिखित है–

1. व्यवहारवाद तार्किक नियमों का विरोध करता है। व्यवहारवादियो ने दर्शन की उपादेयता को सत्य की कसौटी माना और यह भी माना कि जो सत्य है वही उपयोगी है परन्तु उपयोगी वस्तु सदैव सत्य नहीं हो सकती है।

2. जो तथ्य जीवन में काम आते हैं जरूरी नहीं है कि वो सत्य हो क्योंकि बहुत से ऐसे तथ्य भी है जो जीवन में काम आते है परन्तु सत्य नहीं होते है।

3. डीवी को अनुसार–दर्शन में सबसे अधिक बात व्यवहार और अनुभव के सम्बन्धों का अभाव दिखाई दिया। अतः उन्हे यह अव्यवहारिक लगा।

4. व्यवहारवाद सत्यता की जाँच करने के लिए प्रयोगो को महत्व देता है परन्तु प्रत्येक स्थान पर प्रयोग नहीं किया जा सकता है। प्रयोग के लिए पर्याप्त जाँच की आवश्यकता है। बहुत से ऐसे तथ्य भी होते हैं जिनकी जाँच सम्भव नहीं हो पाती है।

5. व्यवहारवादियों का मानना है कि सत्य का निर्माण होता है और जीवन में निरन्तर परिवर्तन और विकास चलते रहते हैं इसके जीवन में स्थिरता का होना आवश्यक है।

3.7 बोध प्रश्न

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1. जॉन डीवी के व्यवहारवादी दर्शन की व्याख्या कीजिए।

2. व्यवहारवाद की कमियो या दोषों का वर्णन कीजिए ?

3. व्यवहारवाद के विकास में जॉन डीवी के योगदान का वर्णन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

4. ‘प्रैगमैटिज्म’ से आप क्या समझते है?

5. व्यवहारवादी सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।

3.8 उपयोगी पुस्तकें/संदर्भ सूची

1. समकालीन पाश्चात्य दर्शन – डॉ0 लक्ष्मी सक्सेना

2. पाश्चात्य दर्शन के सम्प्रदाय – शोभा निगम

3. द फिलॉसफी ऑफ जॉन डीवी

4. द मॉरल राइटिंग्स ऑफ जॉन डीवी

5. द पॉलिटिकल राइटिंग्स ऑफ जॉन डीवी

उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

MAPS-118

अर्वाचीन राजनीतिक सिद्धान्त

खण्ड

2

नव मार्क्सवादी राजनीतिक सिद्धान्त

इकाई - 1	5
हर्बर्ट मार्क्यूज	
इकाई -2	15
युर्गेन हेबरमास	
इकाई -3	25
एंटोनियो ग्राम्शी	

संरक्षक

प्रो० एम०पी० दुबे — कुलपति
प्रो० डी.पी. त्रिपाठी — कुलसचिव

पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड/विशेषज्ञ समिति)

डॉ० एम०एन० सिंह
निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज।

प्रो. संजय श्रीवास्तव
राजनीति विज्ञान विभाग
बी.एच.यू. वाराणसी

प्रो० एच०के० शर्मा
प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश

डॉ. के.डी. सिंह
राजनीति विज्ञान विभाग
हंडिया पी.जी. कालेज, इलाहाबाद

डॉ. दीपशिखा श्रीवास्तव
असि० प्रोफेसर (सं), राजनीतिक विज्ञान,
समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज।

पाठ्यक्रम लेखन

प्रो. संजय श्रीवास्तव — लेखक
राजनीति विज्ञान विभाग — खण्ड. 01
बी.एच.यू. वाराणसी — इकाई – 01, 02, 03

डॉ. ए.पी. सिंह — लेखक
शैक्षणिक परामर्शदाता, राजनीतिक विज्ञान, — खण्ड. 02
समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज। — इकाई – 01, 02, 03

डॉ. दीपशिखा श्रीवास्तव — लेखक
असि० प्रोफेसर (सं), राजनीतिक विज्ञान, — खण्ड. 03
समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज। — इकाई – 01, 02, 03

डॉ. के.डी. सिंह — लेखक
राजनीति विज्ञान विभाग — खण्ड. 04
हंडिया पी.जी. कालेज,, इलाहाबाद — इकाई – 01, 02, 03

प्रो० एच०के० शर्मा — लेखक
प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग — खण्ड. 05
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश — इकाई – 01, 02, 03

डॉ. दीपशिखा श्रीवास्तव — **समन्वयक**

असि० प्रोफेसर (सं), राजनीतिक विज्ञान,
समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज।

संपादक

प्रो० एच०के० शर्मा — प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज– 2022

MAPS - 110 – अर्वाचीन राजनीतिक चिन्तन
ISBN:

सर्वाधिक सुरक्षित। इस सामग्री के किसी भी अंश को उत्तर प्रदेश राजर्षि टंडन मुक्त विश्वविद्याल की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में माइमोग्राफी (वक्रमुद्रण) द्वारा या किसी अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नही है।
उत्तर प्रदेश राजर्षि टंडन मुक्त विश्वविद्याल, प्रयागराज सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्यसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टंडन मुक्त विश्वविद्याल, की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।
नोट : पाठ्य सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आमडों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

खण्ड–2 का परिचय : नव मार्क्सवादी राजनीतिक सिद्धान्त

नव–मार्क्सवादी सिद्धान्त, मार्क्स के चिंतन में निहित 'प्रभुत्व और पराधीनता' का विस्तृत विश्लेषण करने वाला नवीन चिंतन है। इस विचार समूह की शुरूआत बीसवीं शताब्दी (20वीं) के पूर्वार्द्ध में मानी जाती है। यह सिद्धान्त तत्कालीन बदलते हुए वैश्विक परिवेश में मार्क्सवाद की कुछ पुरानी मान्यताओं व सिद्धान्तों से असहमति प्रकट करता है। इस नव मार्क्सवादी सिद्धान्त को आधारभूमि फ्रैंकफर्ट स्कूल के अन्तर्गत प्राप्त होता है, जो कि बुद्धिजीवियों का एक संगठित समूह था। इस स्कूल ने राजनीतिक सिद्धान्त में आलोचनात्मक सिद्धान्त को प्रस्तुत किया। इसी आधार पर नवमार्क्सवाद ने मार्क्सवाद के कुछ बुनियादी सिद्धान्तों (वर्ग संघर्ष, इतिहास की आर्थिक व्याख्या, भौतिकतावाद आदि) से असहमति और कुछ विचारों (क्रान्ति के साधान आदि) से सहमति प्रकट की। यह प्रजातान्त्रिक मूल्यों पर आधारित एक नवीन चिंतन–धारा को विकसित करने का प्रयास करता है।

नवमार्क्सवादी राजनीतिक सिद्धान्त मार्क्सवाद के सबसे प्रमुख सिद्धान्त 'वर्ग संघर्श' (Class struggle) की आलोचना करता है, किन्तु समाज में वर्ग–चरित्र के अस्तित्व को अवश्य ही स्वीकार करता है। नवमार्क्सवादियों के अनुसार पूंजीवादी युग में बुर्जुआ एवं सर्वहारा वर्ग के मध्य क्रान्ति का कारण सिर्फ आर्थिक ही नहीं, अपितु सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक एवं राजनीतिक पहलू से भी सम्बन्धित होता है। इन विभिन्न आधारों पर ही 'प्रभुत्व और पराधीनता' का गहन अवलोकन भी करता है। इस प्रकार नव मार्क्सवाद पूंजीवाद को केवल उत्पादन के साधनों के आधार पर नहीं देखता, अपितु आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक आदि आधारों पर देखता है। वास्तव में देखा जाय तो द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात विश्व की चतुर्दिक परिवर्तित होने वाली परिस्थितियों से उत्पन्न होने वाली नवीन जटिल समस्याओं ने इस विचारधारा के उद्‌भव एवं विकास में विशेष योगदान दिया है।

नवमार्क्सवाद मूलतः पूंजीवादी विचारधारा एवं संस्कृति के संपूर्ण प्रभाव को जड़ से खत्म करने हेतु एक प्रति–संस्कृति के विकास को बढ़ावा देता है। इस विरोधी संस्कृति का बढ़ावा सिर्फ आर्थिक ही नहीं, अपितु सांस्कृतिक एवं मनोवैज्ञानिक स्तरों पर भी दिया जाता है। इसीलिए ये सभी समस्याओं की जड़ ऐतिहासिक भौतिकतावाद में ही नहीं अपितु चेतना–तत्व में मानते हैं। इसी स्तर पर ये हीगल के द्वन्दवाद को स्वीकार करते हैं, जहॉ चेतना ही सबसे प्रमुख घटक होता है। इसीलिए कुछ नवमार्क्सवादी सिद्धान्तकारों द्वारा

मार्क्सवादी आधार–अधिरचना की जगह केवल संरचनावादी सिद्धान्त का बहुत व्यापक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया। समकालीन नवमार्क्सवादी सिद्धान्तकारों में हर्बर्ट मार्क्यूज, युर्गेन हेबरमास, लैसजैक कोलीकावस्की, एस0 स्टोजानोनिक, थ्योडोर एडोर्नो, फ्रेटज केनन, मैक्स हारर्वाइमर, अर्निस्ट बच, लुई आल्थ्यूजर, एरिकफ्रॉम, चे गुवेरा तथा एंटीनियो ग्राम्शी आदि का सबसे महत्वपूर्ण योगदान है।

प्रस्तुत खण्ड में तीन सबसे प्रमुख एवं प्रतिनिधि नवमार्क्सवादी विचारक – हर्बर्ट मार्क्यूज, युर्गेन हेबरमास व ग्राम्शी, के सिद्धान्तों का विवेचन एवं विश्लेषण किया जा रहा है।

इकाई—01 हरबर्ट मार्क्यूज

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 आरम्भिक जीवन एवं शिक्षा—दीक्षा

1.3 मार्क्यूज और नवमार्क्सवाद

1.4 फ्रैंकफर्ट स्कूल और आलोचनात्मक सिद्धान्त

1.5 हीगेलियन राज—दर्शन का पुनर्विवेचन

1.6 एक आयामी मनुष्य की अवधारणा

1.7 उपभोक्तावाद की मिथ्या—चेतना

1.8 मार्क्यूज की क्रान्ति सम्बन्धी संकल्पना

1.9 स्वतंत्रता की संकल्पना

1.10 सारांश

1.11 उपयोगी पुस्तकें

1.12 सम्बन्धित प्रश्न

1.13 प्रश्नोत्तर

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप —

- हरबर्ट मार्क्यूज के जीवन पर टिप्पणी कर सकेंगे।
- नवमार्क्सवाद, मार्क्सवाद से किस प्रकार भिन्न हैं और तत्कालीन परिस्थिति में इसकी आवश्यकता क्यों पड़ी को समझ सकेंगे।
- फ्रैंकफर्ट स्कूल की छत्रछाया में उपजे आलोचनात्मक सिद्धान्त को जान सकेंगे।
- मार्क्यूज के अलगाव सिद्धान्त अर्थात एक आयामी मनुष्य की अवधारणा को भी भली—भाँति समझ सकेंगें।

1.1 प्रस्तावना

नवमार्क्सवाद को द्वितीय विष्व युद्ध के बाद उपजी नवीन परिस्थितियों में 'मार्क्सवाद की पुनर्व्याख्या' कहा जा सकता है, किन्तु मार्क्स के दर्शन से

प्रभावित होते हुए भी मार्क्सवाद की मूलभूत प्रस्थापनाओं का तीव्र विरोधी भी है। इस नवमार्क्सवादी दर्शन पर व्यक्तिवाद की स्वतंत्रता और आदर्शवाद की बौद्धिक तत्वों का प्रभाव भी स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। इस विचारधारा की पृष्ठभूमि द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विश्व की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं मनोवैज्ञानिक क्षेत्रों में उपस्थित होने वाले क्रान्तिकारी परिवर्तनों एवं सम्बद्ध समस्याओं से विषेश रूप से जुड़ी हुई है। इसके अन्तर्गत दक्षिणपंथी और वामपंथी मार्क्सवादी संशोधनवाद दोनों की मूलभूत विशेषताओं का अवलोकन समन्वित रूप में किया जा सकता है। नवमार्क्सवाद ने सामाजिक समानता और स्वतंत्रता, विशेषतः आर्थिक समानता पर बल दिया। इसने व्यक्ति, व्यक्तिसमूह तथा वर्ग का वर्ग एवं राज्य सभी के द्वारा किये जाने वाले हर प्रकार के शोशण, दमन और उत्पीड़न का मुखर विरोध किया।

आधुनिक प्रौद्योगिकी के इस क्रान्तिकारी युग में नवमार्क्सवादी यह मानते हैं कि व्यक्ति का व्यक्तित्व खतरे में है। उसके व्यक्तित्व का विखण्डन आन्तरिक एवं बाह्य दोनों स्तरों पर हो रहा है। इसी को अलगाव का सिद्धान्त भी कहते हैं जहॉ व्यक्ति समाज से, यहॉ तक कि स्वयं से भी विमुख हो जाता है। आधुनिक अमरीकी मनोवैज्ञानिक और सिद्धान्तकार एरिक फ्रॅाम (1900–80) ने सर्वप्रथम इसकी अवधारणा प्रस्तुत की। उसने समकालीन पूंजीवादी समाज के अन्तर्गत मनुष्य के अकेलेपन की पीड़ा का बड़ा ही मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है। आज तो व्यक्ति भौतिक अकेलेपन के साथ ही साथ प्रचलित महत्वपूर्ण विचारों, मूल्यों प्रतिमानों से कटकर नैतिक अकेलेपन का भी शिकार हो गया है। उसके व्यक्तित्व का एक ही आयाम रह गया है। मात्र उसकी भौतिक इच्छाओं की सन्तुष्टि। आज एक उपभोक्तावादी संस्कृति व्यक्तित्व पर हावी हो गयी है। आज रचनात्मक कार्य ही एकमात्र उपाय है जो व्यक्ति और समाज के टूटे हुए सम्बन्ध को पुनः कायम रख सकता है। अमरीकी मनोवैज्ञानिक एरिकफ्रॅाम का भी संपूर्ण प्रयास व्यक्ति और समाज के टूटे हुए सम्बन्ध को फिर से जोड़ने का है जिससे वह पुनः अपने बहुआयामी व्यक्तित्व से विभूषित हो सके।

नवमार्क्सवादी जनकल्याणकारी कार्यों के माध्यम से वर्गीय हितों को नहीं, अपितु संपूर्ण मानव हितों को प्रमुखता देता है। यहॉ भी उनका मूल साध्य व्यक्ति की स्वतंत्रता ही है। जिसके लिए वह एक स्वतंत्र एवं सहयोगमूलक समाज की स्थापना को एक साधन के रूप में स्थापित करना चाहते हैं। इसके लिए वे विष्वषान्ति और निःशस्त्रीकरण को भी स्वतंत्रता जैसे सर्वोच्च प्राप्तव्य हेतु अपरिहार्य मानते हैं। नवमार्क्सवादी एक ऐसी समाजवादी व्यवस्था

लाना चाहते हैं, जहॉ व्यक्ति अपने संपूर्ण मानवीय अधिकारों और स्वतंत्रताओं का निर्वाध उपभोग कर सकेगा। यहॉ किसी प्रकार का परायापन नहीं होगा और व्यक्ति बहुआयामी व्यक्तित्व से विभूषित होगा।

1.2 आरम्भिक जीवन एवं शिक्षा–दीक्षा

हरबर्ट मार्क्यूज का जन्म 1898 में बर्लिन (जर्मनी) में हुआ था। इन्होंने शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात मैक्स होर्कीमन एवं टी डब्ल्यू एडोर्नो के सहयोग करने पर मार्क्सवादी समाजशास्त्र के रूप में फ्रैंकफर्ट स्कूल की स्थापना की थी। मार्क्यूज समकालीन प्रतिनिध नव–मार्क्सवादी विचारक के रूप में विख्यात है। यह प्रारम्भ में क्रान्तिकारी पार्टी का सदस्य भी नामित हुआ था द्वितीय विश्व युद्ध के बाद बर्लिन छोड़कर संयुक्त राज्य अमरीका की नागरिकता प्राप्त कर ली थी। उन्होंने यूरोप के विभिन्न विश्वविद्यालयों में अध्यापन का कार्य किया। इसके साथ ही अमरीका के ब्रेन्डीज विश्वविद्यालय में राजनीति विज्ञान और दर्शनशास्त्र विषय में अध्यापक के रूप में शिक्षण कार्य किया। किन्तु 1968 में यहॉ से त्यागपत्र देकर पेरिस विश्वविद्यालय में अध्यापन का कार्य करने लगे। मार्क्यूज को दर्शन तथा राजनीति का प्रकाण्ड विद्वान माना जाता है। अर्थशास्त्र एवं समाज शास्त्र जैसे विषयों का उनको गहरा ज्ञान था। इसीलिए उनके लेखन की परिधि विस्तृत एवं अभूतपूर्व थी।

नवमार्क्सवादी सिद्धान्तकारों में सर्वोच्च स्थान रखने वाले हर्बर्ट मार्क्यूज की रचनाओं (प्रमुख ग्रन्थों) का 20वीं शताब्दी के समकालीन राजनीतिक विचारों के इतिहास में अविस्मरणीय योगदान है। मार्क्यूज के महत्वपूर्ण ग्रन्थ क्रमशः हैं : ''रीजन एण्ड रिवोल्यूशन : हीगल एण्ड दि राइज आफ सोशल थियरी (1941), ईरोस एण्ड सिविलाइजेशन : ए थियोसोफिकल इन्क्वायरी इन टू फ्रायड (1955), 'सोवियत मार्क्सिज्म : ए क्रिटिकल एनालिसिस (1958),' वन डायमेंशनल मैन (1964),' ए क्रिटिक आफ प्योरटू लियरेंस (1965) आदि।

1.3 मार्क्यूज और नवमार्क्सवाद

हरबर्ट मार्क्यूज को 20वीं शताब्दी का समकालीन नवमार्क्सवादी विचारक माना जाता है। अन्य नवमार्क्सवादी विचारकों की भॉति इसके भी चिंतन का आधार समसामयिक विचारधाराओं से सम्बद्ध विभिन्न संस्थापनाओं एवं मूल्यों से रहा है। इन संस्थापनाओं में सबसे प्रमुख स्थान मार्क्सवाद एवं अस्तित्ववाद का रहा है। इनके प्रभावों को अपनी रूचि के अनुसार ही न्यूनाधिक मात्रा में ग्रहण किया। मार्क्यूज ने अपने इन्हीं विचारों के क्रम में, क्रियावाद और

प्रत्यक्षवाद का विरोध करते हुए मनोविश्लेषणात्मक दृष्टिकोण को अपनाने का हर संभव प्रयास किया। इसलिए समकालीन विषम परिस्थितियॉ का विश्लेषण करते हुए बतलाया कि विद्यमान सामाजिक – आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थितियॉ व्यक्ति के व्यक्तित्व को विखण्डित कर रही हैं। राज्य की निरंकुशता के कारण व्यक्ति का व्यक्तित्व संकट में पड़ गया है। आज व्यक्ति की कोई पहचान ही नहीं रह गयी है। वह एक पदार्थ मात्र बनकर रह गया है। इसीलिए मार्क्यूज संपूर्ण व्यवस्था परिवर्तन हेतु क्रान्ति को अपरिहार्य मानता है।

मार्क्यूज के अनुसार वर्तमान तानाशाही राज–व्यवस्था में अपने व्यक्तित्व से ही दूर हो चुके व्यक्ति की गरिमा नहीं स्थापित की जा सकती है। उसकी स्वतंत्रता एवं अधिकारों की प्राप्ति भी संभव नहीं है। यहॉ पूंजीवाद से प्रभावित लोकतंत्र भी इसकी प्राप्ति में अक्षम ही हैं। जबकि इसकी प्राप्ति न केवल व्यक्ति के लिए बल्कि समूचे समाज और उससे सम्बद्ध अन्य व्यवस्थाओं के लिए भी बहुत ही महत्वपूर्ण है। राज्य से व्यक्ति की धीरे–धीरे विमुखता ही उसे निरंकुशता की तरफ अग्रसर भी कर रही है। यहॉ व्यक्ति अपने विनाश का जिम्मेदार स्वयं सिद्ध हो रहा है। जैसा फ्रायड (विख्यात मनोविश्लेषक) से प्रेरणा ग्रहण करते हुए मार्क्यूज कहता है कि व्यक्ति आज दुखित क्यों है? क्योंकि वह अपनी मूलभूत प्रवृत्तियों, संवेगों और संवेदनाओं से ही दूर हो गया है। इसी कारण व्यक्ति वर्तमान व्यवस्था से भी विछिन्न हो गया है। वह क्रान्ति के लिए इसीलिए संगठित भी हो रहा है । मार्क्स का क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग जहॉ आर्थिक क्षमता विहीन होकर क्रान्ति के लिए अग्रसर होता है, वहीं पर मार्क्यूज का व्यक्ति अपने व्यक्तित्व से विमुख हो जाने के कारण क्रान्ति की सर्जना करता है।

किन्तु आधुनिक परिस्थिति में यह संभव ही नहीं है कि अकेले सर्वहारा वर्ग ही व्यवस्था परिवर्तन हेतु क्रान्ति कर पायेगा। क्योंकि वह बुर्जुआ प्रवृत्तियों का बुरी तरह शिकार हो चुका है। चूँकि वर्तमान निरंकुश व्यवस्थाएं भी बल और हिंसा के आधार पर अपने को जीवित रखती है, इसलिए उसका उन्मूलन भी क्रान्ति द्वारा बल और हिंसा के आधार पर ही संभव है। इस क्रान्ति में सभी वर्ग के व्यक्तियों का स्वतंत्रता, अधिकार और व्यक्तित्व की प्राप्ति हेतु पारस्परिक सहयोग होगा। किन्तु मार्क्यूज कहता है कि व्यक्तियों में आज संवेदना एवं चेतना जागृति करनी होगी तभी क्रान्ति संभव है। इसके लिए सर्वप्रथम क्रान्ति की आधारभूमि तैयार करनी होगी जिसके लिए बुद्धिजीवी,

छात्र और नवयुवक नेतृत्व की भूमिका निभायेंगे। यह वर्ग ही लोगों को प्रशिक्षित करते हुए संवेदना जागृत करेगा। इस प्रकार अन्ततः संगठित क्रान्ति के आधार पर नयी व्यवस्था को स्थापित करते हुए मानवीय गरिमा को पुनः लाना संभव हो सकेगा। इन नवीन आधारों पर ही मार्क्यूज को नवमार्क्सवाद का अग्रणी एवं प्रतिनिधि विचारक कहा जाता है।

1.4 फ्रैंकफर्ट स्कूल और आलोचनात्मक सिद्धान्त

नवमार्क्सवाद का विकासात्मक अवलोकन फ्रैंकफर्ट स्कूल के अन्तर्गत भली–भाँति देखा व समझा जा सकता है। इस स्कूल के अन्तर्गत ही 'आलोचनात्मक सिद्धान्त' (Critical theory) का उद्भव भी होता है। किन्तु सर्वप्रथम फ्रैंकफर्ट स्कूल के उद्भव को समझ लेना आवश्यक हो जाता है। फ्रैंकफर्ट स्कूल जर्मनी के बुद्धिजीवियों का एक समूह था। 1930 में फ्रैंकफर्ट विश्वविद्यालय में इस वैचारिक संस्था की स्थापना की गयी। इसका उद्देश्य भावी राजनीतिक–सामाजिक व्यवस्था की स्थापना हेतु वैचारिक आधार प्रदान करना था। इस पर मार्क्सवाद का गहरा प्रभाव तो था मगर किसी प्रकार की प्रतिबद्धता नहीं थी। इनकी दृष्टि आलोचनात्मक थी, इसीलिए सिर्फ आर्थिक आधार पर ही मार्क्सवाद की भाँति ये समस्याओं का विवेचन नहीं करते अपितु सामाजिक पहलू से उसका गहन अवलोकन करते हैं। ये प्रजातांत्रिक मूल्यों की हर संभव रक्षा करना चाहते हैं। अधिनायकवादी प्रवृत्तियों का ये घोर विरोध करते हैं।

फ्रैंकफर्ट स्कूल से सम्बद्ध सिद्धान्तकारों में हरबर्ट मार्क्यूज के साथ ही साथ मैक्स हार्खाइमर, थियोडोर एडोर्नो, वाल्टर बेंजामिन तथा युर्गेन हेबरमास का नाम बहुत ही सम्मान और प्रमुखता से लिया जाता है। ये सभी प्रकार की प्रभुता का अपनी रचनाओं में मुखर विरोध करते हैं। जैसा मार्क्यूज कहता भी है कि आज का मनुष्य व्यवस्थाओं, (सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक) सभी से विमुख हो चुका है। इसी कारण आज प्रजातान्त्रिक मूल्यों का ह्रास हो रहा है। और अधिनायकवादी ताकतें सबल हो रही हैं। फ्रैंकफर्ट स्कूल व्यक्ति के सर्वांगीण विकास हेतु एक शान्तिपूर्ण विश्व व्यवस्था को स्थापित करना चाहता है। इस विचार समूह ने नवमार्क्सवाद को एक सुदृढ़ आधार भूमि प्रदान की।

1.5 हीगेलियन राजदर्शन का पुनर्विवेचन

मार्क्यूज द्वारा हीगल के राजदर्शन का पुनर्विवेचन अपनी सबसे पहली पुस्तक ''रीजन एण्ड रिवोल्यूशन : हेगेल एण्ड द राइज आफ सोशल थ्योरी

(तर्क बुद्धि और क्रान्ति हेगेल और सामाजिक सिद्धान्त का उदय) (1941) के अन्तर्गत विस्तार से किया है। मार्क्यूज के अनुसार मार्क्स के दार्शनिक और आर्थिक सिद्धान्तों को समझने के लिए हेगेल के राजदर्शन को समझना आवश्यक है। जैसा कि हीगल की 'राज्य' और 'नागरिक समाज' की अवधारणा है जिसके आधार पर यह कहना उचित ही होगा कि आधुनिक पूंजीवाद के अन्तर्गत राज्य पर नागरिक समाज का प्रभुत्व स्थापित हो जाता है, जबकि आधुनिक साम्यवाद के अन्तर्गत 'नागरिक समाज' पर राज्य का प्रभुत्व स्थापित हो जाता है। किन्तु, इन दोनों स्थितियों से व्यक्ति की स्वतंत्रता बाधित होती है। अतः वास्तविक स्वतंत्रता की दृष्टि से यह आवश्यक है कि समाज इन दोनों प्रकार के बन्धन से विमुक्त ही रहे।

1.6 एक आयामी मनुष्य की अवधारणा

इस अवधारणा के अनुसार आधुनिक प्रौद्योगिकी के इस युग में एक व्यक्ति का व्यक्तित्व विखण्डित हो चुका है। वह एक आयामी वाला मनुष्य अर्थात केवल 'उपभोक्ता' मात्र बनकर रह गया है। मनुष्य की यह स्थिति पूंजीवादी और साम्यवादी दोनों समाज में है। यही अवधारणा मार्क्स भी अपनी पुस्तक (इकॉनामिक एण्ड फीलोस्फिकल मैनुस्क्रिप्ट आफ–1844) के अन्तर्गत अलगाव की संकल्पना (Concept of Alienation) के रूप में प्रतिपादित करता है। पूंजीवाद के अमानवीय स्वरूप को प्रस्तुत करते हुए कहता है कि 'पूंजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत व्यक्ति प्रकृति से, अपने समाज से, यहाँ तक कि स्वयं से भी पराया हो जाता है।' इसी प्रकार मार्क्यूज भी कहता है कि औद्योगिक दृष्टि से विकसित समाज मानव–विकास और सृजनात्मक स्वतंत्रता को विनष्ट करता है। यहाँ सिर्फ वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति के उद्देश्यों को ही प्रमुखता दी जाती है। इसी के अनुरूप ही समाज की सांस्कृतिक, राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक समस्त गतिविधियों को उपभोक्तावादी प्रवृत्ति की तरफ अग्रसर कर दिया जाता है। इस प्रकार समूचा समाज ही प्रौद्योगिकीय प्रभुत्व से आच्छादित हो जाता है। इसीलिए व्यक्ति का व्यक्तित्व एक–आयामी (सिर्फ उपभोक्ता) ही बनकर रह जाता हैं।

मार्क्यूज ने अपनी महत्वपूर्ण रचना – 'एक आयामी मानव : उन्नत प्रौद्योगिकी समाज की विचारधारा का विश्लेषण'' (1968) के अन्तर्गत यह स्पष्ट रूप से कहता है कि पूंजीवाद बड़ी कुशलता से आधुनिक तकनीकि का प्रयोग करते हुए व्यक्ति की सिर्फ भौतिक एवं उपभोक्तावादी प्रवृत्तियों को

बढ़ावा देता है। जिसके कारण उसका बहु–आयामी व्यक्तित्व खो गया है। व्यक्ति आज सिर्फ एक उपभोक्तावादी संस्कृति के वशीभूत होकर रह गया है।

1.7 उपभोक्तावाद की मिथ्या–चेतना

जैसा कि पूर्व में यह चर्चा किया गया कि आधुनिक प्रौद्योगिकी समाज में एक मिथ्या चेतना को बढ़ावा देकर व्यक्ति को सिर्फ उपभोक्तावादी प्रवृत्ति से युक्त बनाया जाता है। मार्क्यूज अपनी पुस्तक – 'वन डायमेन्शनल मैन : स्टडीज इन दि आइडियोलॉजी आफ दि एडवांस इंडस्ट्रियल सोसाइटी'' में कहता है कि आज उन्नत प्रौद्योगिकी के कारण व्यक्ति स्वतंत्र एवं सृजनात्मक कार्य से विमुख हो गया है। वह सुख–सुविधाओं से घिर गया है। वह सिर्फ एक–आयामी उपभोक्ता है। आधुनिक प्रौद्योगिकी उसमें यह चेतना जगाती है कि वह आज बहुआयामी व्यक्तित्व से परिपूर्ण है। और उसका सांस्कषतिक, सामाजिक एवं राजनीतिक विकास होता जा रहा है। यही है मिथ्या– चेतना जिससे व्यक्ति घिर चुका है। वह वास्तव में अपने व्यक्तित्व के विकास के सृजनात्मक कार्यों से बहुत दूर हो चुका है जिसके लिए अब क्रान्ति आवश्यक हो चुका है।

1.8 मार्क्यूज की क्रान्ति सम्बन्धी संकल्पना

मार्क्यूज के अनुसार राज्य व्यवस्थायें बल और हिंसा पर आधारित होती हैं इसलिए उनका विनाश भी इन्हीं आधारों पर किया जा सकता है। व्यक्ति की गरिमा को पुनः स्थापित करने, उसकी सृजनात्मकता की रक्षा करने हेतु ही यह क्रान्ति की जायेगी। व्यवस्था परिवर्तन के पश्चात प्रजातांत्रिक मूल्यों का परिरक्षण किया जायेगा। आज के इस परिवेश में मार्क्स द्वारा संकल्पित 'वर्गीय क्रान्ति' सम्भव ही नहीं है और न ही सर्वहारा वर्ग आज अकेले ऐसी किसी क्रान्ति को करने में सक्षम है। इसका एक प्रमुख कारण यह भी है कि आधुनिक सर्वहारा वर्ग बुर्जुआ प्रवृत्तियों का शिकार हो चुका है। अतः मार्क्यूज के अनुसार आज इस उन्नत प्रौद्योगिकी समाज में सभी वर्गों के सभी व्यक्तियों को पारस्परिक सहयोग के माध्यम से एक संगठित क्रान्ति करनी होगी।

उपभोक्तावादी संस्कृति एवं मिथ्या चेतना से युक्त मनुष्य को इस परिवेश से निकालकर क्रान्ति हेतु अग्रसर करना आसान नहीं होगा। इसके लिए क्रान्ति का माहौल बनाने हेतु नवयुवकों, छात्रों एवं बुद्धिजीवियों को

नेतृत्व की भूमिका निभानी होगी। किन्तु इसके लिए भी समाज के सभी व्यक्तियों को सतत संगठित करना होगा। एक बड़ा बहुमत जो क्रान्ति हेतु आगे आयेगा और व्यवस्था परिवर्तन का प्रक्रम चलायेगा। इसके सहयोग से ही सामाजिक तथा राजनीतिक क्षेत्रों में सृजनात्मकता एवं नवाचार की प्रवृत्तियों को बढ़ावा दिया जायेगा। अन्ततः एक नवीन सभ्यता का अभ्युदय होगा जो बहु–आयामी व्यक्तित्व से परिपूर्ण होगा। इस प्रकार की सृजनात्मकता से परिपूर्ण है मार्क्यूज की क्रान्ति सम्बन्धी संकल्पना जिसके केन्द्र में व्यक्ति के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास की भावना निहित है।

1.9 स्वतंत्रता की संकल्पना

माार्क्यूज स्वतंत्रता की संकल्पना को प्रतिपादित करते हुए यह कहता है कि उदारवादी राजव्यवस्था भी अन्ततः निरंकुशतावादी प्रवृत्तियों को बढ़ावा देती है। इसमें व्यक्ति की स्वतंत्रता बाधित होती है। वास्तविक प्रजातांन्त्रिक मूल्यों का तेजी से ह्रास होता है। आज व्यक्ति की गरिमा एवं निजता खो गई है। वह दिशाहीन और सिद्धान्त विहीन हो चुका है। वह व्यवस्था से भी पूरी तरह कट गया है। आज की व्यवस्था उसकी स्वतंत्रता के लिए बाधक सिद्ध हो रही है। इसीलिए अपनी सृजनात्मकता एवं स्वतंत्रता की रक्षा हेतु वह क्रान्ति हेतु लोगों में चेतना जगाते हुए संगठित कर रहा है। इस प्रकार, जहाँ मार्क्स का मजदूर आर्थिक अभाव में सर्वहारा बन गया है वहीं पर मार्क्यूज का व्यक्ति सम्पन्न होते हुए भी वर्तमान व्यवस्था में अधिकार एवं स्वतंत्रता की दृष्टि से सर्वहारा बन गया है। क्रान्ति के परिणामस्वरूप नई व्यवस्था जब स्थापित होगी तब उससे व्यक्ति का सम्बन्ध समीकरण बदलेगा और वह अपने मानवीय अधिकारों एवं स्वतंत्रता को प्राप्त कर सकेगा।

मार्क्यूज के अनुसार, आधुनिक व्यवस्थाएं चाहे जिस रूप में आज दिख रही हों, उनका एकमात्र कार्य संस्कृति ही व्यक्ति के अस्तित्व को, उसकी संपूर्ण अस्मिता को पहचान को विनष्ट करना है। व्यक्ति के अधिकारों एवं स्वतंत्रताओं का दमन करना है। इसलिए अब क्रान्ति ही एकमात्र रास्ता बचा है। जिससे व्यक्ति के बहु–आयामी व्यक्तित्व को कायम करते हुए उसे वास्तविक स्वतंत्रता उपलब्ध करायी जा सकती है।

1.10 सारांश

निःसन्देह, हरबर्ट मार्क्यूज नवमार्क्सवाद का सबसे प्रमुख प्रतिनिधि विचारक कहा जा सकता है। उसने फ्रैंकफर्ट स्कूल के माध्यम से राजनीति

सिद्धान्त के क्षेत्र में आलोचनात्मक सिद्धान्त को बढ़ावा देकर अमूल्य योगदान दिया। उसने हीगल के राजदर्शन का पुनर्विवेचन करते हुए कहा कि राज्य पर नागरिक समाज का प्रभुत्व हो या फिर नागरिक समाज पर राज्य का (आधुनिक साम्यवाद के अन्तर्गत), दोनों ही स्थितियां व्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए बाधक हैं। इसी प्रकार मार्क्यूज अपनी एक–आयामी मनुष्य की अवधारणा के अन्तर्गत, एक उपभोक्तावादी संस्कषति के प्रभुत्व की बात करता है जो व्यक्ति में एक मिथ्या– चेतना पैदा कर रही है। इसीलिए, वह अपनी एक क्रान्ति की अवधारणा प्रतिपादित करता है जिसमें समाज के सभी व्यक्तियों का योगदान होगा। इस क्रान्ति के पश्चात् एक नवीन व्यवस्था स्थापित होगी।

किन्तु, मार्क्यूज द्वारा संचालित जो क्रान्ति है, वह हिंसा पर आधारित है, जिसे एक सभ्य समाज द्वारा कभी भी नहीं स्वीकार किया जा सकता है। वह भविष्य में स्थापित की जाने वाली नयी व्यवस्था की कोई रूपरेखा भी नहीं प्रस्तुत करता है। इस प्रकार यह अपूर्ण एवं अविश्वसनीय भी प्रतीत होता है, ऐसा आलोचक मानते हैं। फिर भी, आधुनिक चिंतकों की पंक्ति में उसे अग्रणी विचारक कहा जा सकता है जिसने अपने चिंतन का केन्द्र बिन्दु एक व्यक्ति एवं उसके व्यक्तित्व को बनाता है। यहाँ पर उसका दृष्टिकोण मार्क्स की अपेक्षा बहुत ही व्यापक है। क्योंकि, वह किसी एक वर्ग का नहीं अपितु समाज के सभी व्यक्तियों का सर्वांगीण (सांस्कृतिक, सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक) विकास की पुरजोर हिमायत करता है।

अन्ततः यह कहा जा सकता है कि हर्बर्ट मार्क्यूज आधुनिक अति–उपभोक्तावादी संस्कृति से निकाल कर व्यक्ति को समावेशी व्यक्तित्व से विभूषित करना चाहता है। आज यही उपभोक्तावादी प्रवृत्ति प्रकृति के विनाश का कारण भी सिद्ध हो रही है, जो आज वैश्विक स्तर पर चिंता का कारण बनी है। यहीं मार्क्यूज की प्रासंगिकता भी है, जो व्यक्ति को एक आयामी व्यक्तित्व से निकालकर बहु–आयामी व्यक्तित्व प्रदान करना चाहता है।

1.11 उपयोगी पुस्तकें

1. कोली, सी0एम0 (2001) : ''आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त एवं विष्लेशण'' साहित्यागार प्रकाषन, जयपुर–3
2. गाबा, ओ0पी0 (2003) : राजनीतिक सिद्धान्त की रूपरेखा'' मयूर पेपरबैक्स,प्रकाशन, नोयडा 201301
3. कोली, सी0एम0 (2001): आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त एवं विश्लेषण

4. Vincent, Andrew, : "Modern Political Ideology (Oxford Blackwell,1992).
5. चार्ल्स रिट्ज (2000) :''आर्ट, एलीनेशन एण्ड ह्यूमनटीज : ए क्रिटिकल इंगेजमेन्ट विथ हरबर्ट मार्क्यूज।
6. हेराल्ड ब्रिच (1977) : ''दि फिलोसफी आफ हर्बर्ट मार्क्यूज
7. जान बौकिना, व : मार्क्यूज : फ्राम दि न्यू लेफ्ट टू नेक्स्ट लेफ्ट टिमोथी, लुक्स जे (1994)
8. पॉउल, ब्राइंस (1970) : 'क्रिटिकल इनट्रूप्सन्स : न्यू लेफ्ट पर्सपेक्टिव्स आन हरबर्ट मार्क्यूज।

1.12 सम्बन्धित प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. हरबर्ट मार्क्यूज के नवमार्क्सवाद सम्बन्धी विचारों का विश्लेषण कीजिए।
2. 'एक–आयामी मनुष्य' की अवधारणा सम्बन्धी विचारों का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
3. मार्क्यूज की क्रान्ति सम्बन्धी अवधारणा को समझाइये।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. मार्क्यूज के नवमार्क्सवादी विचारों में फ्रैंकफर्ट स्कूल के योगदान का उल्लेख कीजिए।
2. आलोचनात्मक सिद्धान्त क्या है? इसे समझाइये।
3. उपभोक्तावाद की मिथ्याचेतना किस प्रकार विकसित होती है?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. एक आयामी मनुष्य की अवधारणा किसने प्रतिपादित की ˙ –

अ– हीगल	ब– लेनिन
स– मार्क्यूज	द– हेबरमास

2. फ्रैंकफर्ट स्कूल से सम्बन्धित विचारक निम्न में से कौन है?

अ– मार्क्यूज	ब– हीगल
स– रूसो	द– ग्रीन

1.13 प्रश्नोत्तर

1. स 2. अ

इकाई–02 युर्गेन हेबरमास

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 आरम्भिक जीवन एवं शिक्षा–दीक्षा

2.3 हेबरमास और नवमार्क्सवाद

2.4 लोकतंत्र का विकृत रूप

2.5 वैधता का संकट

2.6 उत्पादन संबन्धों का पुनर्राजनीतिकरण

2.7 सारांश

2.8 उपयोगी पुस्तकें

2.9 सम्बन्धित प्रश्न

2.10 प्रश्नोत्तर

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप –

- हेबरमास के जीवन पर टिप्पणी कर सकेंगे।
- तत्कालीन परिवेश में नवमार्क्सवाद की आवश्यकता क्यों पड़ी समझ सकेंगे।
- फ्रैंकफर्ट स्कूल का नवमार्क्सवाद हेतु योगदान को भी समझ सकेंगे।
- हेबरमास द्वारा प्रतिपादित लोकतंत्र का विकृत रूप तथा वैधता का संकट सिद्धान्त को आप भली भाँति समझ सकेंगें।

2.1 प्रस्तावना

नवमार्क्सवादी विचारक युरगेन हेबरमास ने 20वीं शताब्दी में उत्पन्न चुनौतियों के मद्देनजर 'आलोचनात्मक सिद्धान्त (Critical Theory) के पुनर्निर्माण की आवश्यकता को अपरिहार्य बतलाया। फ्रैंकफर्ट स्कूल के आलोचनात्मक सिद्धान्त से पूर्णतया सम्बद्ध होते हुए सामाजिक विज्ञानों पर भी

अपनी लेखनी चलायी। हेबरमास पूरी तरह पूंजीवाद पर अपना वैचारिक दृष्टिकोण प्रतिपादित करते हुए, प्रत्यक्षवाद और आर्थिक निर्धारणवाद की कटु आलोचना की। उन्होंने पार्सन्स के व्यवस्था सिद्धान्त की भी घोर निन्दा की। हेबरमास ने राज्य और विभिन्न आदर्शों की वैधता के पतन सम्बन्धी समकालीन अध्ययनों को भी प्रभावित किया है। उन्होंने शक्ति और वैधता के महत्वपूर्ण आधुनिक सिद्धान्त का विस्तृत विश्लेषण किया है। प्रत्यक्षवाद की आलोचना करते हुए, हेबरमास ने लिखा कि – ''वस्तुपरक वैज्ञानिक ज्ञान से मुक्ति और प्रबुद्धता प्राप्त करना दोनों ही सम्भव नहीं है। इसके विपरीत एक ऐसी विचारध ाारा का प्रचार प्रसार किया जाता है जो यथास्थिति का समर्थन करती है।''

हेबरमास आलोचनात्मक सिद्धान्त की आवश्यकता का प्रमुख कारण यह मानते है कि ''विज्ञान और तार्किकता, आधुनिक पूंजीवादी युग में मानवीय जीवन में गुणात्मक विकास करने के स्थान पर उनके विनाश का कारण बन गये हैं।'' इन सभी पूंजीवादी नकारात्मक तत्वों का प्रतिकार करने हेतु ही आलोचनात्मक सिद्धान्त का जन्म हुआ है, जो राजनीतिक सुधारों के माध्यम से एक न्यायपूर्ण व्यवस्था को स्थापित करेगा। हर्बर्ट मार्क्यूज के पश्चात आलोचनात्मक सिद्धान्त के सबसे उल्लेखनीय विचारक हेबरमास ही माने जाते हैं। क्योकि मार्क्सवाद के विपरीत हेबरमास कहते हैं कि – ''दमन और पोषण की आलोचना मात्र से मानव की मुक्ति की समस्या का हल संभव नहीं है। इसके लिए दमन और पोषण को उत्पन्न करने वाली पूंजीवादी शक्तियों को खोजकर उन पर प्रहार करना आवश्यक है। तभी एक आदर्श व्यवस्था स्थापित हो सकती है और तभी समाज के सभी वर्गों के सभी व्यक्तियों को सामाजिक न्याय की प्राप्ति संभव हो सकती है।

हेबरमास के अनुसार पूंजीवादी शक्तियों के निरन्तर सुदृढ हो रहे आधार–स्तम्भ के कारण राज्य तंत्र और अधिकारी तन्त्र का विकास और विस्तार हुआ है जिसके कारण मानव की स्वतंत्रता का हनन हुआ है। मनुष्य दिन प्रतिदिन पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ता चला गया। इस मानवीय पोषण का मूल कारण समस्त नवमार्क्सवादी आधुनिक प्रौद्योगिकी को मानते हैं। इसी प्रकार हर्बर्ट मार्क्यूज भी पूंजीवादी आधुनिक प्रौद्योगिकी के प्रभाव स्वरूप एक आयामी मनुष्य के अकेलेपन की पीड़ा को अभिव्यक्ति किया। इसीलिए, हेबरमास नये सामाजिक आन्दोलनों का भी सुझाव देता है। इन

नवीन आन्दोलनों (महिला आन्दोलन, पर्यावरण आन्दोलन, प्रति–संस्कृति आन्दोलन) का सरोकार वितरण की समस्या से नहीं, अपितु जीवन के उपयुक्त रूपों से है। इन आन्दोलनों से ही खोई हुई चेतना को पुनः स्थापित किया जा सकता है।

2.2 आरम्भिक जीवन एवं शिक्षा–दीक्षा

नवमार्क्सवादी, जर्मन दार्शनिक युरगेन हेबरमास (1929–) सुप्रसिद्ध फ्रैंकफर्ट सम्प्रदाय की द्वितीय पीढ़ी के अत्यन्त प्रखर एवं अग्रणी विद्वान व पुरोधा माने जाते हैं। हेबरमास का जन्म जर्मनी में एक मध्यम वर्गीय परिवार में हुआ था, जो परम्पराओं में अगाध विश्वास करता था। अपनी किशोरावस्था में हेबरमास पर विश्व युद्ध का गहरा प्रभाव पड़ा। नाजीवाद के खत्म हो जाने के बाद जर्मनी के भविष्य के बारे में कुछ आशा की किरण जगी; किन्तु हेबरमास को कोई सफलता न मिलने के कारण निराशा हाथ लगी। इसी दौरान हेबरमास ने सभी प्रमुख क्रान्तिकारी लेखकों एवं विचारकों को पढ़ा और सुना। ये सभी ऐसे क्रान्तिकारी लेखक थे जिनकी पुस्तकें तत्कालीन नाजीवादी दौर में प्रतिबन्धित थी। हेबरमास ने सन् 1949 से 1954 के बीच दर्शनशास्त्र, मनोविज्ञान, जर्मन साहित्य जैसे अनेक विषयों का गहरा अध्ययन किया। सन् 1954 में बोन विश्वविद्यालय से पी0 एच–डी0 की उपाधि प्राप्त करते हुए एक कुशल एवं प्रखर पत्रकार के रूप में जीवन की शुरूआत की। यहीं से आपके जीवन का क्रान्तिकारी दौर शुरू हो जाता है।

फ्रैंकफर्ट स्कूल जो एक विश्व प्रसिद्ध संस्था थी, जिसने नवमार्क्सवाद को आधारभूमि प्रदान की, का सदस्य हेबरमास सन् 1956 में बने। किन्तु इस संस्था के एक महत्वपूर्ण सदस्य एवं नवमार्क्सवादी विचारक मैक्स हार्खाइमर के साथ किसी मुद्दे पर वैचारिक मतभेद के चलते फ्रैंकफर्ट स्कूल से त्याग पत्र देकर दूर चले गये। सन् 1961 में उन्हें हायडलवर्ग विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर पद पर आमन्त्रित किया गया और वे वहाॅ अध्यापन का कार्य करने लगे। किन्तु, पुनः फ्रैंकफर्ट स्कूल वापस आ गये और यहाॅ पर भी अध्यापन कार्य से जुड़ गये। उनको यहाॅ पर अनेकों प्रमुख पुरस्कारों से नवाजा गया। हेबरमास पर अन्य नवमार्क्सवादी विचारकों की भाँति हीगल एवं मार्क्स का गहरा प्रभाव पड़ा। सन् 1980 में आधुनिकता पर एक व्याख्यान देते

हुए कहा कि – ''आधुनिकता की शुरूआत, दार्शनिक दृष्टि से हीगल से प्रारम्भ होती है।'' उन्होंने उत्तर–आधुनिकता सम्बन्धी दरिदा और फूको के विचारों की कमियों को उजागर किया। इसे अपनी पुस्तक (द फिलासिफिकल डिस्कोर्स आफ मॉडरनिटी, 1988) में विश्लेषणात्मक रूप में अभिव्यक्त किया है।

फ्रैंकफर्ट स्कूल तथा नवमार्क्सवादी विचारकों में अग्रणी स्थान रखने वाले युरगेन हैबरमास की विभिन्न महत्वपूर्ण रचनाओं (प्रमुख ग्रन्थों) का समकालीन राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में अभूतपूर्व योगदान है। हैबरमास के महत्वपूर्ण ग्रन्थ क्रमशः है – ''द फिलासफिकल डिसकोर्स आफ मॉडरनिटी, (1988),'' तार्किक समाज की ओर (1970),'' ''वैधीकरण का संकट (लेजीटिमेषन क्राइसिस, 1976)', ''दि थियरी आफ कम्यूनिकेटिव एक्शन (1981),'' ''थियरी एण्ड प्रैक्टिस (1963),'' ''नालेज एण्ड ह्यूमन इंटरेस्ट (1868),'' ''दि थियरी आफ कम्यूनिकेटिव एक्शन (1981),'' ''दि फिलासिफिकल डिसकोर्स आफ माडर्निटी (1985),'' ''पोस्ट मेटाफिजिकल थिंकिंग (1992)''।

2.3 हेबरमास और नवमार्क्सवाद

हेबरमास को नवमार्क्सवाद का प्रतिनिधि विचारक माना जाता है। इसने एक तरफ विभिन्न मुद्दों पर मार्क्सवाद की आलोचना की है, तो दूसरी तरफ कई अर्थों में पूंजीवाद का समर्थन भी किया। पूंजीवाद का विस्तृत विश्लेषण करते हुए यह प्रतिपादित किया कि पूंजीवाद का कोई विकल्प आज नहीं दिख रहा है। उन्होंनें वर्तमान घटिया प्रजातन्त्र की कटु आलोचना की है। उन्होंने उत्तर–आधुनिकता की जगह तार्किकता पर जोर दिया। इसीलिए अपने नवमार्क्सवाद के अन्तर्गत ऐतिहासिक भौतिकवाद के पुनर्निर्माण के लक्ष्य को प्रमुखता दी। मार्क्स, जैसा कि कार्य और सामाजिक अन्तर्क्रिया के बीच भेद करने में असफल रहे हैं, वहीं पर हेबरमास ने मार्क्स के विपरीत सम्प्रेषण और संचार पर बल देते हुए भिन्नता स्थापित की।

हम हेबरमास को एक आशावदी नवमार्क्सवादी विचारक कह सकते हैं क्योंकि उन्होंने एडोर्नो और हर्खाइमर आदि के विपरीत आधुनिक विश्व के उज्जवल भविष्य के सम्बन्ध में आशा प्रकट की और स्वयं भी इसके लिए प्रयत्नशील होने की बात कही। इसके लिए पूंजीवाद में विज्ञान और प्रौद्योगिकी

के वर्चस्व की पूरी तरह आलोचना की। यद्यपि मार्क्सवाद, पूंजीवाद, आधुनिकता और विज्ञान आदि विषयों को लेकर हेबरमास की भी आलोचना हुई। हीगल की दर्शनशास्त्रीय प्रणाली के समग्र प्रभाव सम्बन्धी हेबरमास के विचारों की उत्तर–आधुनिकतावादी–विचारक ल्योटार्ड आदि ने कटु आलोचना की। परन्तु नवमार्क्सवादी विचारकों के अन्तर्गत हेबरमास द्वारा पूंजीवाद का विस्तृत विश्लेषण तथा आलोचनात्मक सिद्धान्त के पुनर्निर्माण सम्बन्धी दी गयी अवधारणा को राजनीति विज्ञान के लिए एक अप्रतिम योगदान ही कहा जायेगा।

2.4 लोकतन्त्र का विकृत रूप

हेबरमास के अनुसार आज 20वीं शताब्दी के उदारवादी लोकतन्त्र के अन्तर्गत 'लोकमत' की जगह केवल बाजार में खरीददार और विक्रेता की इच्छा ही सर्वोच्च बन गई है। यहॉ केवल लाभ और उपभोग के आधार पर समूची राजनीतिक व्यवस्था संचालित होती है। आज लोकतंत्र का सबसे मूल तत्व, 'राजनीतिक चर्चा' (Political discussion) विलुप्त होती जा रही है। क्योंकि इस चर्चा में भाग लेने वाले वही लोग हैं, जो सत्तारूढ़ वर्ग से जुड़े हुए हैं। यहाँ वास्तव में लोकतन्त्र को समृद्ध बनाने वाली चर्चा नहीं होती है। आज लोकतंत्र के एक और प्रमुख तत्व 'राजनीतिक निर्णय', केवल शक्तिशाली वर्गों एवं प्रभावशाली लोगों का पारस्परिक समझौता बनकर रह गया है। बाजारवादी शक्तियों का वर्चस्व होने के कारण, सभी निर्णय उसके अनुकूल ही लिये जाते हैं। यहाँ पर न तो वास्तविक रूप में कोई जनमत होता है और न ही लोकतन्त्र को समृद्ध एवं प्रगतिशील बनाने वाला कोई राजनीतिक निर्णय भी।

आधुनिक संचार क्रान्ति ने तो लोकतन्त्र को और विकृत किया है। आज इन समस्त साधनों का प्रयोग बाजार की शक्तियों द्वारा किया जा रहा है। जैसा नवमार्क्सवादी विचारक हर्बर्ट मार्क्यूज भी कहता है कि आज सिर्फ बाजार शक्तियों द्वारा 'उपभोक्तावादी संस्कृति' को बढ़ावा दिया जा रहा है। यही लोकतंत्र की आड़ में सिर्फ व्यापारिक हितों को प्रश्रय एवं संरक्षण प्रदान किया जाता है, जिसके कारण लोकतन्त्र का आज एक विकृत स्वरूप दिखायी पड़ रहा है। यहॉ लोकतान्त्रिक मूल्यों का तेजी से ह्रास हो रहा है।

2.5 वैधता का संकट

हेबरमास के अनुसार आधुनिक प्रौद्योगिकी के इस दौर में पूंजीवाद वैधता के घोर संकट से गुजर रहा है। आज इस संकट से निकलने का कोई भी उपाय उसके पास नहीं है। विज्ञान एवं स्वचालित मशीनों के इस दौर में पूंजीवाद ने अपने परम्परागत आधार को विनष्ट कर दिया है। आज सामाजिक संगठन का आधार केवल 'लाभ' ही बनकर रह गया है। आज बाजार सभी प्रकार के नियमों का प्रणेता बन गया है। प्राकषतिक विज्ञान भी अपनी–अपनी सीमा या परिधि बनाने लग गये हैं। पूंजीवाद के विस्तार के साथ ही साथ राज्य के हस्तक्षेप का दायरा भी बढ़ता जा रहा है। अब राजनीति केवल अधिसंरचना तक ही नहीं अपितु आधार (उत्पादन साधन और संबंध) तक विस्तृत हो चुकी है, जबकि मार्क्सवाद के अन्तर्गत राजनीतिक गतिविधियां केवल अधिसंरचना (Superstructure) तक ही सीमित थी। परन्तु, आज इस नवमार्क्सवादी दौर में राजनीति पूंजीवाद के विस्तार के साथ ही उत्पादन की शक्तियों का हिस्सा बन चुकी है।

पूंजीवाद आज वैधता के संकट से इसलिए भी गुजर रहा है, क्योंकि विज्ञान और प्रौद्योगिकी के माध्यम से विचारधारा का नियमन एवं निर्माण किया जा रहा है। आज जनता में राजनीति को समृद्ध बनाने वाली 'राजनीतिक चेतना' भी विलुप्त हो चुकी है। आज केवल 'तकनीकी समाधान' पर बल दिया जा रहा है। लोगों में यह चेतना पैदा की जा रही है कि केवल उच्च तकनीकि ही समस्याओं का समुचित समाधान प्रस्तुत कर सकती है। इससे जिन–जिन क्षेत्रों में इस प्रकार की पूंजीवादी विचारधारा का प्रसार हुआ है उन सबमें वैधता का संकट स्पश्ट रूप से दिखायी पड़ रहा है क्योंकि राजनीतिक व्यवस्था आज पूंजीवाद के इस दबाव को झेलने में अक्षम हो चुकी है। विभिन्नता (सामाजिक दृष्टि से) में एकता (समान हित) को समायोजित करने वाली हमारी राजनीतिक व्यवस्था जब विभिन्न हितों को सुलझा नहीं पाती तो अन्ततः बिखरने लगती है। इससे पूंजीवाद वैधता के संकट में पड़ जाता है।

2.6 उत्पादन संबन्धों का पुनर्राजनीतिकरण

हेबरमास के अनुसार राजनीति की गतिविधियां आज केवल अधिसंरचना (Superstructure) तक ही सीमित न रहकर उत्पादन सम्बन्धों तक विस्तृत हो गयी हैं। इससे आज राजनीतिक व्यवस्था को उन सभी समस्याओं के समाधान का साधन माना जा रहा है जो वास्तव मे बाजार तन्त्र करता था। इसी को हेबरमास उत्पादन संबन्धों का पुनर्राजनीतिकरण कहता है। इसीलिए आधुनिक पूंजीवादी राज्य द्वारा मूलतः चार कार्य संभाल लिया है। जिसमें निम्नवत हैं –

1. उत्पादन प्रणाली का संरक्षण
2. बाजार के कार्यों को पूरा करने में पूर्ण भागीदारी
3. विषम परिस्थितियों में बाजार का कार्य करना और
4. समाज के उपेक्षित वर्गों के दबाव से बाजार को बचाना

इस प्रकार राजनीतिक व्यवस्था उत्पादन प्रणाली का हर संभव संरक्षण करने का काम संभालते हुए उसे हर संकट से बचाती है, किन्तु वह अपने मूल कार्य से भटकने के कारण स्वयं को संभाल नहीं पाती। वास्तविक जनहित को संरक्षित नहीं कर पाती, जिससे यह टूटने लगती है और पूंजीवाद भी संकट में पड़ जाता है। एक तरफ राज्य को जहाँ सामूहिक पूंजीवादी नियोजन के उद्देश्य से अपनी क्षमता बढ़ाने की जरूरत होती है, साथ ही पूंजीवादी विस्तार को रोकने की भी महती आवश्यकता होती है। किन्तु राजनीतिक व्यवस्था इन विरोधाभासों को सहन नहीं कर पाती और टूटने लगती है। क्योंकि व्यवस्था पूंजीवादी विशिष्ट हितों को पूरा करने हेतु विवश होती है। इस प्रकार सार्वजनिक हितों की जगह केवल पूंजीवादी हितों को राज्य द्वारा संरक्षण दिया जाता है। किन्तु, पूंजीवाद वैधता के संकट से बाहर नहीं निकल पाता। उत्पादन सम्बन्धों का पुनर्राजनीतिकरण भी पूंजीवाद को इस संकट से बाहर नहीं निकाल पाता।

2.7 सारांश

नवमार्क्सवादी विचारक युर्गेन हेबरमास ने 20वीं शताब्दी में पूंजीवाद द्वारा उत्पन्न चुनौतियों के सन्दर्भ में आलोचनात्मक सिद्धान्त के पुनर्निर्माण की पुरजोर वकालत की। इसके साथ ही राजनीति के महत्वपूर्ण आधुनिक सिद्धान्तों शक्ति एवं वैधता की भी पूंजीवाद के सन्दर्भ में विस्तृत विश्लेषण

किया। हेबरमास ने आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास को विनाश के प्रतीक के रूप में देखा है। किन्तु हेबरमास केवल दमन और पोषण की मार्क्सवादियों की भाँति आलोचना ही नहीं करते अपितु उसका वास्तविक समाधान भी ढूँढते हैं। इसीलिए, उन्होंने सर्वप्रथम आलोचनात्मक सिद्धान्त के पुनर्निर्माण की बात कही है।

मानव की स्वतंत्रता का आज इस उन्नत पूंजीवादी दौर में तेजी से क्षरण हुआ है। सभी समस्याओं का केवल तकनीकी समाधान ढूँढने के कारण सार्वजनिक हित प्रभावित हुए हैं। जैसा कि हर्बर्ट मार्क्यूज भी मानता है कि इसीलिए आज मनुष्य का व्यक्तित्व एक आयामी ही बन कर रह गया है। इसके लिए हेबरमास एक क्रान्तिकारी समाधान के रूप में विभिन्न आन्दोलनों का सुझाव देता है जो समस्या का सही समाधान कर सकते हैं। इन आन्दोलनों के माध्यम से ही खोई हुई चेतना को पुनः जगाया जा सकता है। इसीलिए, आज लोकतंत्र का केवल विकृत रूप ही रह गया है। लोकतन्त्र के सबसे मूल तत्व 'राजनीतिक चर्चा' एवं 'जनमत' को पुनः स्थापित करना होगा। पूंजीवाद आज अपने वैधता के संकट से तभी निकल सकता है। उत्पादन सम्बन्धों का पुनर्राजनीतिकरण से तो राजनीतिक व्यवस्था एक अन्तर्विरोध में फंस कर रह गयी है। केवल बाजार के हितों की दृष्टि से परिचालित करने के कारण यह टूटने की कगार पर पहुँच चुकी है।

इस प्रकार अन्ततः हम कह सकते हैं कि केवल विज्ञान एवं उच्च प्रौद्योगिकी के माध्यम से ही समस्याओं का वास्तविक समाधान संभव नहीं है, वरन पूंजीवाद का विस्तृत विश्लेषण करने के पश्चात हेबरमास द्वारा आलोचनात्मक सिद्धान्त के पुनर्निर्माण सम्बन्धी समाधान सबसे कारगर सिद्ध हो सकता है। इसके लिए लोकतंत्र को समृद्ध बनाना होगा, राजनीतिक चर्चाओं हेतु अनुकूल परिस्थितियां बनानी होगी और विज्ञान प्रौद्योगिकी को जनचेतना के निर्माण से दूर रखना होगा। राज्य को केवल बाजार के हितों के समाधान का साधन बनने से रोकना होगा। इसी तरह से सार्वजनिक हितों की रक्षा संभव हो सकेगी। निःसन्देह, इसे हेबरमास द्वारा राजनीति विज्ञान को दिया गया अमूल्य योगदान ही कहा जायेगा।

2.8 उपयोगी पुस्तकें

1. देव, पीटर (1999) : 'हेबरमास : ए क्रिटिकल रीडर'
2. हवाइट, के0 स्टीफेन : ''दि रीसेंट वर्क आफ जार्जेन हेबरमास: (1989) रीजन जस्टिस एण्ड माडर्निटी।
3. थाम्पसन जान, डेविड : 'हेबरमास : क्रिटिकल डिबेट्स। हेल्ड (1982)
4. केनीथ मैक्केन्ड्रिक : 'डिसकोर्स, डिजायर एण्ड फैन्टेसी इन (2007) हेबरमास' क्रिटिकल थियरी।
5. लेविस ईडविन हेन : 'पअर्सपेक्टिव आन हेबरमास (2000)
6. हेबरमास जार्जेन (1988): थियरी एण्ड प्रैक्टिस'

2.9 सम्बन्धित प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. युर्गेन हेबरमास के नवमार्क्सवादी विचारों का विवेचन कीजिए।
2. हेबरमास द्वारा प्रतिपादित लोकतन्त्र का विकष्त रूप एवं वैधता का संकट सम्बन्धी सिद्धान्तों की व्याख्या कीजिए।
3. उत्पादन सम्बन्धों का पुनर्राजनीतिकरण का विश्लेषण कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. लोकतन्त्र का विकृत रूप क्या है? समझाइये।
2. हेबरमास के अनुसार वैधता का संकट सम्बन्धी सिद्धान्त को स्पष्ट कीजिए।
3. उत्पादन सम्बन्धों के पुनर्राजनीतिकरण पर एक टिप्पणी लिखिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. नवमार्क्सवादी विचारकों में अग्रणी किसे माना जाता है –

   अ– हीगल

   ब– रूसो

   स– हेबरमास

   द– ग्रीन

2. उत्पादन सम्बन्धों का पुनर्राजनीतिकरण सम्बन्धी विचार किसने प्रतिपादित किया है –

अ– मार्क्यूज

ब– मार्क्स

स– हेबरमास

द– ग्राम्शी

2.10 प्रश्नोत्तर

1. स 2. स

इकाई–03 एंटोनियो ग्राम्शी

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 आरम्भिक जीवन एवं शिक्षा – दीक्षा

3.3 ग्राम्शी और नवमार्क्सवाद

3.4 प्राधान्य (Hegemony) का सिद्धान्त

3.5 संरचनावाद की संकल्पना

3.6 स्वतंत्रता की अवधारणा

3.7 नागरिक समाज की अवधारणा

3.8 सारांश

3.9 उपयोगी पुस्तकें

3.10 सम्बन्धित प्रश्न

3.11 प्रश्नोत्तर

3.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप –

- ग्राम्शी के जीवन पर टिप्पणी कर सकेंगे।
- तत्कालीन परिवेश में नवमार्क्सवाद की आवश्यकता क्यों पड़ी समझ सकेंगे।
- ग्राम्षी के प्रधान्यता के सिद्धान्त को समझ सकेंगे।
- संरचनावाद की संकल्पना को समझ सकेंगें।
- ग्राम्शी को नागरिक समाज की संकल्पना को भी भली भाँति जान सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

एंटोनियो ग्राम्शी ने मार्क्सवाद की कुछ अवधारणाओं का पुनर्निरूपण किया, जिसके कारण उसे मार्क्यूज और हेबरमास की भाँति नव–मार्क्सवादी

विचारक कहा जाता है। ग्राम्शी ने मार्क्सवाद की अधिनायकवादी प्रवृत्ति एवं विचारधारा का तीव्र विरोध किया। जैसा कि रूस के स्टालिन जैसे महान अधिनायक जो कि विश्व साम्यवादी आन्दोलन में प्रभावी स्थान रखता था, की मृत्यु के पश्चात नेतृत्व को लेकर रूस और चीन के मध्य वैचारिक अन्तर्द्वन्द प्रारम्भ हो गया। इस द्वन्द के प्रभाव स्वरूप, विश्व साम्यवादी आन्दोलन में भी विभाजन हो गया। इससे साम्यवादी सिद्धान्त एवं विचारधारा भी अस्पष्टता एवं भ्रामकता का शिकार हो गयी। इससे ख्रुश्चेव की उदारवादी नीतियों का प्रभाव इस परिस्थिति में तेजी से विस्तीर्ण हुआ। ग्राम्शी भी, जो कि इटली की कम्यूनिस्ट पार्टी का अग्रगण्य नेता था, इस फासिस्ट विचारधारा के विरूद्ध उदारवादी नीतियों का पक्ष–पोषण किया। ग्राम्शी द्वारा इस स्वतंत्र उदारवादी धारा का प्रतिनिधित्व करने के करण उसे 'यूरोकम्यूनिज्म विचारक' कहा गया। यह साम्यवाद का सबसे उदार स्वरूप था।

ग्राम्शी अपने इन्ही स्वतंन्त्र विचारों के कारण तत्कालीन यूरोप में संस्थागत रूप में विद्यमान नव–मार्क्सवादी विचारकों के साथ जुड़ गया, साथ ही उसके विचारों को एक आधार भी प्राप्त हुआ। ग्राम्शी, मार्क्यूज तथा हेबरमास के विचारों से पूरी तरह प्रभावित हुआ। ग्राम्शी के अनुसार प्रत्येक देश की परम्पराओं, वर्गसंरचना, औद्योगिक उन्नति में भिन्नता होती है। इसीलिए, साम्यवाद का स्वरूप भी सभी जगह भिन्न भिन्न होता है। ग्राम्शी के अनुसार प्रजातांत्रिक मूल्यों, व्यक्ति के अधिकारों तथा नागरिक स्वतंत्रताओं की हर संभव रक्षा होनी चाहिए। इसीलिए, ग्राम्शी अपने विचारों में आर्थिक परिवर्तन की तुलना में सामाजिक परिवर्तन की आवष्यकता एवं महत्व पर पुरजोर बल देते हुए उसके क्रियान्वयन की हिमायत करता है।

3.2 आरम्भिक जीवन एवं शिक्षा

एंटीनियो ग्राम्शी (1891–1937) का जन्म एक अत्यन्त ही विपन्न परिवार में हुआ था। वे प्रारम्भ से ही शारीरिक दुर्बलता और बीमारियों से ग्रस्त थे। उन्होंने तूरीन विश्वविद्यालय से शिक्षा ग्रहण की, जहॉ भाषा से सम्बन्धित विषयों में उन्होंने अपनी प्रतिभा की छाप अंकित की। राजनीतिक सक्रियता एवं गरीबी के कारण सन् 1915 में विश्वविद्यालय की पढ़ाई छोड़नी पड़ी। किन्तु, अपनी प्रतिभा के कारण ही वे आगे चलकर एक प्रखर पत्रकार,

एक राजनीतिक आन्दोलनकारी सांसद और इटली के साम्यवादी दल के एक क्रान्तिकारी नेता के रूप में प्रकट हुए। किन्तु, मुसोलिनी की फासिस्ट सरकार ने इस पार्टी पर प्रतिबन्ध लगाते हुए अवैध घोषित कर दिया। पार्टी के सभी नेता इटली से पलायन कर गये। सन् 1926 में उन्हें राजनीतिक सक्रियता के कारण पकड़कर जेल में डाल दिया गया, जहॉ कुछ वर्षों में उनका देहावसान हो गया।

कारागार में रहते हुए भी ग्राम्शी ने अपनी रचनात्मकता को प्रकट करते हुए राजनीति, दर्शन, सामाजिक भाषा विज्ञान, और साहित्य—समालोचना जैसे विविध विषयों पर अपनी लेखनी चलायी। ये सभी लेख उनकी मृत्यु के पश्चात प्रिजन नोट बुक्स (1971) के रूप में प्रकाशित हुई। यही संकलन उनके मार्क्सवाद एवं नवमार्क्सवादी विचारों के प्रमुख आधार स्तम्भ हैं। इसी में उसके मानवतावादी विचारों का स्वरूप भी स्पष्ट होता है। वह किसी भी प्रकार की निरंकुशता का विरोधी था। वह हर प्रकार की शासन प्रणाली, चाहे वह संसदीय प्रकार की ही क्यों न हो दमनात्मक स्वरूप का विरोधी था। वह लोकतन्त्रात्मक स्वरूप वाली संस्थाओं का ही समर्थन करता है।

नवमार्क्सवादी विचारक ग्राम्शी की रचनाओं का 20वीं शताब्दी के समकालीन राजनीतिक सिद्धान्तों के इतिहास में अविस्मरणीय योगदान है। एंटोनियो ग्राम्शी के महत्वपूर्ण ग्रन्थ क्रमशः हैं – ''दि माडर्न प्रिंस एंड अदर राइटिंग्स (1965), 'सेलेक्शन्स फ्रॉम दि प्रिजन नोटबुक्स, (1971), सेलेक्शन्स फ्रॉम पालिटिक्स राइटिंग्स (1977)।

3.3 ग्राम्शी और नवमार्क्सवाद

एंटोनियो ग्राम्शी इटली के एक प्रसिद्ध नव—मार्क्सवादी सिद्धान्तकार कहे जाते हैं, क्योंकि उन्होंने मार्क्सवाद की कुछ मान्यताओं या सिद्धान्तों (आर्थिक नियतिवाद, द्वन्दात्मक भौतिकवाद आदि) के पुनर्निरूपण का प्रयत्न किया। उनकी गणना इसीलिए 20वीं शताब्दी के सर्वाधिक प्रखर एवं महत्वपूर्ण मार्क्सवादी चिंतकों में की जाती है। उन्होंने राजनीतिक व्यवहार और सामाजिक सिद्धान्त दोनों को समन्वित करते हुए मार्क्स के विचारों को अलग ढंग से विश्लेषित किया। उनके अनुसार, राजनीति और विचारधारा को आर्थिक नियतिवाद से स्वतंत्र रखा जाना चाहिए ताकि सभी वर्गों के सभी लोग अपने

संघर्षों द्वारा अपनी दशा में परिवर्तन ला सकें। उसके अनुसार पूंजीवादी वर्ग के प्रभुत्व को मात्र आर्थिक आधार पर कभी समाप्त नहीं किया जा सकता है, अपितु इसके लिए राजनीतिक कारकों के साथ ही साथ विचारधारात्मक पहलू को भी आधार बनाना चाहिए। पूंजीवादी समाजों में नागरिक समाज, चर्च, स्कूल तथा परिवार जैसे संस्थाओं एवं संगठनों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

पूंजीवादी वर्ग का प्रभुत्व मुख्यतः सर्वहारा या कामगारों पर पूर्णरूपेण नहीं होता अपितु, आधा ही होता है क्योंकि कामगारों में दोहरी चेतना होता है। जिसमें एक पर अगर पूंजीवाद का प्रभाव होता है तो दूसरे पर उसके सामान्य ज्ञान पर होता है। इसी सामान्य ज्ञान के स्तर पर जो कि अनुभव पर आधारित होता है क्रान्ति के बीज निहित होते हैं। बौद्धिक वर्ग इसी स्तर पर चेतना को बल प्रदान कर उसे क्रान्तिकारी बनाता है। ग्राम्शी के अनुसार ''त्वरित उग्र सामाजिक परिवर्तन तभी आ सकता है जब क्रान्तिकारी चेतना का सम्पूर्ण विकास हो।'' अतः इस चेतना को विकसित एवं प्रवाहित करने में राजनीतिक दल की भूमिका (लेनिन इसे 'हरावल दस्ता' कहता है।) अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। इसके साथ ग्राम्शी यह भी कहता है कि जब तक मूल्यों एवं मान्यताओं के क्षेत्र में बुर्जुआ तत्वों के प्राधान्य (प्रभुत्व) को जड़ से नष्ट नहीं कर दिया जाता है। तब तक कामगार वर्गों का आन्दोलन कभी भी सफल नहीं हो सकता। मार्क्यूज से लेकर हेबरमास तक सभी नवमार्क्सवादी यह स्वीकार करते हैं कि मात्र आर्थिक तत्व के आधार पर समाजवाद को स्थापित नहीं किया जा सकता अपितु सांस्कृतिक एवं वैचारिक स्तर पर भी प्रयास करना होगा।

3.4 प्राधान्य (Hegemony) का सिद्धान्त

प्राधान्य या आधिपत्य की अवधारणा ग्राम्शी की सबसे महत्वपूर्ण एवं मौलिक देन कही जा सकती है। ग्राम्शी ने मार्क्सवादी अवधारणा (पूंजीपति उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण को अपनी आर्थिक शक्ति के आधार पर सर्वहारा वर्ग पर वर्चस्व कायम करता है) के विपरीत तर्क देता है कि आर्थिक नहीं, वैचारिक एवं सांस्कृतिक कारकों के आधार पर वह अपना आधिपत्य पूरे समाज पर स्थापित करता है। इसीलिए ग्राम्शी ने चिरसम्मत मार्क्सवाद के एक प्रमुख सिद्धान्त 'आर्थिक नियतिवाद' (Economic Determinism) पर

विशेष रूप से प्रहार किया। उसके अनुसार नागरिक समाज की संस्थाओं के माध्यम से पूंजीपति वर्ग अपनी संस्कृति को हृदयंगम कराते हुए उस पर अपना आधिपत्य या प्राधान्य स्थापित करने में सफल होता है।

इस प्रकार, ग्राम्शी के अनुसार पूंजीवादी समाज में अधिरचना के अन्तर्गत स्थापित नागरिक समाज, परिवार एवं धार्मिक संस्थायें शासकवर्ग के प्रति सम्मान का वैचारिक आधार प्रस्तुत करती है। इन्हें वैधता की संरचनायें भी कहा जाता है। इन्हीं के माध्यम से पूंजीपति वर्ग अपनी प्राधान्य (आधिपत्य) कायम रखता है। अतः कोई भी क्रान्ति तभी सफल हो सकती है जब वह आधिपत्य की इन संरचनाओं द्वारा स्थापित वैचारिक एवं सांस्कृतिक आधार पर प्रहार करे।

3.5 संरचनावाद की संकल्पना

ग्राम्शी की संरचनावाद की संकल्पना मार्क्स और एजिल्स से भिन्न है; क्योंकि मार्क्स ने जहॉ 'आधार' (Base) को प्राथमिकता दी, वहीं पर ग्राम्शी ने 'अधिरचना (Superstructure) को। यहाँ पर लेनिन की भाँति ग्राम्शी ने आर्थिक और राजनीतिक प्रक्रिया के बीच एक सन्तुलन स्थापित किया है। जैसा कि मार्क्स के दृष्टिकोण में अधिसंरचना के दो स्तर जिसमें पहला राज्य और दूसरा सामाजिक चेतना होते हैं, वे उत्पादन के सम्बन्धों की नीवं पर आधारित होते हैं। जब उत्पादन सम्बन्धों में परिवर्तन होता है, तो बाह्य ढांचे में भी परिवर्तन होना अवश्यम्भावी होता है। अर्थात् आधार अधिरचना को नियन्त्रित करता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि राज्य, समाज और चेतना स्वायत्त नहीं है। किन्तु, ग्राम्शी अपने संरचनावादी संकल्पना के अन्तर्गत अधिरचना की सापेक्षिक स्वायत्तता की धारणा प्रस्तुत की है।

ग्राम्शी के अनुसार उत्पादन सम्बन्धों की प्रत्येक क्रिया मनुष्य की चेतना द्वारा प्रभावित होती है। इस संकल्पना ने परम्परागत मार्क्सवाद की जड़ को ही हिला दिया। इसीलिए नारबर्टो बोबिओ कहते हैं कि –"जहॉ मार्क्स के दृष्टिकोण में आधार (रचना) प्राथमिक एवं निर्णायक तत्व है, वहीं ग्राम्शी की दृष्टि में संरचनावाद (अधिरचना) 'प्राथमिक' और 'निर्णायक' है। निश्चित रूप से यह सत्य ही है।

3.6 स्वतंत्रता की अवधारणा

ग्राम्शी की स्वतंत्रता की संकल्पना मानवतावादी दर्शन पर आधारित है। ग्राम्शी अपनी इसी संकल्पना के तहत मार्क्सवाद की आर्थिक नियतिवाद पर प्रहार करते हुए केवल आर्थिक ही नहीं, अपितु वैचारिक एवं सांस्कृतिक स्वतंत्रता की हिमायत करता है। इसके लिए अधिरचना की संस्थाओं नागरिक समाज, परिवार और धार्मिक संस्थाओं के स्तर पर अनवरत क्रान्ति की हिमायत करता है, तभी वास्तविक स्वतंत्रता संभव होगी। पूंजीवादी प्रभुत्व को दूर करने के लिए हमें केवल आर्थिक स्तर पर ही केन्द्रित नहीं होना चाहिए, अपितु अधिरचना के सभी स्तरों पर प्रयास करना होगा।

वास्तविक स्वतंत्रता का तात्पर्य मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि मात्र नहीं है हालॉकि यह सन्तुष्टि उसकी पहली शर्त है। परन्तु स्वतंत्रता के लिए उन परिस्थितियों का निराकरण भी जरूरी है जो मनुष्य को पाशविक जीवन जीने हेतु विवश करते हैं । उसको स्वयं से पराया बना देती है। जैसा कि पूंजीवादी समाज की मूल पहचान स्वतंत्रता नहीं अपितु विवशता है। अतः सर्वप्रथम पूंजीवाद की प्रधान्यता को खत्म करना होगा, क्योंकि यहीं व्यक्ति एक भ्रामक स्थिति में जीता है। इसीलिए मार्क्सवादियों को आर्थिक नियतिवाद के भ्रम से दूर हटकर संस्कृति, साहित्य, नैतिक और दार्शनिक स्तर पर पूंजीवाद के विरूद्ध वैचारिक संघर्श अथवा क्रान्ति करनी होगी। इसीलिए सर्वप्रथम नागरिक समाज आदि संस्थाओं में ग्राम्शी चेतना जगाना चाहता है। एक मानवतावादी नवमार्क्सवादी सिद्धान्तकार के रूप में ग्राम्शी हर प्रकार के प्राधान्य (आधिपत्य) के विरूद्ध था। वह निरंकुशता की जगह लोकतान्त्रिक मूल्यों को स्थापित करना चाहता था।

3.7 नागरिक समाज की अवधारणा

ग्राम्शी की अवधारणा में नागरिक समाज का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। यह अधिरचना का ही एक भाग है। 18वीं शताब्दी में यूरोप में नागरिक समाज और राज्य को एक ही सन्दर्भ में प्रयुक्त किया जाता रहा है। नागरिक समाज का सदस्य ही राज्य का सदस्य होता था। वास्तव में नागरिक समाज की अवधारणा हॉब्स, लॉक, रूसो– काण्ट के विचारों के विकास की सुदीर्घ

परम्परा से गुजरते हुए हेगल के दर्शन का केन्द्र बिन्दु बनी। ग्राम्शी ने नागरिक समाज की धारणा को मार्क्स की बजाय हीगल से ही ग्रहण की। वस्तुतः, हेगल का नागरिक समाज, परिवार, तथा राज्य के बीच का माध्यमिक स्तर है। इसलिए उसमें राज्य पूर्व की सभी संस्थायें सम्मिलित नहीं हैं। यही नागरिक समाज राज्य में विलीन होने की ओर प्रवृत्त होता है। जबकि मार्क्सवाद के अन्तर्गत नागरिक समाज ही राज्य के स्वरूप को निश्चित करता है। जैसा कि हेगल की भाँति ग्राम्शी भी नागरिक समाज और राजनीतिक समाज में अन्तर करते हुए अधिरचना के अन्तर्गत जहॉ एक वर्चस्व स्थापित करता है तो वहीं दूसरा प्रभुत्व। नागरिक समाज की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह वैचारिक क्षेत्र द्वारा नियन्त्रित होता है। इसमें चर्च, स्कूल, परिवार, न्यायालय सभी विचारों को जागृत व विकास करने में संलग्न होते हैं। इसीलिए पूंजीपति वर्ग सर्वप्रथम नागरिक समूह पर ही अपना वर्चस्व कायम करना चाहता है।

नागरिक समाज, आर्थिक ढांचा और राज्य के मध्य अवस्थित होता है। नागरिक समाज को आर्थिक ढांचे के अनुरूप बनाने में राज्य एक साधन का कार्य करता है। इसीलिए, मार्क्स राज्य को पूंजीपति वर्ग के शोषण का यन्त्र कहता है। जैसा कि राज्य का नागरिक समाज जन सहमति पर आधारित है। जबकि राजनीतिक समाज शक्ति पर आधारित होता है। यद्यपि दोनों आन्तरिक रूप से जुड़े होते हैं। साथ ही पूरक भी है। इस प्रकार ग्राम्शी के अनुसार, ''राज्य न केवल सरकारी तन्त्र है बल्कि यह 'वर्चस्व' (प्राधान्य) अथवा नागरिक समाज का व्यक्तिगत यंत्र भी है।

3.8 सारांश

निःसन्देह, ऐण्टोनियो ग्राम्शी को नवमार्क्सवाद का पहला सबसे प्रमुख विचारक कहा जा सकता है, जिसने 20वीं शताब्दी में मार्क्सवाद का पुनर्निर्माण किया। उसने मार्क्सवाद की मूलभूत सिद्धान्तों द्वन्दात्मक भौतिकवाद और आर्थिक नियतिवाद पर प्रहार करते हुए यह बतलाया कि केवल आर्थिक ही नहीं अपितु वैचारिक और सांस्कृतिक कारकों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसने मार्क्सवादी अधिनायकवाद का तीव्र विरोध किया। इसने कहा कि प्रजातान्त्रिक मूल्यों की हर संभव रक्षा होनी चाहिए। अतः आर्थिक परिवर्तन

की तुलना में सामाजिक परिवर्तन अति महत्वपूर्ण हो जाता है। इसीलिए ग्राम्शी की गणना 20वीं शताब्दी के सबसे प्रखर मार्क्सवादी आलोचकों में की जाती हैं।

ग्राम्शी ने सर्वथा एक मौलिक विचार प्रतिपादित करते हुए कहा कि राजनीति और विचारधारा को आर्थिक नियतिवाद से स्वतंत्र रखा जाना चाहिए। पूंजीवादी प्रभुत्व का खात्मा करने के लिए राजनीतिक कारकों एवं विचारधारात्मक पहलू को आधार बनाना होगा क्योंकि नागरिक समाज की संस्थाओं के माध्यम से पूंजीपति वर्ग विचारधारा पर नियन्त्रण स्थापित करता है। ग्राम्शी यह भी कहता है कि जब तक मूल्यों और मान्यताओं के क्षेत्र में बुर्जुआ तत्वों के प्रधान्य को जड़ से नष्ट नहीं कर दिया जाता तब तक कामगार वर्गों पर आन्दोलन सफल नहीं हो सकता है।

इसी प्रकार उसकी सबसे महत्वपूर्ण अवधारणा प्राधान्य या आधिपत्य जिसके अन्तर्गत भी वह कहता है कि आर्थिक आधार पर नहीं अपितु वैचारिक एवं सांस्कृतिक आधार पर वह अपना आधिपत्य पूरे समाज पर रखता है। नागरिक समाज की संस्थायें (परिवार, चर्च, स्कूल आदि) शासक वर्ग के प्रति सम्मान का वैचारिक आधार प्रस्तुत कर उसे सुदृढ़ता प्रदान करते हैं। इसीलिए क्रान्ति का आधार जब तक व्यापक नहीं होगा तब तक वास्तविक समाजवाद को स्थापित नहीं किया जा सकता है। इसीलिए नागरिक समाज को अधिरचना का सबसे महत्वपूर्ण कारक मानता है जो प्रभुत्व को अच्क्षुण बनाये रखता है। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि ग्राम्शी ने मार्क्सवाद का पुनर्निरूपण करते हुए नवमार्क्सवाद को एक विस्तृत आधार प्रदान किया। प्राधान्य की संकल्पना तथा नागरिक समाज की संकल्पना राजनीतिक सिद्धान्त को उसकी सबसे महत्वपूर्ण देन कही जा सकती है।

3.9 उपयोगी पुस्तकें

1. दुबे, संगीता (2004) : ''मार्क्सवादी दर्शन एवं राजनीति में एण्टोनियो ग्राम्शी'', क्लासिकल पब्लिशिंग कंपनी नई दिल्ली।
2. डब्ल्यू0एल0 एडम्सन : ''हेजेमनी एण्ड रेब्यूलूशन : एंटोनियो

(1980) ग्राम्शीज पालिटिकल एण्ड कल्चरल थियरी, कैलीफोर्निया प्रेस ।

3. गाबा, ओ0पी0 (2003) : ''राजनीतिक विचारक विश्वकोष'' मयूर पेपर बैक्स प्रकाशन नोयडा।

4. जी0,फियोरी : ''ऐण्टोनियों ग्राम्शी : लाइफ आफ ए रेव्यूल्यशनरी, न्यूयार्क, 1971

5. मारजोनिक (1951) : ''दि ओपन मार्स्क्रिज्म आफ ऐण्टोनियो ग्राम्शी, न्यूयार्क, प्रकाशन, 1951

6. आर, साइमन (1982) : ''ग्राम्शीज पालिटिकल थाट'' लंदन प्रकाशन 1982

7. ग्राम्शी, ऐण्टोनियो (1971): ''दि प्रिजन नोटबुक्स'' न्यूयार्क प्रकाशन, 1971.

3.10 सम्बन्धित प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. ग्राम्शी के नवमार्क्सवादी विचारों का विश्लेषण कीजिए।
2. प्राधान्य (Hegemony) का सिद्धान्त का आलोचनात्मक विवेचन कीजिए।
3. ग्राम्शी की नागरिक समाज का अवधारणा का सविस्तार विवेचन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. संरचनावाद की संकल्पना क्या है? समझाइये।
2. स्वतंत्रता की अवधारणा पर टिप्पणी लिखिए।
3. नागरिक समाज के माध्यम से पूंजीपति वर्ग कैसे प्रभुता स्थापित करता है? समझाइये।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. प्राधान्य (Hegemony) का सिद्धान्त किस विचारक ने दिया –

अ– मार्क्यूज

ब– ग्राम्शी

स– हेबरमास

द– हार्खाइमर

2. नागरिक समाज की अवधारणा किसने प्रतिपादित की –

अ– ग्रीन

ब– मार्क्स

स– कांट

द– ग्राम्शी

3. 'माई प्रिजन नोट बुक्स' किसकी रचना है –

अ– ग्राम्शी

ब– मार्क्यूज

स– हीगल

द– हेबरमास

3.11 प्रश्नोत्तर

1. ब   2. द   3. अ

MAPS-118
अर्वाचीन राजनीतिक सिद्धान्त

खण्ड 3

नव चिरसम्मत राजनीतिक सिद्धान्त

इकाई - 1 हन्ना आरेंट (1906-1975)	5
इकाई -2 माइकल ऑकशॉट (1901-1990)	15
इकाई -3 ऐरिक वोएगलिन (1901-1985)	23

संरक्षक

प्रो० एम०पी० दुबे — कुलपति

प्रो० डी.पी. त्रिपाठी — कुलसचिव

पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड/विशेषज्ञ समिति)

डॉ० एम०एन० सिंह
निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज।

प्रो. संजय श्रीवास्तव
राजनीति विज्ञान विभाग
बी.एच.यू. वाराणसी

प्रो० एच०के० शर्मा
प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश

डॉ. के.डी. सिंह
राजनीति विज्ञान विभाग
हंडिया पी.जी. कालेज, इलाहाबाद

डॉ. दीपशिखा श्रीवास्तव
असि० प्रोफेसर (सं), राजनीतिक विज्ञान,
समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज।

पाठ्यक्रम लेखन

प्रो. संजय श्रीवास्तव — लेखक
राजनीति विज्ञान विभाग — खण्ड. 01
बी.एच.यू. वाराणसी — इकाई – 01, 02, 03

डॉ. ए.पी. सिंह — लेखक
शैक्षणिक परामर्शदाता, राजनीतिक विज्ञान, — खण्ड. 02
समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज। — इकाई – 01, 02, 03

डॉ. दीपशिखा श्रीवास्तव — लेखक
असि० प्रोफेसर (सं), राजनीतिक विज्ञान, — खण्ड. 03
समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज। — इकाई – 01, 02, 03

डॉ. के.डी. सिंह — लेखक
राजनीति विज्ञान विभाग — खण्ड. 04
हंडिया पी.जी. कालेज,, इलाहाबाद — इकाई – 01, 02, 03

प्रो० एच०के० शर्मा — लेखक
प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग — खण्ड. 05
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश — इकाई – 01, 02, 03

डॉ. दीपशिखा श्रीवास्तव — **समन्वयक**

असि० प्रोफेसर (सं), राजनीतिक विज्ञान,
समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज।

संपादक

प्रो० एच०के० शर्मा — प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज– 2022

MAPS - 110 – अर्वाचीन राजनीतिक चिन्तन
ISBN:

सर्वाधिक सुरक्षित। इस सामग्री के किसी भी अंश को उत्तर प्रदेश राजर्षि टंडन मुक्त विश्वविद्याल की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में माइमोग्राफी (चक्रमुद्रण) द्वारा या किसी अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नही है।
उत्तर प्रदेश राजर्षि टंडन मुक्त विश्वविद्याल, प्रयागराज सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्यसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टंडन मुक्त विश्वविद्याल, की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।
नोट : पाठ्य सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आमडों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

खण्ड–3 का परिचय : नव चिरसम्मत राजनीतिक सिद्धान्त

नव चिरसम्मत चिंतन में परम्परावादी समुदाय के विचारकों ने राजनैतिक मूल्यों पर अधिक बल दिया और जो परम्परागत विश्लेषण पद्धतियॉ अपनायी वे– ऐतिहासिक, दार्शनिक, वर्णनात्मक, वैधानिक, संस्थागत थी। बीसवी शताब्दी में जब राजनीतिक विचारकों ने परम्परावादी दृष्टिकोण और पद्धतियों से असन्तुष्टि का अनुभव किया और विश्लेषण पद्धतियों को खोजने का कार्य आरम्भ किया तब राजनीति शास्त्र में नये आयामों को खोजा जाने लगा।

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में उदारवादी विचारकों ने यह अनुभव किया कि कल्याणकारी राज्य का सिद्धान्त व्यक्ति की स्वतंत्रता के विरूद्ध है। अतः उन्होंने उदारवादी चिंतन में अहस्तक्षेपवाद का समर्थन किया। इसके अतिरिक्त उदारवाद को एक नया रूप प्रदान करने की कोशिश की जाने लगी। आगे चलकर इसे नये चिन्तन के रूप में 'स्वेच्छातंत्रवाद' का नाम दिया गया। इस विचारधारा को चिरसम्मत उदारवाद का नाम देकर प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया। इस कारण आगे चलकर इसे नव चिरसम्मत चिन्तन का नाम दिया जाने लगा।

20वीं शताब्दी में राजनीतिक सिद्धान्त के पतन होने का दावा किया जाने लगा था। राजनीतिक सिद्धान्त का निर्माण कुछ विद्वानों द्वारा किया जाने लगा था, जो कि असन्तोष के कारण उसे पतन की ओर ले जाने में सहायक रहें। कुछ विद्वान ऐसे भी थे जो राजनीतिक सिद्धान्त के पतन को नहीं स्वीकारते थे। राजनीतिक सिद्धान्त को पुर्ननिर्माण का नाम दे दिया गया।

राजनीतिक सिद्धान्त के पुर्ननिर्माण में हन्ना आरेंट, माइकल ऑकशॉट, वोएगलिन, लियोस्ट्रास, आदि के नाम उल्लेखनीय है। इन विचारकों ने अपने विचारों के माध्यम से यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि राजनीतिक सिद्धान्त का पतन नहीं हुआ है। उन्होंने इस बात पर भी बल दिया कि राजनीतिक सिद्धान्त के पुर्ननिर्माण में कुछ भी आवश्यकता नहीं है। इन विद्वानों के अनुसार राजनीतिक सिद्धान्त का पतन दो करणों से हुआ है – पहला विद्वानों के अनुसार व्यवहारवाद के कारण पतन हुआ। दूसरा कारण विचारधारा का पतन था।

सेबाइन ने परम्परागत अथवा ऐतिहासिक विचारधारा के विषय में मान्यता प्रकट की है कि राजनीतिशास्त्रियों को उन प्रश्नों की खोज करनी चाहिए, जिनकी उन्होंने विशेष रूप से चर्चा की है।

प्रस्तुत खण्ड में तीनों विचारकों हन्ना आरेंट, ऑकशॉट, वोएगलिन के प्रमुख विचारों का वर्णन किया गया है। इन विचारकों ने परम्परावादी दृष्टिकोण का समर्थन किया है। समकालीन विचारकों स्वतंत्रता, सर्वाधिकारवाद, प्रतिनिधित्व, वैधता, प्रगति अनेक समस्याओं पर अपने विचारों को मौलिक ढंग से प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त विचारकों ने मानव जीवन से जुड़ी समस्याओं को दूर करने का प्रयास किया है। माइकल ऑकशॉट को एक पक्का रूढ़िवादी विचारक माना गया है। हन्ना आरेंट को समुदायवादी विचारो के समीप देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त, ऐरिक वोएगलिन प्रत्यक्षवादी राजनीतिक दर्शन की स्थापना करने वालों में एक महत्वपूर्ण विचारक रहे है।

परम्परावादी विचारकों ने राजनीति दर्शन की अपेक्षा उसके ऐतिहासिक पक्ष पर अधिक जोर दिया है और राजनीतिक संस्थाओं एवं कानून के अध्ययन पर बल दिया गया।

क्लासिकल दर्शन में विचारकों ने यह मत व्यक्त किया है कि मनुष्य के जीवन का उद्‌देश्य सत्य एवं ज्ञान की प्राप्ति करना है। इसके अतिरिक्त व्यक्ति का हित समाज का हित है। राज्य के विषय में आत्मा की संकल्पना उसके सिद्धान्त का सार है। जिसमें नैतिक हित सर्वोपरि है।

इकाई–01 हन्ना आरेंट (1906–1975)

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 आरम्भिक जीवन एवं शिक्षा–दीक्षा

1.3 हन्ना आरेंट के कार्य

1.4 हन्ना आरेंट का राजनीतिक दर्शन

1.5 स्वतंत्रता सम्बन्धी विचार

1.6 न्याय का सिद्धान्त

1.7 अधिनायकवाद का सिद्धान्त

1.8 मानवीय स्थिति

1.9 सारांश

1.10 उपयोगी पुस्तकें

1.11 सम्बन्धित प्रश्न

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप हन्ना आरेंट के जीवन के विषय में जान सकेंगे।

- हन्ना आरेंट को समुदायवादी विचारों के साथ ही उनके परम्परावादी विचारों पर समीक्षा कर टिप्पणी कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

हन्ना आरेंट बीसवीं सदी के परम्परावादी दार्शनिक विचारकों में से थी। जिन्होंने संस्थाओं के अध्ययन को राजनीतिशास्त्र के अध्ययन का आधार माना। हन्ना आरेंट ने अपने विचारों में मानवीय दशा का स्पष्ट चित्रण प्रस्तुत किया और अपने विचारों में स्वतंत्रता, कार्यवाही, न्याय, अधिनायकवाद से सम्बन्धित विचारों को अपने प्रभावशाली ग्रन्थ के माध्यम से प्रस्तुत किया।

हन्ना आरेंट के विचारों में हमें काफी मौलिकता देखने को मिलती हैं। आरेंट ने अपने जीवन की घटनाओं से प्रेरित होकर ही राजनीतिक विचारक के रूप में अपने विचारों को वर्णित किया।

1.2 आरम्भिक जीवन एवं शिक्षा–दीक्षा

हन्ना आरेंट बीसवीं सदी के सबसे प्रभावशाली जर्मनी मूल के अमेरिकी राजनीतिक दार्शनिकों में से एक थी। हन्ना आरेंट जर्मन यहूदी परिवार में जन्मी। उन्होंने अपने जीवन में काफी संघर्षों का सामना किया, लेकिन 1933 में नाजीवाद के उदय के बाद उनको जर्मनी छोड़ने के लिए मजबूर किया गया। 1941 में वह संयुक्त राज्य अमेरिका में आकर बस गयी और आगे चलकर न्यूयार्क में एक जीवन बौद्धिक चक्र का हिस्सा बन गयी और दार्शनिक विचारक, साहित्यकार के रूप में प्रसिद्ध हुई।

1940 में कम्युनिस्ट पार्टी के पूर्व सदस्य मार्क्सवादी दार्शनिक हेनरिक ब्लूचर से उनका विवाह हो गया। 1941 में आरेंट अपने पति और मॉ के साथ अमेरिका चली गयी और जर्मन यहूदी समुदाय में सक्रिय हो गयी। अंत में 1950 में संयुक्त राज्य अमेरिका की नागरिक बन गयी। कला और विज्ञान के क्षेत्र में अमेरिकन अकादमी की सदस्य चुनी गयी। आरेंट की दिल का दौरा पड़ने से 69 की उम्र में 1975 में उनकी मृत्यु हो गई।

हन्ना आरेंट के विचारों का केन्द्र शक्ति, राजनीति, अधिकार, अधिनायक– वाद मानव स्थिति आदि रहा, शिक्षा क्षेत्र के भीतर और बाहर शैक्षिक समुदाय में उनका काफी प्रभाव रहा।

हन्ना आरेंट की प्रमुख कृतियाँ हैं –

1. अधिनायकवाद की उत्पत्ति (Origins of totalitarianism)
2. मानवीय स्थिति (The human condition)
3. Between Post and Future Six Exercises in Political thought
4. क्रांति (On Revolution)

हन्ना आरेंट ने मूल दार्शनिक के रूप में बुनियादी वर्ग के लिए ACTIVA की खोज की (लेबर, वर्क, एक्शन)। उनकी पहली रचना 1951 मे (अधिनायकवाद की उत्पत्ति) प्रकाशित हुई। दूसरी रचना 1958 में (मानवीय स्थिति) प्रकाशित हुई।

हन्ना आरेंट का सामना अपने समय की महत्वपूर्ण घटनाओं के साथ हुआ था। हन्ना आरेंट ने अपने जीवन में उपर्युक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त क्रान्ति की प्रकृति, स्वतंत्रता, अधिकार, परम्परा और आधुनिक युग के विषयों पर भी प्रभावशाली निबंध को प्रकाशित किया।

1.3 हन्ना आरेंट के कार्य

आरेंट बीसवीं सदी के मौलिक राजनीतिक विचारकों में से एक थी। उनकी सोच में मौलिकता देखने को मिलती है। उन्होंने अधिनायकवाद की उत्पत्ति, मानवीय हालात, क्रांति सम्बन्धी विचारों को स्पष्ट किया और अपने निबंधों में ऐतिहासिक, नैतिक, राजनीतिक न्याय सम्बन्धी विचारों से प्रभावित रही। उनका महत्वपूर्ण राजनीतिक घटनाओं के साथ सामना हुआ। आरेंट ने अपने विचारों में अधिनायकवाद पर एक रूपरेखा प्रस्तुत की। मानवीय हालातों का राजनीतिक जीवन की प्रकृति पर प्रभाव, एक नये परिप्रेक्ष्य में प्रदान किया।

हन्ना आरेंट ने सदैव अपने आप को एक राजनीतिक विचारक के रूप में नहीं बल्कि दार्शनिक विचारक के रूप में प्रस्तुत किया और मानवीय व्यवहार का अध्ययन करने की ओर विशेष ध्यान दिया। प्रत्येक व्यक्ति मानवीय प्रकृति के संबंध में अपनी मान्यता रखता है और वह मान्यता उसके राजनैतिक, सामाजिक दर्शन को एक नया रूप प्रदान करती है।

1.4 हन्ना आरेंट का राजनीतिक दर्शन

हन्ना आरेंट ने भी राजनीतिक सिद्धान्त के पुर्ननिर्माण एवं उसको पतन से बचाने के लिए उससे सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं पर अपने विचारों को प्रस्तुत किया।

हन्ना आरेंट के अनुसार समाज में मनुष्य के जन्म की प्रक्रिया के बाद सांसारिक प्रक्रिया प्रारम्भ होती है, जिसमें मनुष्य एक दूसरे से सम्बन्धित मानवीय क्रियाओं की शुरूआत होती है। मनुष्य की शारीरिक मानसिक प्रक्रियाओं को हन्ना आरेट अपने विचारों में शामिल करती हैं। आरेंट मानना था कि मानवीय गुणों में व्यापकता होनी चाहिए।

समकालीन विचारकों में उदारवादी सिद्धान्त तथा मार्क्सवाद से जुड़े विचारों को तथा उससे जुड़ी समस्याओं का विश्लेषण मौलिक ढंग से प्रस्तुत किया। इसके अन्तर्गत ऐसे विचारकों को शामिल किया जा सकता है जिन्होंने स्वतंत्रता, सर्वाधिकारवाद प्रतिनिधित्व, वैधता और प्रगति इत्यादि पर ढेर सारी समस्याओं का अवलोकन किया। इन विचारकों में हन्ना आरेंट एक महत्वपूर्ण विचारक थीं, जिनका राजनीतिक दर्शन में बहुत योगदान रहा है। इनके समय में राजनीतिक चिन्तन को एक नया आयाम प्राप्त हुआ।

हन्ना आरेंट के अनुसार राजनीतिक दर्शन मुख्य रूप से चार महत्वपूर्ण विशयों के साथ संगठित किया जा सकता है। जैसे – (1) आधुनिकता (2) कार्यवाही का सिद्धान्त (3) न्याय का सिद्धान्त (4) नागरिकता। इसके अतिरिक्त तीन मूलभूत कार्यप्रणाली हैं, जो इस संसार को तीन गतिविधियों में विभाजित करती है। ये मुख्य गतिविधियां हैं –

1. श्रम 2. कार्य 3. क्रिया

हन्ना आरेंट ने आधुनिकता के सम्बन्ध में नकारात्मक विचार व्यक्त किये हैं। आरेंट मुख्यतः परम्परा, धर्म एवं अधिकार के नुकसान से चिंतित थीं, परन्तु उसने कई ऐसे सुझाव भी दिये जो आधुनिक युग में साधन, पहचान और मूल्यों संबंधी समस्याओं पर प्रकाश डाल सकें।

आरेंट के विचारों में आधुनिकता दुनिया के लिए हानिकारक हैं क्योंकि इससे सार्वजनिक क्षेत्र के कार्य समाप्त हो सकते हैं या उन पर प्रतिबंध लग सकता है, लेकिन इससे निजी क्षेत्रों को बढ़ावा मिलता है। उनके अनुसार आधुनिकता में जन हित की जगह नौकरशाही प्रशासन एवं आम सहमति में हेरफेर कर शासन करने का युग है।

राजनीति दर्शन के क्षेत्र में आरेंट का नागरिकता सम्बन्धी विचार केन्द्रीय विषय रहा है सामान्य रूप से राजनीति के क्षेत्र में उसने तीन विशेषताएं बतायी हैं, जो व्यक्ति के जीवन में आवश्यकताओं और राजनैतिक कार्रवाई के लिए विकसित की गई। पहली विशेषता कृत्रिम गुणवत्ता दूसरी विशेषता स्थानीय गुणवत्ता तीसरी सार्वजनिक और निजी हितों के बीच भेद करना है। आरेंट ने सदैव सार्वजनिक जीवन की कृत्रिमता पर बल दिया।

हन्ना आरेंट के अनुसार मनुष्य की गतिविधियों की तीन स्तरों पर पहचान की गयी है – श्रम, कृत्य और कार्यवाही।

श्रम के अन्तर्गत मनुष्य अपने भौतिक जीवन की आवश्यकताएं पूरी करता है और सुख–सुविधाएं जुटाता है और यह सबसे निम्न स्तर की गतिविधि है।

कृत्य या कार्य के अन्तर्गत षिल्पकारों और कलाकारों की गतिविधि है जो स्थायी महत्व की वस्तुएं बना कर सभ्यता के निर्माण में योगदान करते हैं। इसका श्रम से ऊँचा स्थान है।

कार्यवाही की धारणा आरेंट के जीवन में 20वीं शताब्दी के राजनीतिक, विचारकों के लिए सबसे प्रमुख योगदान रहा। जीवन की गतिविधि में कार्यवाही का सबसे ऊँचा स्थान है। जो समान नागरिकों के बीच सार्वजनिक

परस्पर क्रिया का संकेत देती है। कार्यवाही राजनीति का मुख्य विषय है। प्रत्येक नागरिक अपने अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए स्वतंत्र है। यही मानव जीवन का सार्वजनिक क्षेत्र है।

हन्ना आरेंट के अनुसार आधुनिक समाज में व्यक्तियों को अपने हितों की देख–रेख करने के लिए इतने शक्तिशाली और राष्ट्रव्यापी संगठन बना दिये गये हैं कि सार्वजनिक समस्याओं की ओर ध्यान देने की गुंजाइश बहुत कम रह गई है।

लोग अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए ही इतने चिंतित और व्यस्त हैं कि वे एक स्थायी मानव जगत के निर्माण के लक्ष्य को ही भूल गये हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि लोग 'श्रम' और कार्य पर ही जी रहे हैं और उनकी कार्यवाही की क्षमता कुठित हो गई है। ऐसी स्थिति में एक ऐसे समाज का निर्माण हो रहा है जिसमें निरंतर मनोरंजन उद्योग को ही सेवक बनाया जा रहा है। इसके लिए 'राजनीतिक जीवन' को 'पारिवारिक आर्थिक' जीवन से अलग करके फिर से महत्वपूर्ण स्थान देना होगा।

1.5 स्वतंत्रता सम्बन्धी विचार

हन्ना आरेंट ने प्राचीन और आधुनिक समाज की तुलना करते हुए कहा कि प्राचीन यूनानी विचारों में राजनीतिक जीवन की प्रधानता थी। परन्तु, आधुनिक युग में यह विशेषता लुप्त हो चुकी है। यूनानी नगर राज्य में समान व्यक्ति, सामूहिक आदर्शों से प्रेरित होकर, समुदाय की सेवा में बढ़–चढ़ कर हिस्सा लेने को तत्पर रहते थे। नगर–राज्य की सफलता का रहस्य यह था कि वहाँ पर सत्ता लोकतंत्रीय संस्थाओं में निहित थी, परन्तु पारिवारिक और आर्थिक मामलों में निजी क्षेत्र को राजनीति या सार्वजनिक क्षेत्र से पृथक रखा जाता था।

इसके विपरीत आधुनिक युग में सार्वजनिक और निजी क्षेत्र आपस में घुल मिल गये हैं अर्थात राजनीतिक और पारिवारिक जीवन के बीच विभाजक रेखा मिट गयी है। हन्ना आरेंट के अनुसार ऐसी हालत में विचार की स्वतंत्रता लुप्त हो गई है।

प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुसार ही अपनी स्वतंत्रता का अनुभव करता है। हन्ना आरेंट ने परम्परावादी विचारक होते हुए भी अपने विचारों में सैद्धान्तिक पक्ष को प्रस्तुत किया और अपने विचारों में स्वतंत्रता को प्रधानता दी क्योंकि उनके अनुसार स्वतंत्रता संस्थाओं में निहित थी जिसमें एकता की

स्थापना आवश्यक थी। इसके लिए यह आवश्यक था कि भिन्न–भिन्न जातियों, समुदायों, संस्कृतियों से सम्बन्धित लोग एक जैसी परिस्थितियों से प्रभावित होकर अपनी मूल परम्पराओं से अलग होकर एक जैसा व्यवहार करने लगे। हन्ना आरेंट ने संस्था के निर्माण पर बल दिया और जन समूह को एक साथ एकत्रित होने के लिए बढ़ावा दिया। इस प्रकार हन्ना आरेंट परम्परागत नैतिक मूल्यों का समर्थन करती हैं। उनका मानना हैं कि स्वतंत्रता तब तक सफल नहीं हो सकती है जब तक कि व्यापक स्तर पर उसे जनता का समर्थन न प्राप्त हो।

1.6 न्याय का सिद्धान्त

हन्ना आरेंट के विचारों में सबसे बड़ा और स्थायी योगदान अपने जीवन के अंतिम वर्शों पर कब्जा करने के लिए था, जो निर्णय उसके विचारों में दिखायी देता है। न्याय का यह अधूरा सिद्धान्त बीसवीं सदी के राजनीतिक विचारों में उसका केन्द्रीय विरासत का प्रतिनिधित्व करता है। परन्तु न्याय का यह सिद्धान्त व्यवस्थित रूप से वह न्याय के शिक्षकों के लिए अपने जीवन में पूरा न कर सकी क्योंकि 1975 में उसकी असामयिक मृत्यु हो गयी।

आरेंट के अनुसार कल्पना का होना न्याय के लिए जरूरी है क्योंकि दूरी बनाने के लिए वह सक्षम बनाता है उसके अनुसार लोगों को अधिक जागरूक बनाया जाये, कानून पालन करने वाला और अत्याचारों के विरूद्ध विरोध करने वाला बनाया जाना चाहिए।

कांट के अनुसार आरेंट एक बड़ी सोचवाली विचारक थी। उसमें न्यायिक क्षमता, राजनीतिक योग्यता देखने को मिलती है। आरेंट के विचारों में अरस्तू और कांट के विचारों का मिला–जुला प्रभाव देखने को मिलता है।

1.7 अधिनायकवाद का सिद्धान्त

हन्ना आरेंट ने एक परम्परावादी दार्शनिक विचारक के रूप में अपने विचारों में सर्वाधिकारवाद की विस्तृत व्याख्या की जिससे राजनीति शास्त्र के क्षेत्र में इनका बहुत महत्व है। हन्ना आरेंट ने 'सर्वाधिकारवाद की उत्पत्ति' पर अपनी बहुमूल्य पुस्तक लिखी, जो कि अपने युग की महान रचना थी। सर्वाधिकारवाद आधुनिक युग की महत्वपूर्ण घटना है। सर्वाधिकारवाद के प्रमुख उदाहरण नाजीवाद और स्टालिनवाद हैं। मुख्य रूप से यह ऐसे आंदोलन है जिनमें सत्ता और पूरी शक्ति, उत्तरदायित्व राज्य के हाथों में केन्द्रित होती है।

सर्वाधिकारवाद ऐसा आंदोलन है, जिसमें शक्ति और उत्तरदायित्व के स्रोत एक–दूसरे से अलग और परस्पर विरोधी होते हैं। इसमें सर्वोच्च शक्ति पुलिस के हाथों में रहती है। सरकार के हाथों में नहीं।

हन्ना आरेंट के अनुसार जर्मनी में यहूदियों ने सर्वाधिकारवाद को बढ़ावा दिया। यहाँ यहूदियों को राज्यहीन बनाकर उन्हें बुनियादी अधिकारों से वंचित कर दिया गया और उन्हें तरह–तरह के कष्ट दिये गये। इसके अतिरिक्त सर्वाधिकारवाद को बढ़ावा देने में भी साम्राज्यवाद ने भी सहयोग दिया। सर्वाधिकारवाद के सम्बन्ध में जो विश्लेषण हन्ना आरेंट ने प्रस्तुत किया वह एक अद्भुत घटना थी।

आरेंट के विचारों में अनेक मौलिकताएं देखने को मिलती हैं। आधुनिक समाज में व्याप्त विकृतियों को दूर करने के लिए आरेंट ने प्राचीन यूनानी नगर राज्यों की भाँति व्यवस्थाओं को अपनाने पर बल दिया और यूनानी नगर राज्य की विशेषताओं को सफल माना।

सर्वाधिकारवाद में कानून और प्रभुसत्ता का कोई अर्थ नहीं रह जाता है और ये प्रायः विलुप्त हो जाते हैं। इसके अन्तर्गत एक ऐसी शासन व्यवस्था स्थापित हो जाती हे जिसके प्रत्येक पक्ष पर आर्थिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक सभी पर राज्य का नियन्त्रण हो जाता है।

1.8 मानवीय स्थिति

हन्ना आरेंट की 1958 में प्रकाशित मानव की स्थिति राजनीतिक, सामाजिक, श्रम और काम, कार्यवाही के विभिन्न रूपों प्रभाव की अवधारणाओं का एक दार्शनिक अध्ययन प्रस्तुत किया। सार्वजनिक क्षेत्र के लिए राजनीतिक कार्रवाई का उनका सिद्धान्त बड़े पैमाने पर विकसित हुआ।

आरेंट ने सदैव मानवीय जीवन को समाज के भीतर विकसित करते हुए मानव प्रकृति के सामाजिक, राजनीतिक जीवन की स्वतन्त्रता को प्राप्त करने के लिए इनका निर्माण किया। उन्होंने सामाजिक संरचनाओं के बीच की खाई को पाटने का सदैव प्रयास किया।

हन्ना आरेंट ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'द ह्यूमन कंडीशन' के अन्तर्गत मानवीय गतिविधियों की तीन स्तरों पर चर्चा की है – लेबर, वर्क, एक्शन । आरेंट सदैव श्रम और रिलेगेट्स के सामाजिक दायरे में काम करती हैं। राजनीतिक कार्रवाई की मानव स्थिति के पक्ष में इन महत्वपूर्ण कार्रवाइयों के

अतिरिक्त क्रांति, प्रकृति, स्वतंत्रता, अधिकार, परम्परा और आधुनिक युग के रूप में विषयों पर प्रभावशाली निबंध को आरेंट ने प्रकाशित किया।

हन्ना आरेंट के विचारानुसार कार्यवाही मनुष्य के मूलभूत श्रेणियों में एक है। उन्होंने वीटा एक्टिवा के उच्चतम प्राप्ति का गठन किया। इन तीन मौलिक गतिविधियों के अनुरूप इनका विश्लेषण किया गया जो कि मानवीय जीवन की गतिविधियों से जुड़ा है और जिन्हें विभिन्न मापदंडों के आधार पर ऑका जा सकता है।

1.9 सारांश

हन्ना आरेंट बीसवीं सदी की सबसे प्रभावशाली राजनीतिक दार्शनिक थी, जिसने अपने समय की कठिन परिस्थितियों से सामना करते हुए अपने राजनैतिक विचारों को प्रस्तुत किया। उन्होंने अपने निबंध के माध्यम से मानव दशा का चित्रण प्रस्तुत किया और मानव जीवन से जुड़े विभिन्न पहलुओं की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की।

हन्ना आरेंट के अनुसार जीवन की आन्तरिक समस्याओं को समझने के लिए एक विशेष दृष्टिकोण का होना आवश्यक है। इसके लिए आवश्यक है कि ऐसी संस्थाओं का निर्माण किया जाये जो जनहित से जुड़े लोगों के बीच एकता की भावना के साथ साथ उसके जीवन को एक दिशा और अर्थ प्रदान कर सके।

आरेंट ने अपने राजनीतिक दर्शन में मुख्य रूप से आधुनिकता, कार्य का सिद्धान्त, न्याय का सिद्धान्त, नागरिकता सम्बन्धी विषयों पर अपने विचारों को वर्णित किया।

हन्ना आरेंट का मानना था कि कोई भी स्वतंत्रता तब तक अर्थपूर्ण नहीं हो सकती है जब तक उसे जन समर्थन प्राप्त नहीं होता है और हमारी निराशा भी तब तक समाप्त नहीं हो सकती है। जब तक समर्थन की प्राप्ति न हो।

हन्ना आरेंट ने सर्वाधिकारवाद का ऐतिहासिक, दार्शनिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है और इसे आधुनिक युग की महत्वपूर्ण घटना भी माना गया है उन्होंने यह भी माना कि इसको बढ़ावा देने में साम्राज्यवाद की अहम भूमिका है।

इस प्रकार आरेंट ने अपने राजनीतिक चिंतन में मौलिक विचारों को प्रस्तुत किया, साथ ही आधुनिक युग की विकृतियों को दूर करने का प्रयास किया और स्वतंत्रता सर्वाधिकारवाद, क्रांति, न्याय सम्बन्धी विचारों का राजनीतिक दर्शन में वर्णन किया।

हन्ना आरेंट ने संस्था के निर्माण और जन समूह को एक साथ एकत्रित करने की बात कही, जिससे आरेंट को हम समुदायवादी विचारकों के करीब देख सकते हैं। आरेंट ने अपना समस्त जीवन समाज की समस्याओं को दूर करने में लगा दिया। इसलिए इन्हें समकालीन विचारकों में अग्रणी माना जा सकता है ।

1.10 उपयोगी पुस्तकें

1. ओ. पी. गाबा – राजनीतिक चिंतन की रूपरेखा
2. एम.एम. त्रिपाठी – समकालीन राजनीतिक चिंतन
3. ओ. पी. गाबा – पाश्चात्य राजनीतिक चिंतन
4. जे.सी. जौहरी – आधुनिक राजनीति विज्ञान के सिद्धान्त
5. Contemporary Political Theory – जे. सी. जौहरी
6. सी0एम0 कोली – आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त एवं विश्लेषण

1.11 सम्बन्धित प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न –

1. हन्ना आरेंट ने राजनीतिक दर्शन में मानवीय स्थिति का क्या चित्रण प्रस्तुत किया?
2. हन्ना आरेंट के स्वतंत्रता सम्बन्धी विचारों पर टिप्पणी दीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. हन्ना आरेंट का राजनीतिक दर्शन में क्या योगदान था?
2. हन्ना आरेंट परम्परावादी विचारक होते हुए भी किस प्रकार से समुदायवादी विचारक माना गया है?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. हन्ना आरेंट मुख्यतः सम्बन्धित है –

अ– परम्परावाद

ब– रूढ़िवाद

स– अनुभवात्मक दृष्टिकोण

द– उपर्युक्त (अ) और (ब)

2. हन्ना आरेंट के अनुसार मनुष्य जीवन की मुख्य गतिविधियाँ हैं –

अ– श्रम

ब– कृत्य

स– कार्यवाही

द– उपर्युक्त सभी

3. निम्नलिखित में से कौन परम्परावादी विचारक नहीं है –

अ– माइकल ऑकशॉट

ब– हन्ना आरेंट

स– चार्ल्स टेलर

द– एरिक वोएगलिन

उत्तर – 1 (अ) 2 (द) 3. (स)

इकाई–02 माइकल ऑकशॉट (1901–1990)

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 जीवन परिचय

2.3 राजनीतिक दर्शन

2.4 स्वतंत्रता संबंधी विचार

2.5 रूढ़िवादी विचारक के रूप में

2.6 सारांश

2.7 सम्बन्धित प्रश्न

2.8 उपयोगी पुस्तकें

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप –

- ऑकशॉट के राजनीतिक विचारों से भली–भाँति अवगत होंगे।
- राजनीतिक चिंतन के क्षेत्र में उसके योगदान पर टिप्पणी कर सकेंगे।
- रूढ़िवादी विचारों से अवगत होंगे।

2.1 प्रस्तावना

माइकल ऑकशाट राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में एक महत्वपूर्ण रूढ़िवादी विचारक के रूप में जाना जाता है। ऑकशाट ने अनुभववाद पर प्रहार करके रूढ़िवाद की नई व्याख्या प्रस्तुत की। माइकल ऑकशाट ने अपने विचारों में परम्परावाद, रीति–रिवाज, रूढ़िवादी उदारवादी विचारों को सम्मिलित किया।

माइकल ऑकशाट के विचारों में राजनीति गतिविधियॉ किसी अनुबंध का परिणाम न होकर आपसी वार्तालाप का परिणाम है, जो आपसी विमर्श के बाद ही किसी परिणाम तक पहुॅचती है।

2.2 जीवन परिचय

माइकल ऑकशाट बीसवीं सदी के सर्वश्रेश्ठ राजनीतिक सिद्धान्तकारों, बुद्धिजीवियों में माने जाते हैं। माइकल ऑकशाट का जन्म 11 दिसम्बर 1901 को इंग्लैण्ड में हुआ था। इनके पिता सिविल सर्वेंट थे और फेबियन सोसायटी के प्रमुख सदस्य थे। ऑकशाट ने 1912 से 1920 तक अपने विद्यालयी जीवन का आनंद लिया। जार्ज बर्नाड शॉ उनके अच्छे मित्रों में से थे।

ऑकशॉट की रूचि मुख्य रूप से इतिहास, दर्शन, धर्म, राजनीतिक विचारों में थी। ऑकशाट ने कैंब्रिज विश्वविद्यालय से इतिहास विषय का अध यन किया। उन्होंने ब्रिटिश आदर्शवादी दार्शनिक जे0 एम0 इ0 मैक टैगर्ट और मध्यकालीन इतिहासकार न्यूगेंट ब्रुक (Nugent Brooke) की अपने विचारों में प्रशंसा की। ऑकशाट ने राजनीतिक दर्शन के क्षेत्र में आदर्शवादी परम्परा पर एक पुस्तक प्रकाशित की।

माइकल ऑकशाट ने अपना लम्बा जीवन अपने ज्ञानवर्द्धन, दार्शनिक योगदान में दिया। उनको ऑक्सफोर्ड का महान ब्रिटिश इतिहासकार, दार्शनिक, पुरातत्वविद् राजनीतिक विचारक माना जाता है। उन्होंने अपने जीवन में कई पुस्तकें प्रकाशित की, जिनमें मुख्य हैं :–

''रेशनलिज्म इन पॉलिटिक्स एण्ड अदर एसेज', और 'ह्यूमन कंडक्ट', 'इतिहास का दर्शन', ये पुस्तकें लोगों के जीवन के लिए काफी उपयोगी हैं।

2.3 राजनीतिक दर्शन

माइकल ऑकशॉट आधुनिक राजनीतिक चिन्तन का एक महत्वपूर्ण विचारक है। ऑकशॉट ने रूढ़िवादी विचारक के रूप में विवेकवाद, बुद्धिवाद के विरूद्ध आवाज उठायी। लॉस्की की मृत्यु के पश्चात लन्दन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स एण्ड पालिटिकल साइंस में अध्यक्ष पद को ग्रहण किया और इंग्लैण्ड के रूढ़िवादी चिन्तन को नया आयाम दिया।

ऑकशॉट ने अपने राजनीतिक दर्शन को व्यवस्थित रूप से पहली बार अपनी पुस्तक (Experience and its Model 1933) में रखा। आदर्शवाद का उनके दर्शन की अवधारणा में बहुत प्रभाव था। विद्वानों का एक ऐसा शक्तिशाली समुदाय भी है जो राजनीतिशास्त्र के स्वरूप और क्षेत्र के सम्बन्ध में परम्परावादी दृष्टीकोण को सही मानता है। इन विद्वानों ने न केवल परम्परावादी शास्त्रीय राजनीतिक सिद्धान्त को पोषण किया बल्कि अनुभवात्मक

विश्लेशणात्मक दृष्टिकोण की कटु आलोचना भी की। परम्परावाद के प्रमुख समर्थक हैं – माइकल ऑकशाट, हन्ना आरेन्ट, लियो स्ट्रास एरिक वोएगलिन। आकशाट के अनुसार इतिहास के माध्यम से जाने गये पूर्वाग्रह परम्परा तथा संग्रहीत ज्ञान बुद्धि से कहीं अधिक महत्वपूर्ण हैं। उनका विश्वास है कि राजनीतिक जीवन का ज्ञान कोरी पुस्तकें पढ़कर नहीं किया जा सकता है बल्कि यह राजनीति के कार्यकलापों के माध्यम से प्राप्त होता है। अन्य सामाजिक विज्ञानों से नहीं बल्कि कार्यों के इतिहास से प्राप्त होता है।

ऑकशॉट के अनुसार व्यक्ति अपनी इच्छाओं और आवश्यकताओं का दास है। उसी के इर्द गिर्द ही वह अपने अच्छे बुरे को समझने का प्रयास करता है। उनके अनुसार सृष्टि में परिवर्तन होना स्वाभाविक है। प्रत्येक घटना दूसरी घटना से जुड़ी होती है, उसी के अनुरूप व्यक्ति का व्यवहार भी जुड़ा हुआ होता है।

ऑकशॉट का राजनीतिक दर्शन हॉब्स के विचारों से काफी प्रभावित था। जिसका वर्णन हमें उनकी पुस्तकों तथा लेखों से प्राप्त होता है। राजनीतिक दर्शन के विषय में वह लिखता है कि उसका उद्देश्य राजनीति को प्रभावित करते हुए तथा उसकी अवधारणाओं, विशेषताओं की व्याख्या करना है। मानव जीवन राजनीति दर्शन के विविध पक्षों से जुड़ा है, इसलिये उनके संबंधों की व्याख्या करना आवश्यक हो जाता है। राजनीति के विभिन्न पक्षों में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, नैतिक कारकों की भूमिका को आवश्यक माना है।

- ऑकशॉट के अनुसार राजनीतिक दर्शन अनुभव का एक विशेष हिस्सा है जो कि मूल रूप से मार्ग मोड़ भी सकता है। जब अनुभव की पूर्णता होती है तब राजनीतिक व्यवहार का साक्षात्कार होता है तो इसे राजनीतिक दार्शनिकता कहा जाता है।
- राजनीतिक दर्शन को साक्षात्कार युक्त एवं व्यवहारिक राजनीति के रूप में मानने पर जोर दिया।
- ऑकशॉट के अनुसार राजनीतिक सिद्धान्त में उसकी ऐतिहासिक भूमिका पर ज्यादा जोर दिया गया।
- राजनीतिक दार्शनिक को सर्वप्रथम अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करना चाहिए, अन्यथा सिद्धान्त के निर्माण में कठिनाई उत्पन्न हो जायेगी।

- ऑकशॉट ने राजनीतिक चिन्तन के क्षेत्र में राजनीति को सामान्य बनाकर प्रस्तुत करने का प्रयास किया।
- राजनीतिक चिन्तन के क्षेत्र में राजनीतिक समस्याओं की जटिलताओं को दूर करने का प्रयास किया जाना चाहिए।
- ऑकशॉट के अनुसार जब तक आर्थिक तत्वों को ज्यादा और राजनीतिक तथ्यों को कम महत्व दिया जाता रहेगा तब तक राजनीतिक सिद्धान्तों का निर्माण नहीं हो सकेगा।
- ऑकशॉट ने अपने युग की समकालीन विचारधारा में 20वीं शताब्दी की चुनौतियों को प्रस्तुत किया।
- ऑकशॉट ने राजनीतिक सिद्धान्तों का पुर्ननिर्माण करके अपने दर्शन में सम्मिलित किया।
- ऑकशॉट के सम्बन्ध में उनके एक आलोचक का कहना कि 'ऑकशॉट ने जो कार्य किया है वह आन्तरिक सतह तक ही रहा है यह पूरी तरह से न हो पाया है और न ही पूरी तरह से कर पाये हैं।'
- ऑकशॉट ने अर्वाचीन राजनीतिक चिन्तन के सन्दर्भ में अपने विचार प्रस्तुत करके राजनीतिक चिन्तन का पुर्ननिर्माण कर उसे नई दिशा देने में सराहनीय योगदान दिया।

2.4 स्वतंत्रता सम्बन्धी विचार

ऑकशॉट मनुष्य की स्वतंत्रता की धारणा के विषय में कहते हैं कि व्यक्ति की स्वतंत्रता एक अच्छी शासन प्रणाली के लिए अत्यन्त आवश्यक है, इसे दमन से बचाना चाहिए। व्यक्ति की स्वतंत्रता को वह दो प्रकार की शाासन प्रणालियों में विभक्त करता है। एक संसदीय शासन प्रणाली दूसरी लोकप्रिय शासन प्रणाली। संसदीय शासन प्रणाली व्यक्ति की स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखती है। और लोकप्रिय शासन प्रणाली स्वतन्त्रता को नष्ट कर देती है। संसदीय प्रणाली में जो भी कानून बनते हैं, वह व्यक्ति के हित में होते हैं। जिसमें व्यक्ति बिना किसी वाह्य हस्तक्षेप के कार्य कर सकता है। सरकार केवल नियमों को लागू करती है। टकराव की स्थिति पैदा होने पर हस्तक्षेप का कार्य करती है।

लोकप्रिय प्रणालियाँ व्यक्ति की स्वतंत्रता को नष्ट करके उन्हें जनसमूह में बदल देती है। इसमें व्यक्ति अपनी पसंद का प्रयोग नहीं कर पाते हैं।

जनसमूह से मिलने वाले संकेतों को अपनी पसंद समझने लगते हैं। इसमें प्रतिनिधि मिलने वाले संकेतों को उनकी पसन्द बताकर अध्यादेश लागू करवा देता है। स्वतंत्रता के प्रति गहरा लगाव ही उसे रूढ़िवादी विचारक के समीप करता है। ऑकशॉट के विचारों में व्यक्ति की स्वतन्त्रता से गहरा सरोकार दिखाई देता है।

2.5 रूढ़िवादी विचारक के रूप में

ऑकशॉट ने राजनीति शब्द का प्रयोग मुख्य रूप से राज्यों के संदर्भ में किया है। यह किसी समूह के रूप में हो सकती है। ऑकशॉट के अनुसार राज्य के कुछ नियम होते हैं, जिन्हें राज्य में लागू किया जाता है। ये नियम भी तभी सफल होते हैं जब सभी इनका पालन करें। भली–भाँति नियमों से अवगत हो और नियमों में जल्दी–जल्दी कोई बदलाव न किया जाये। कभी कभी राज्य के भीतर ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं कि उनके नियमों में सुधार की आवश्यकता उत्पन्न हो जाती है। ऑकशॉट ने उदाहरण के रूप में इंग्लैण्ड में संसद में समान मताधिकार का निर्णय इसलिये नहीं लिया था कि वो समान अधिकार देना चाहते थे, बल्कि अधिकार इसलिए दिया गया था कि उस समय स्त्रियों को मताधिकार से वंचित रखना असम्भव हो गया था। क्योंकि सभी क्षेत्रों में स्त्रियों को पुरूषों के समकक्ष समानता प्राप्त हो चुकी थी।

माइकल ऑकशॉट के मुख्य प्रेरणास्रोत बर्क, डेविड ह्यूम थे। ऑकशॉट ह्यूम के रूढ़िवादी विचारों से प्रभावित थे। ऑकशॉट का राजनीतिक दर्शन आदर्शवाद से प्रभावित था। इसके लिए उन्होंने परम्परा, रीति–रिवाज का सहारा लिया। ऑकशाट स्वतंत्रता का पुजारी था वह समकालीन परिस्थितियों में व्यक्ति के अस्तित्व को बनाये रखने के लिए स्वतंन्त्रता को आवश्यक मानता है। राजनीतिक सिद्धान्तों को स्पष्ट करने में ऑकशॉट ने बहुत गम्भीर प्रयास किया था। ऑकशॉट के अनुसार राजनीति में विवेकवाद का विरोध उसके रूढ़िवादी होने का प्रमाण देता है। विवेकवादियों के अनुसार शासन का संचालन तकनीकि ज्ञान से संभव है और व्यावहारिक ज्ञान कोई ज्ञान नहीं होता है। ऑकशॉट सैद्धान्तिक दृष्टि से ज्ञान को दो भागों में विभक्त करते हैं – पहला व्यावहारिक ज्ञान तथा दूसरा तकनीकि ज्ञान। तकनीकि ज्ञान को नियमबद्ध किया जा सकता है और व्यावहारिक ज्ञान अभ्यास के द्वारा सिखाया जा सकता है। इसे नियमबद्ध नहीं किया जा सकता है।

ऑकशॉट के विवेकवाद के विरोध तथा परम्परा, रीति रिवाज पर विचार करने के कारण ऑकशॉट को रूढ़िवादी विचारक माना जाता है परन्तु वह एक लेख में स्वयं को रूढ़िवादी विचारक कहलाना पसन्द नहीं करते थे। ऑकशॉट का यह भी मानना था कि जिस देश में परम्परा के अनुरूप व्यवहार नहीं होता है वहाँ असफलता निश्चित होती है।

ऑकशॉट का विचार था कि कोई भी विचार यदि उसकी ऐतिहासिक परिस्थितियों से अलग करके प्रस्तुत किये जाते हैं तो वो विचार निरर्थक तथा प्रभावहीन हो जाते हैं। कोई भी राजनीतिक सिद्धान्त तभी सफल होते हैं जब वह अपनी परिस्थितियों के संदर्भ में ग्रहण किये जाते हैं। विचार सदैव परिस्थिति से प्रभावित होते हैं।

2.6 सारांश

माइकल ऑकशॉट रूढ़िवादी विचारक हैं। लेकिन उसके दर्शन में हॉब्स, रूसो, हीगल का प्रभाव रहा है। हॉब्स के विचारों की ऑकशॉट ने प्रशंसा की है और इच्छा को राज्य का आधार बनाया। परन्तु बाद में वह हॉब्स के विचारों को सुसंगठित न होने के कारण उसकी आलोचना भी करता है।

1. ऑकशॉट के अनुसार नागरिक संघ नैतिक व्यवहार पर आधारित संघ होता है।
2. राजनीतिक दर्शन अनुभव पर आधारित है।
3. ऑकशॉट ने परम्परा रीति–रिवाजों का समर्थन किया।
4. ऑकशॉट ने अपने विचारों में विवेकवाद का विरोध किया। रूढ़िवादी विचारों का समर्थन किया।
5. परम्पराओं के अभाव में समाज में परस्पर विरोधी संघर्ष उत्पन्न हो जाते हैं। साथ ही परस्पर विरोधों को दूर करने के लिए सुधार की आवश्यकता पर बल दिया।
6. तत्कालीन ब्रिटिश परम्परा को एक नया आयाम देने का प्रयास किया।
7. मानव जीवन में स्वतन्त्रता उसके व्यवहार में अन्तर्निहित होती है।
8. मानवीय जीवन में नैतिक व्यवहार को महत्वपूर्ण माना।

9. ऑकशॉट के अनुसार मनुष्य के जीवन में नियमों का होना आवश्यक है।

10. राज्य आवश्यक रूप से एक अनिवार्य संघ है जिसका उद्देश्य सदस्यों की नैतिक स्वायत्तता को बनाये रखना है।

2.7 सम्बन्धित प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न –

1. व्यक्ति की स्वतन्त्रता अच्छे जीवन के लिए आवश्यक है। व्याख्या कीजिए।

2. रूढ़िवादी विचारक के रूप में ऑकशॉट के विचारों का वर्णन कीजिए।

3. ऑकशॉट का राजनीतिक दर्शन में योगदान स्पष्ट कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. ऑकशॉट के स्वतन्त्रता सम्बन्धी विचारों का वर्णन कीजिए।

2. माइकल ऑकशॉट ने अपने विचारों में किस प्रकार से विवेकवाद का विरोध किया?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. माइकल ऑकशॉट ने विरोध किया –

 अ– परम्परावाद

 ब– रूढ़िवाद

 स– विवेकवाद

 द– अनुभववाद

 उत्तर – स

2. बीसवीं सदी का रूढ़िवादी विचारक था –

 अ– चार्ल्स टेलर

 ब– माइकल ऑकशॉट

 स– लियो स्ट्राउस

 द– जॉन हेयक

उत्तर – ब

2.8 उपयोगी पुस्तकें

1. माइकल ऑकशॉट – 'आन ह्यूमन कंडक्ट'
2. माइकल ऑकशॉट – 'रैशनलिज्म इन पॉलिटिक्स'
3. डॉ0 पी0 डी0 शर्मा – अर्वाचीन राजनीतिक चिन्तन
4. ओ0 पी0 गाबा – पाश्चात्य राजनीतिक विचारक
5. Experience and its Modes, Cambridge University Press, 1933.
6. Social and Political Doctrines of Contemporary Europe, Cambridge University Press, 1939.
7. On History and other Essays, Basil Blackwell , 1975.
8. The Social and Political Doctrine of Contemporary Europe, 2nd Edition, Cambridge University Press, 1941.

इकाई—03 ऐरिक वोएगलिन (1901—1985)

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 जीवन परिचय

3.3 वोएगलिन का राजनीतिक दर्शन

3.4 व्यवस्था सिद्धान्त

3.5 व्यक्ति और समाज

3.6 सामाजिक प्रतिनिधित्व

3.7 वोएगलिन का क्लासिकल दर्शन में महत्व

3.8 सम्बन्धित प्रश्न

3.9 उपयोगी पुस्तकें

3.0 उद्देश्य

इस इकाई में ऐरिक वोएगलिन के राजनीतिक दर्शन की व्याख्या की गयी है। उन्होंने क्लासिकल दर्शन की पुनः स्थापना करके राजनीतिक चिंतन में बहुत योगदान दिया।

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप —

- वोएगलिन के विचारों से भली—भाँति अवगत होंगे
- समाज में व्यवस्था का निर्धारण कर सकेंगे।
- व्यक्ति और समाज के बीच सम्बन्धों की समीक्षा कर सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

एरिक वोएगलिन बीसवीं सदी के समकालीन महत्वपूर्ण विचारकों में से एक हैं, जिन्होंने अपने राजनीतिक सिद्धान्तों में क्लासिकल दर्शन के पुर्ननिर्माण पर जोंर दिया। वोएगलिन के विचारों में प्लेटो और अरस्तू के क्लासिकन दर्शन का प्रभाव देखने को मिलता है। वोएगलिन ने एक ऐसी व्यवस्था के निर्माण पर जोर दिया जो कि सत्य पर आधारित हो। वोएगलिन ने अपनी पुस्तक 'आर्डर एण्ड हिस्ट्री' में विस्तार से ऐतिहासिक अनुभवों को प्रस्तुत

किया है। उन्होंने यह भी माना कि व्यक्ति समाज और इतिहास के आधार पर ही अच्छी व्यवस्था का निर्माण कर सकता है।

3.2 जीवन परिचय

एरिक वोएगलिन समाकालीन राजनीतिक विचारकों में प्रत्यक्षवादी राजनीतिक दर्शन की स्थापना करने वाला प्रमुख राजनीतिक दार्शनिक था। उनका जन्म 1901 में जर्मनी में हुआ था। परन्तु बाद में अमरीका जाकर बस गये और वहीं की नागरिकता प्राप्त कर ली। उनके विचारों में वेबर के विचारों का भी प्रभाव पड़ा जिनसे वो काफी प्रभावित हुए। वियना यूनिवर्सिटी से उन्होंने राजनीति विज्ञान की उपाधि प्राप्त की। 19 जनवरी 1985 में उनकी मृत्यु हो गयी। वो अपने जीवन में फिलाडेल्फिया सोसायटी के सदस्य भी बने।

वोएगलिन ने क्लासिकल राजनीतिक दर्शन में राजनीतिक सिद्धान्तों के पुर्ननिर्माण पर जोर दिया। जो कि सत्य के अस्तित्व पर टिकी हुई हो। ऐरिक वोएगलिन के सिद्धान्तों का आधार उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं, जिनमें उन्होंने अपने विचारों को प्रस्तुत किया है।

वोएगलिन के महत्वपूर्ण ग्रन्थों में है –

'The New Science of Politics'

'Politics and Gnosticism'

'Order and History'

वोएगलिन ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'द न्यू साइंस आफ पॉलिटिक्स' के अन्तर्गत समाज के प्रतिनिधित्व की समस्या पर अपने विचारों को प्रस्तुत किया।

3.3 वोएगलिन का राजनीतिक दर्शन

वोएगलिन के मतानुसार राजनीतिक दार्शनिकों को सत्य की खोज करते हुए सत्ता का मार्ग दर्शन करना चाहिए। वोएगलिन राजनीति विज्ञान को परिभाषित करते हुए लिखते हैं कि 'राजनीति विज्ञान व्यक्ति, समाज तथा इतिहास की बौद्धिक व्याख्या है, जो कि गैर बौद्धिक व्याख्याओं की भूमिका से उत्पन्न होती है और तनावों के बीच अस्तित्व में बनी रहती है।' दूसरे शब्दों में राजनीति विज्ञान राजनीतिक यथार्थ या वास्तविकता की बौद्धिक व्याख्या

है। वोएगलिन ने राजनीतिक दर्शन में जो बौद्धिक व्याख्या प्रस्तुत की है वो प्लेटो और अरस्तू की दार्शनिक बौद्धिक व्याख्या के अनुरूप देखने को मिलती है। उनका मानना है कि व्यक्ति के जीवन में तनाव सदैव सत्य की व्याख्या तथा संघर्ष से ही उत्पन्न होता है।

वोएगलिन के अनुसार दर्शन यथार्थ जीवन पर टिका है। उनका मानना है कि संसार ईश्वर और व्यक्ति के बीच बँटा है जिसमें मनुष्य की केन्द्रीय भूमिका होती है। और उसकी सहभागिता इसमें अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। वोएगलिन के अनुसार राजनीति का विश्लेषण मानव प्रकृति के अनुकूल उसके बताये हुए सिद्धान्तों के अनुरूप ही होना चाहिए। एक अच्छी व्यवस्था के लिए यह भी आवश्यक है कि उसमें व्यवस्थित शासन प्रणाली हो जिसका उद्‌देश्य सत्य की खोज करना होना चाहिए।

वोएगलिन के विचार में राजनीतिक दर्शन को समझने के लिए उसके ऐतिहासिक दर्शन को समझना आवश्यक है। क्योंकि, इतिहास के विश्लेषण के आधार पर ही वर्तमान की नींव डाली जा सकती है। इतिहास के अध्ययन से हमें अतीत को वर्तमान से जोड़कर उसके पुराने सम्बन्धों व्यवस्थाओं की जानकारी प्राप्त होती है। जैसा कि इतिहास और राजनीति का बहुत पुराना और गहरा सम्बन्ध हैं ।

वोएगलिन समकालीन विचारकों में एक बहुत महत्वपूर्ण विचारक हैं जिसने ऐतिहासिक विचारों को बड़े ही अच्छे तरीके से प्रस्तुत किया और प्राचीन परम्पराओं को पश्चिमी परम्परा से जोड़ते हुए उनका वर्णन किया। वोएगलिन के चिंतन में हमें काफी मौलिकता देखने को मिलती है जो उसके दर्शन में दिखायी देती है उसने अपने विचारों में ऐतिहासिक व्यवस्था, प्रत्यक्षवाद, सामाजिक आन्दोलनों, सांस्कृतिक बदलावों का विश्लेषण करते हुए अपने दर्शन को प्रस्तुत किया। इस प्रकार वोएगलिन के चिन्तन में पश्चिमी परम्परा के प्रभाव के साथ ही ऐतिहासिक राजनीतिक सिद्धान्तों का गहरा प्रभाव देखने को मिलता है।

वोएगलिन के अनुसार राजनीतिक दर्शन का उद्‌देश्य अच्छी सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करना होना चाहिए। समाज की विकृतियों, अव्यवस्थाओं को दूर करने के लिए एक लचीली व्यवस्था स्थापित की जानी चाहिए।

वोएगलिन ने विज्ञान को मूल्यपरक एवं व्यापक बनाने पर जोर दिया। वोएगलिन ने व्यवहारवादी वैज्ञानिक पद्धति का खुलकर विरोध किया और इसके अतिरिक्त विज्ञान को उपयोगी बनाने पर बल दिया। उन्होंने राजनीति

विज्ञान को एक नवीन दृष्टिकोण के साथ प्रस्तुत करने पर बल दिया। वोएगलिन वैज्ञानिक पद्धति के साथ आध्यात्मिक पद्धति को जोड़कर उसे अधिक उपयोगी बनाना चाहते थे।

वोएगलिन ने अपने विचारों में सापेक्षवाद के विरूद्ध आलोचना की। मैक्सवेबर का जन्म प्रत्यक्षवादी युग और आध्यात्मवादी युग के बीच में उत्पन्न हुआ, इसलिए उन्होंने इसे समान माना। वोएगलिन का मानना है कि वैज्ञानिक पद्धति, मूल्य विज्ञान के माध्यम से केवल समस्याओं का समाधान नहीं खोजा जा सकता है।

वोएगलिन के अनुसार 20वीं शताब्दी में सिद्धान्तों का निर्माण ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर किया जा रहा था। यूनानी दृष्टिकोण के आधार पर नहीं किया जा रहा था। वोएगलिन का उद्देश्य सत्य की खोज करना था। वोएगलिन व्यवहारवादियों की आलोचना करते हुए कहते है कि उन्होंने राजनीति विज्ञान को संकटपूर्ण स्थितियों में डाल दिया है और उसके पतन का भी जिम्मेदार ठहराया। वोएगलिन मूल्य आधारित विज्ञान का निर्माण करना चाहते थे। जो कि मनुष्य जीवन के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

वोएगलिन अपने विचारों में प्रजातिवाद की आलोचना करते हुए उसके दोषों को बताते है। उनका मानना था कि प्रजातिवाद का परिणाम सदैव विनाशकारी होता है और समस्त मानव जाति के लिए यह हानिकारक सिद्ध होगा।

इस प्रकार वोएगलिन अपने विचारो में प्रजातिवाद के विरूद्ध कड़ी प्रतिक्रिया व्यक्त करते है और विज्ञान और दर्शन के बीच समन्वय स्थापित करने का प्रयास करते है। साथ ही वह अपने विचारों को रचनात्मक ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास करते है।

वोएगलिन मानव जीवन के विपरीत परिस्थितियों की आलोचना करते हुए मानव मूल्यों का समर्थन करते हैं। वोएगलिन परम्परावादी विचारों का समर्थन करते हुए मानवीय मूल्यों के अनुरूप राजनीति सिद्धान्त के निर्माण का प्रयास करते हैं। इस प्रकार वो राजनीति विज्ञान में उसके ऐतिहासिक दृष्टिकोण का समर्थन करते है।

वोएगलिन ने राजनीति विज्ञान को एक नई दिशा देने का प्रयास किया। अनुभववाद और वैज्ञानिकता के विरूद्ध अपने विचारों को प्रस्तुत किया। वोएगलिन ने अपने विचारों के समन्वयवादी दृष्टिकोण अपनाकर

विषयगत सीमा से निकलकर विचारों में प्रस्तुत करने की बात की और इसे सर्वव्यापक बनाने पर जोर दिया।

इस प्रकार राजनीतिक सिद्धान्त का पुर्ननिर्माण करने एवं इसे इसे पतन से बचाने के कार्य में वोएगलिन को महान विचारक माना गया है।

3.4 व्यवस्था का सिद्धान्त

वोएगलिन समाज में ऐसी व्यवस्था की स्थापना चाहते हैं जो कि सत्य की खोज पर आधारित हो जिसका उद्देश्य व्यक्ति और समाज के बीच अच्छी शासन प्रणाली की स्थापना करना होना चाहिए। जो कि मानव प्रकृति के अनुकूल बनाये गये सिद्धान्तों पर आधारित हो। यदि समाज में अच्छी व्यवस्था का निर्माण होगा तो, व्यक्ति को जीवन में सफलता प्राप्त होती है। और विफल होने पर समाज में अव्यवस्था आती है। व्यक्ति के चरित्र से ही समाज का निर्माण होता है। वोएगलिन समाज में ऐसे जीवन की कामना करते हैं जो विवेक पर आधारित हो और जो समाज को व्यापक व समृद्धि बना सके।

मनुष्य अपने ऐतिहासिक अनुभवों से ही सीखता है और वर्तमान को व्यवस्थित करता है। इसके आधार पर ही वह नये विश्व का निर्माण करता है जैसे प्राचीन सभ्यताओं के आधार पर ही व्यक्ति अपना नया जीवन सृजित करता है। इस प्रकार वोएगलिन ने एक गौरवशाली परम्परा का आरम्भ किया।

वोएगलिन का मानना है कि सम्पूर्ण विश्व दो शक्तियों के बीच विभाजित है जिसमें वह ईश्वर और व्यक्ति को महत्वपूर्ण मानता है। जिसमें मनुष्य की सहभागिता महत्वपूर्ण है।

वोएगलिन के अनुसार व्यक्ति और समाज का मुख्य उद्देश्य सत्य की खोज करना है। जिसके लिए खुले दृष्टिकोण की आवश्यकता है, क्योंकि बन्द दृष्टिकोण से विकृत विचारधारा ही उत्पन्न होती है। इसके लिए आवश्यकता इस बात की है कि व्यक्ति अनुभवों के आधार पर पूर्णता प्राप्त करता है। संबंधों को जोड़ने में अनुभव एक नई दिशा दिखाते हैं। वोएगलिन कहता है कि इस संसार से हटकर कोई शक्ति नहीं है। दार्शनिकों को राजनीतिक सत्ता का मार्गदर्शन करना चाहिए। यदि शक्ति गलत दिशा की ओर बढ़ती है, तो विनाशकारी रूप धारण कर लेती है। इसी आधार पर उसने

मार्क्सवाद और फासिस्टवाद की भी आलोचना की है। क्योंकि मिथ अवधारणाएं इस लोक में ही परलोक की पूर्णता प्राप्त करने का दावा करती हैं।

वोएगलिन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक – 'आर्डर एण्ड हिस्ट्री' में ऐतिहासिक युग के अलग–अलग अनुभवों को प्रस्तुत किया है। उसके अनुसार सत्य की खोज के दौरान मनुष्य सत्ता से अपने सम्बन्धों को जोड़ने में अत्यन्त व्याकुल रहता है जिससे उसे तनाव की अनुभूति होती है और यह तनाव मानवीय जीवन के क्रिया कलापों की प्रेरणा शक्ति होते हैं जो उसे प्रभावित करते हैं। यथार्थ में बौद्धिक व्याख्या तनाव से उत्पन्न होती है। जिसमें मनुष्य का अस्तित्व बना रहता हैं ।

3.5 व्यक्ति और समाज

वोएगलिन के अनुसार यदि व्यक्ति को मानव जीवन के विकास को प्राप्त करना है तो उसे दैवीय तरीकों के साथ ही विवेक का भी जीवन जीना चाहिए। विवेकपूर्ण जीवन व्यक्ति के उच्चतम जीवन के विकास के लिए आवश्यक है। वोएगलिन प्लेटो, अरस्तु के विचारों से सहमत थे कि व्यक्ति को नैतिक व सदगुणी होना चाहिए। क्योंकि नैतिकता ही व्यक्ति के जीवन का आधार है।

वोएगलिन ऐसे समाज का निर्माण चाहते हैं, जिसमें ऐसी संरचना हो जिसके आधार पर शासन प्रणालियों का अध्ययन एवं मूल्यांकन किया जा सके। वोएगलिन एक ऐसे आदर्श समाज का निर्माण करना चाहते हैं जो न तो बहुत आदर्शवादी व्यवस्था का समर्थन करता हो और न ही काल्पनिक व्यवस्था का बल्कि, वह ऐसा समाज चाहते हैं जो व्यक्ति के वास्तविक जीवन और सत्य पर आधारित हो। ऐसा समाज व्यापक और समृद्ध होना चाहिए जिसमें विवेकपूर्ण जीवन की संभावना हो।

वोएगलिन का मानना है कि सामाजिक रचना लचीली एवं अनुभवात्मक ज्ञान

के आधार पर आधारित होनी चाहिए। राजनीतिक दर्शन का मुख्य कार्य समाज की विकृतियों को दूर करके ऐसी व्यवस्था का निर्माण करना है, जो प्लेटो, अरस्तू के क्लासिकल दर्शन पर आधारित हो।

वोएगलिन के अनुसार वास्तव में राजनीतिक यथार्थ इन्हीं मुख्य तीन आयामों से जुड़ा है – व्यक्ति, समाज और इतिहास। वोएगलिन के इतिहास की मान्यता प्लेटो के दर्शन से प्रभावित है।

इतिहास के अन्तर्गत मानव अस्तित्व से जुड़ी ऐतिहासिक प्रक्रिया व्यवस्थाओं, सभ्यताओं जो कि सदियों से चली आ रही, उनको प्रकट करना है। दॉते जर्मीनों ने लिखा है कि वोएगलिन के सम्पूर्ण राजनीतिक दर्शन का सम्बन्ध मानव दशा के अनुभवों का पर्याप्त प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्त करने की एक सीमा है । मानव के सामाजिक, दार्शनिक, सांस्कृतिक अनुभवों का राजनीतिक संस्थाओं और नीतियों के निर्माण में महत्वपूर्ण स्थान होता है जिनके आधार पर राजनीति विज्ञान को एक दिशा का ज्ञान होता है। सफल शासन प्रणाली के लिए उसमें लचीली व्यवस्था का होना जरूरी है क्योंकि जो सभी दोशों से मुक्त हो।

वोएगलिन ने समकालीन चिन्तन में ऐतिहासिक तथ्यों का प्रभावशाली ढंग से विवेचन किया है। उसकी क्लासिकल दर्शन की मान्यताओं और यूनानी प्रभाव के कारण ही समकालीन चिन्तन में मुख्य योगदान रहा है।

3.6 सामाजिक प्रतिनिधित्व

ऐरिक वोएगलिन ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'द न्यू साइंस ऑफ पॉलिटिक्स' के अन्तर्गत सामाजिक प्रतिनिधित्व की समस्या पर विचार प्रकट किया है। उसके अनुसार समाज का प्रतिनिधित्व तीन प्रकार का होता है :–

1. मूल प्रतिनिधित्व (Elemental Representation)
2. अस्तित्वमूलक प्रतिनिधित्व (Existential Representation)
3. अनुभवातीत प्रतिनिधित्व (Transcendental Representation)

1- मूल प्रतिनिधित्व –

मूल प्रतिनिधित्व के अन्तर्गत सरकारी अधिकारियों का चुनाव होता है और उच्च पदों पर उनकी नियुक्ति की जाती है।

2. अस्तित्वमूलक प्रतिनिधित्व –

इसके अन्तर्गत एक व्यवस्थित समाज होता है जो धर्मशास्त्रों के अनुरूप होता है और समाज तथा उसके प्रतिनिधियों का नेतृत्व करता है तथा निर्णयों का मार्गदर्शन प्रस्तुत करता है।

3. अनुभवातीत प्रतिनिधित्व –

इसके अन्तर्गत सत्य बोलने वाले ऋषि, मुनि, साधु, संत आते हैं, जो यह प्रयास करते हैं कि प्रचलित नैतिक मान्यताओं के अनुरूप शासन हो और सामाजिक विकृतियों को दूर किया जाए ।

वोएगलिन के अनुसार इसके लिए बड़े बड़े महापुरूषों ने प्रयास किया जैसे – ईसा मसीह, सुकरात और अन्य महापुरूष जो अलग अलग सभ्यताओं से जुड़े हुए थे जिन्होंने बहुत महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि शासक वर्ग केवल समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं और समाज के प्रतिनिधित्व का दायित्व अन्य पर होता है।

वोएगलिन के अनुसार दर्शन का उद्‌देश्य राजनीति विज्ञान का विस्तार करना उसका पुर्ननिर्माण करना होना चाहिए न कि उसके दोशों को प्रदर्शित करके उसे व्यर्थ सिद्ध करना होना चाहिए। इसलिए वोएगलिन व्यवस्थित दर्षन की बात करता हैं ।

1.7 वोएगलिन का क्लासिकल दर्शन में महत्व

आरम्भिक काल से लेकर आज तक राजनीतिक दर्शन के क्षेत्र में साहित्य, दर्शन, इतिहास, संस्कृति आदि विषयों का अध्ययन होता रहा है और चिरकाल से यह मान्यता रही है कि इन विषयों का अध्ययन के क्षेत्र में बहुत महत्व रहा है। गौरवशाली ग्रन्थ देश की सीमाओं से परे हैं परन्तु इनका मानव जीवन के लिये स्थायी महत्व है। राजनैतिक सिद्धान्त के निर्माण में इन प्राचीन ग्रन्थों ने समकालीन चिन्तन में उत्तम भूमिका का निर्वाह किया है। चूँकि राजनीति सिद्धान्त राजनीति के विविध पक्षों का व्यवस्थित अध्ययन प्रस्तुत करता है। प्राचीन कालीन चिन्तन अधिकांशतः किन्हीं विशेष परिस्थितियों तथा प्रयोजनों का परिणाम मात्र है। राजनीतिक विचारक राजनीति की समस्याओं के साथ ही राज्य और शासन की प्रकषति और उद्‌देश्यों के विषय में इनसे जुड़ी त्रुटियों को दूर करने का प्रयास करते रहे हैं। साहित्य में राजनीतिक सिद्धान्त शब्द का प्रयोग अत्यंत विस्तृत हो गया है।

राजनीतिक दर्शन के क्षेत्र में ऐरिक वोएगलिन का नाम क्लासिकल दर्शन के पुर्नजन्म के लिये लिया जाता है। वोएगलिन ऐसी मान्यताओं की खोज करता है जो क्लासिकल दर्शन को उचित स्थान पर रखती है। वोएगलिन की रूचि दार्शनिक , सामाजिक, ऐतिहासिक मुद्‌दों पर रही है। वोएगलिन प्रत्यक्षवादी राजनीतिक दर्शन के क्षेत्र में उसके पुर्नजागरण एवं

स्थापना पर बल देता हैं । प्रत्यक्षवाद चूँकि वैज्ञानिक पद्धति से प्राप्त ज्ञान को प्रासंगिक, विश्वस्त और प्रामाणिक मानता है।

वोएगलिन समकालीन विचारकों में एक महत्वपूर्ण शक्तिशाली, यथार्थवादी विचारक है, जिसने राजनीतिक दर्शन को एक नया आयाम प्रस्तुत किया। उसने क्लासिकल दर्शन में यथार्थवादी पक्ष को महत्व देते हुए उसके व्यवहारिक चिन्तन पर बल दिया आैर ऐतिहासिक पक्षों की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की। इतिहास और राजनीति के बीच सम्बन्धों को भी जोड़ने का काम किया है। परम्पराओं को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करते हुए सत्य के अन्वेषण पर बल दिया।

वोएगलिन के चिन्तन में मौलिकता होते हुए भी उसके चिन्तन में कुछ कमियॉ दिखाई देती हैं। राजनीति दर्शन के क्षेत्र में उसका बहुत महत्व रहा है। परन्तु उसने व्यवहारिक पक्षों को छोड़ दिया है। ऐतिहासिक पक्षों पर उसने बल दिया है लेकिन उनकी विस्तष्त व्याख्या नहीं प्रस्तुत की है जिस कारण उसके चिन्तन में कमियॉ उजागर होती है। वोएगलिन के विचारों में कमियॉ होते हुए भी उसके दर्शन की उपयुक्तता को नकारा नहीं जा सकता है। क्योकि उसके दर्शन का सार कमियां दिखाना नहीं बल्कि राजनीति विज्ञान के सीमा क्षेत्र का विस्तार करना हैं।

3.8 सम्बन्धित प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न –

1. ऐरिक वोएगलिन की व्यवस्था सम्बन्धी विचारों की समीक्षा कीजिए।
2. वोएगलिन का राजनीतिक दर्शन में क्या योगदान था?

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. व्यवस्थित समाज के लक्षण बताइये।
2. प्रत्यक्षवादी विचारक के रूप में वोएगलिन का महत्व बताइये।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. वोएगलिन के अनुसार राज्य मुख्य रूप से आधारित है –

   अ– इतिहास

   ब– समाज

   स– व्यक्ति

द– उपयुर्क्त दोनों

उत्तर – द

2. क्लासिकल राजनीति दर्शन के सिद्धान्त के पुर्नजन्म पर किसने जोर दिया –

अ– वोएगलिन

ब– जॉन रॉल्स

स– ऑकशाट

द– आरेंट

उत्तर – अ

3. 'Order and History' महत्वपूर्ण कृति है –

अ– एरिक वोएगलिन

ब– लियो स्ट्राउस

स– चार्ल्स टेलर

द– राबर्ट नॉजिक

उत्तर – अ

3.9 उपयोगी पुस्तकें

1- Eric Voegelin - 'Order and History'

2. Cooper Barry - A Fragment of Political Theory.

3. Federik D - The New Voeglin

4. एस0 आर0 गुर्जर – बीसवीं सदी के विचारक

5. ओ0 पी0 गाबा – पाश्चात्य राजनीतिक विचारक

6. Eric Voegelin - The New Science of Politics

7. Eric Voegelin - New Science of Politics

8. Eric Voegelin - Science Politics and Gnosticism.

9. सी0एम0 कोली – आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त एवं विश्लेषण

खण्ड
4
उदारवाद और इच्छा स्वातंत्रवादी राजनीतिक सिद्धान्त

इकाई - 1 5
फ्रेडरिक ऑगस्टफोन हेयक

इकाई -2 16
जॉन रॉल्स

इकाई -3 30
राबर्ट नोजिक

संरक्षक

प्रो० एम०पी० दुबे — कुलपति

प्रो० डी.पी. त्रिपाठी — कुलसचिव

पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड/विशेषज्ञ समिति)

डॉ० एम०एन० सिंह
निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज।

प्रो. संजय श्रीवास्तव
राजनीति विज्ञान विभाग
बी.एच.यू. वाराणसी

प्रो० एच०के० शर्मा
प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश

डॉ. के.डी. सिंह
राजनीति विज्ञान विभाग
हंडिया पी.जी. कालेज, इलाहाबाद

डॉ. दीपशिखा श्रीवास्तव
असि० प्रोफेसर (सं), राजनीतिक विज्ञान,
समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज।

पाठ्यक्रम लेखन

प्रो. संजय श्रीवास्तव
राजनीति विज्ञान विभाग
बी.एच.यू. वाराणसी
लेखक
खण्ड. 01
इकाई – 01, 02, 03

डॉ. ए.पी. सिंह
शैक्षणिक परामर्शदाता, राजनीतिक विज्ञान,
समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज।
लेखक
खण्ड. 02
इकाई – 01, 02, 03

डॉ. दीपशिखा श्रीवास्तव
असि० प्रोफेसर (सं), राजनीतिक विज्ञान,
समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज।
लेखक
खण्ड. 03
इकाई – 01, 02, 03

डॉ. के.डी. सिंह
राजनीति विज्ञान विभाग
हंडिया पी.जी. कालेज,, इलाहाबाद
लेखक
खण्ड. 04
इकाई – 01, 02, 03

प्रो० एच०के० शर्मा
प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश
लेखक
खण्ड. 05
इकाई – 01, 02, 03

डॉ. दीपशिखा श्रीवास्तव — **समन्वयक**

असि० प्रोफेसर (सं), राजनीतिक विज्ञान,
समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज।

संपादक

प्रो० एच०के० शर्मा — प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज– 2022

MAPS - 110 – अर्वाचीन राजनीतिक चिन्तन
ISBN:

सर्वाधिक सुरक्षित। इस सामग्री के किसी भी अंश को उत्तर प्रदेश राजर्षि टंडन मुक्त विश्वविद्याल की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में माइमोग्राफी (चक्रमुद्रण) द्वारा या किसी अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नही है।
उत्तर प्रदेश राजर्षि टंडन मुक्त विश्वविद्याल, प्रयागराज सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्यसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टंडन मुक्त विश्वविद्याल, की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।
नोट : पाठ्य सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आमडों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

खण्ड–4: उदारवाद और इच्छा स्वातंत्रवादी राजनीतिक सिद्धान्त

खण्ड परिचय

जीवन के विविध क्षेत्रों में सुधारों का समर्थन करने वाली और व्यक्ति की स्वतंत्रताओं और अधिकारों का पक्षानुमोदन करने वाली विचारधारा उदारवाद समय और परिस्थिति के अनुरूप संशोधित होती रही है। सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में जब जान लॉक, बेंथम और एडम स्मिथ इस विचारध् ाारा का पोषण कर रहे थे तब इसने राज्य को एक आवश्यक बुराई बताया और अहस्तक्षेप की नीति का समर्थन किया, परन्तु जब इस नीति को अपनाने से सामाजिक जीवन में वैषम्यता बढ़ गयी तब इसका रूप सकारात्मक हो गया। उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी के विचारकों मिल, ग्रीन, लास्की और मैकाइवर आदि के विचारों में उदारवाद के इसी सकारात्मक रूप का समर्थन किया गया है।

1970 के पश्चात् उदारवाद कई चरणों में संशोधित हुआ इनमें एक महत्वपूर्ण चरण था–स्वतंत्रतावाद या इच्छा स्वातंत्र्यवाद। प्रस्तुत खण्ड में उदारवाद की इसी धारा का विवेचन किया गया है। चूँकि लिबर्टी से सम्बद्ध है लिब्रलिज्म और बीसवीं शताब्दी की परिवर्तित परिस्थितियों में इससे कल्याणकारी राज्य की धारणा का बोध होने लगा था। अतः उदारवाद की इस नूतन धारा विषयक चिंतन को लिबर्टेरियनिज्म (Libertarianism) या स्वेच्छातंत्रवाद या स्वतंत्रतावाद या इच्छास्वातंत्र्यवाद नाम दिया गया।

इच्छास्वातंत्र्यवाद व्यक्ति की पूर्ण स्वायत्तता (Full Autonomy) का समर्थन करती है और उन राजनीतिक संस्थाओं, धर्म, परिवार, परम्पराओं आदि से व्यक्ति की मुक्ति की कामना करती है, जो उसे निश्चित सांचे में ढालना चाहती है। इच्छा स्वातंत्र्यवाद मानव जीवन की नियतिवादिता को अस्वीकार करती है और मानव को ही अपना भाग्य विधाता बताती है। इसकी मान्यता है कि व्यक्ति अपनी उन गतिविधियों में स्वतंत्र है जो दूसरों के लिये हानिप्रद नहीं है और उनकी स्वतंत्रताओं पर आघात नहीं करती। इच्छा स्वातंत्र्यवादी विचारक न ही वैयक्ति जीवन में शासकीय हस्तक्षेप उचित मानते हैं और न व्यक्तियों को अधिकारों से वंचित करना नैतिक मानते हैं।

प्रस्तुत खण्ड में तीन प्रमुख इच्छा स्वातंत्र्यवादी विचारकों के विचारों का विवेचन किया गया है। ये हैं – एफ0 ए0 हेयक, राबर्ट नोजिक और जॉन

राल्स। एफ0 ए0हेयक की मान्यता है कि व्यक्ति द्वारा प्राप्त अधिकाधिक नागरिक, राजनीतिक व आर्थिक स्वतंत्रतायें समाज में अधिकतम लोकहित व कार्यकुशलता को जन्म देती है। जॉन रॉल्स न्याय की संकल्पना को स्वतंत्रता से सम्बद्ध करता है और बताता है कि स्वतंत्रता पर किसी तरह का प्रतिबन्ध लगाना न्याय का तिरस्कार करना है। राबर्ट नोजिक दक्षिणपंथी स्वतंत्रतावादी विचारक माना जाता है। वह स्वतंत्रता व अधिकारों पर किसी तरह का प्रतिबन्ध स्वीकार नहीं करता। उसके अनुसार समस्त वैयक्तिक व शासकीय गतिविधियां ऐच्छिक व सहमतिजन्य होनी चाहिए। उसने बल प्रयोग का तीव्र विरोध किया है।

इकाई–01 फ्रेडरिक ऑगस्टफोन हेयक

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 आरम्भिक जीवन एवं शिक्षा–दीक्षा

1.3 हेयक और उदारवाद

1.4 स्वतंत्रता विषयक विचार

1.5 स्वतंत्रता के समर्थन में तर्क

1.6 स्वतंत्रता के महत्व का प्रतिपादन

1.7 स्वतंत्रता और समानता के सम्बन्ध

1.8 राज्य के कार्य विषयक विचार

1.9 सारांश

1.10 उपयोगी पुस्तकें

1.11 सम्बन्धित प्रश्न

1.12 प्रश्नोत्तर

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप –

- एफ0 ए0 हेयक के जीवन पर टिप्पणी कर सकेंगे।
- तद्युगीन परिस्थितियों में हेयक के विचारों के निर्माण की जानकारी कर सकेंगे।
- एफ0 ए0 हेयक के राजनीतिक विचारों को जान सकेंगे।
- एफ0 ए0 हेयक के राजनीतिक विचारों के महत्व की समीक्षा कर सकेंगें।

1.1 प्रस्तावना

1929–33 की भीषण आर्थिक मंदी के कारण जब उदारवादी विचारधारा को अपनाने वाले देशों में बेकारी, भुखमरी और भीषण आर्थिक समस्यायें पैदा हुयी तब जे0 ए0 कीन्स जैसे विचारकों ने परम्परागत उदारवादी व्यवस्था पर प्रहार किया और उदारवाद व पूँजीवाद की रक्षा के लिये राज्य – नियंत्रण

के औचित्य का प्रतिपादन किया। अपनी विख्यात पुस्तक 'जनरल थियरी ऑफ एम्प्लायमेन्ट इंटरेस्ट एण्ड मनी (1936) में कीन्स ने स्पष्ट किया कि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में एक अन्तर्निहित असंतुलन होता है तथा जैसे–जैसे पूँजीवाद परिपक्व होता जाता है, यह असन्तुलन बढ़ता जाता है। यह असंतुलन पूँजी के अत्यधिक केन्द्रीकरण के चलते होता है, जिससे किसी तरह का लाभकारी विनियोग सम्भव ही नहीं हो पाता। अपनी इसी स्पष्ट मान्यता के चलते कीन्स ने आर्थिक मामलों में राज्य की हस्तक्षेपकारी भूमिका को अपरिहार्य बताया और व्यक्ति व राज्य के परस्पर विरोध विषयक मान्यता को अस्वीकार कर दिया था। एफ0 ए0 हेयक ने अपने तर्कों के माध्यम से कीन्स जैसे विचारकों की मान्यता को अस्वीकार कर दिया और उसके स्थान पर नूतन दृष्टिकोण अपनाने का सुझाव दिया।

1.2 आरम्भिक जीवन एवं शिक्षा

फ्रेडरिक ऑगस्ट जॉन हेयक का जन्म 8 मई 1899 को वियना (आस्ट्रिया) में हुआ। हेयक कैथोलिक थे और उन्होंने विधि, राजनीति विज्ञान और अर्थशास्त्र का गहन अध्ययन किया था। वर्ष 1931 में वे लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स में प्रोफेसर के पद पर नियुक्त हुये। उन्होंने 1938 में ब्रिटिश नागरिकता ग्रहण कर ली। अपने सशक्त लेखनशैली के माध्यम से उन्होंने मुक्त बाजार पूँजीवाद का पक्षानुमोदन किया। वर्ष 1974 में उनके योगदान को स्वीकार करते हुये नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया। उन्हें 1991 में प्रेसीडेन्सियल मेडल आफ फ्रीडम भी प्रदान किया गया।

हेयक के महत्वपूर्ण ग्रन्थों में है – रोड टू सर्फडम (दासता की ओर – 1944), 'दि कांस्टीट्यूशन आफ लिबर्टी (स्वतंत्रता का संविधान 1960) और लॉ, लेजिस्लेशन एण्ड लिबर्टी (कानून, विधि निर्माण और स्वतंत्रता 1973–79) ।

1.3 हेयक और उदारवाद

अमेरिका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट की विख्यात आर्थिक नीति पर कीन्स के विचारों की स्पष्ट छाप थी। यह आर्थिक नीति जैसे प्रकाशित हुई वैसे ही व्यवस्थापिका सभाओं और बुद्धिजीवी वर्ग में राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं को नियंत्रित करने के विषय पर चिंतन आरम्भ हो गया अर्थात अहस्तक्षेप विषयक

नीति का स्थान आर्थिक नियोजन की नीति को मिलने लगा। द्वितीय विश्व युद्ध जनित समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में नूतन नीति और भी प्रासंगिक हो गयी। जान गैलब्रेथ जैसे विख्यात लेखकों की कृतियों – एन एफ्ल्युएण्ट सोसाइटी और द न्यू इंडस्ट्रियल स्टेट में भी स्पष्ट किया जाने लगा कि यदि आर्थिक संकट से मुक्ति प्राप्त करनी है तो आर्थिक कार्यों में राज्य हस्तक्षेप की नीति अपनानी होगी । इस तरह ऐसी पृष्ठभूमि बनने लगी जिसमें योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था और राज्य की सकारात्मक भूमिका स्पष्ट होने लगी। हेयक ने इस परिस्थिति का गम्भीर अवलोकन किया और तदयुगीन सोच के विपरीत अपने विचारों को प्रस्तुत कर समीक्षकों का ध्यान आकृष्ट कर लिया।

हेयक का नूतन दृष्टिकोण बाजार अर्थव्यवस्था के समर्थन पर आधारित है। उन्होंने स्पष्ट किया कि राज्य निर्देशित अर्थव्यवस्था व्यक्तियों के अव्यक्त ज्ञान का उतना उपयोग नहीं कर सकती, जितना बाजार अर्थव्यवस्था कर सकती है। हेयक ने कहा कि आर्थिक नियोजन की नीति को अपनाने से अन्ततः सर्वाधिकारवाद का मार्ग ही प्रशस्त होता है।

इसका तात्पर्य यह नहीं है कि हेयक शासकीय व्यवस्था का पूर्ण विरोधी है और समाज के निर्बल वर्ग के प्रति पूर्णतया संवेदनशील। वस्तुतः हेयक सरकारी गतिविधियों का वहीं तक समर्थक है जहॉ तक ये गतिविधियां विधि के शासन के अनुरूप हों। उसके अनुसार राज्य को प्रमुख रूप से दो कार्य करने चाहिए। प्रथम बाजार अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत प्रतियोगिता को बढ़ावा देना चाहिये और द्वितीय बाजार प्रणाली के बाहर उन आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रयास करना चाहिए जिन्हें बाजार व्यवस्था से पूरा नहीं किया जा सकता जैसे लोगों के लिये न्यूनतम आय का प्रबन्ध करना।

हेयक ने बाजार अर्थव्यवस्था के प्रति पूर्ण प्रतिबद्धता प्रदर्शित करते हुये लिखा है कि सरकार को बाजार प्रणाली के बाहर सुरक्षा जाल की व्यवस्था करनी चाहिए। इस तरह उसने सामाजिक सेवाओं की व्यवस्था को बाजार प्रणाली से पृथक किया। हेयक बाजार का वितरण मूलक न्याय का साधन नहीं बनाना चाहते थे। उनके अनुसार सामाजिक न्याय के आदर्श को बाजार व्यवस्था के अन्तर्गत नहीं प्राप्त किया जा सकता।

स्पष्ट है कि हेयक चिरसम्मत उदारवाद (Classical liberalism) या नकारात्मक उदारवाद (Negative liberalism) के पक्षानुमोदक हैं। इस तरह

के दृष्टिकोण रखने की प्रमुख वजह यह है कि नकारात्मक उदारवाद के अन्तर्गत बल प्रयोग की सम्भावना नगण्य हो जाती है। और नागरिकों को अपेक्षाकृत भौतिक लाभ अधिक प्राप्त होते हैं। हेयक का उदाहरण वस्तुतः सकारात्मक उदारवाद से एकदम भिन्न है। वह नकारात्मक उदारवाद की तरफ रूझान रखते हुये उससे आगे बढ़कर इच्छा स्वतंत्रवाद का प्रतिनिधित्व करता है। उसकी धारणा में न्यूनतम राज्य, व्यक्ति की स्वतंत्रता व उसके अधिकार और आर्थिक क्षेत्र में व्यक्ति के अधिकाधिक पहल की भावना विद्यमान है। हेयक के मत में उदारवाद वह सिद्धान्त है जो सरकार की बल प्रयोगमूलक शक्तियों को न्यूनतम मात्रा तक सीमित रखने पर बल देता है।

1.4 स्वतंत्रता विषयक विचार

हेयक के राजनीतिक विचारों में स्वतंत्रता की संकल्पना का महत्वपूर्ण स्थान है। हेयक के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को व्यक्तिगत स्वतंत्रता का आश्वस्त क्षेत्र प्राप्त है, जिसमें दूसरे व्यक्ति हस्तक्षेप नहीं कर सकते। विकल्प के तत्व को निर्णायक के रूप में मानना चाहिए। किसी पर्वतीय दुर्गम पथ पर चढ़ने वाला व्यक्ति जो अपनी प्राण रक्षा का एक ही रास्ता देखता है, निश्चित रूप में स्वतंत्र है। यद्यपि भले ही हम कहें कि उसके पास कोई दूसरा विकल्प नही है। हेयक के अनुसार मनुष्य को स्वतंत्रता तब प्राप्त होती है जब वह किसी दूसरे की मनमानी इच्छा (Arbitrary will) के द्वारा बाध्य न किया जाये। दूसरे शब्दों में हेयक के अनुसार व्यक्ति वास्तव में तभी स्वतंत्र है जब वह किसी नियंत्रण के अधीन न हो, किसी दबाव या नियंत्रण का तात्पर्य है दूसरों की मनमानी इच्छा के अधीन होना हेयक व्यक्ति के दमनका विरोधी है उसके अनुसार किसी दूसरे के प्रयोजन के लिए जब दूसरे की इच्छानुसार काम करना पड़ता है तब दमन होता है। दूसरे शब्दों में 'दमन का निहितार्थ ही है दमनकर्ता के संकेतानुसार काम करना। जब कोई व्यक्ति अपनी इच्छानुसार कार्य करने की धमकी देता है तब दमन की घटना होती है। इस तरह हेयक जिस तरह की स्वतंत्रता का पक्ष लेता है उसे वैयक्तिक स्वतंत्रता (Individual freedom) कहा जाता है। यही वैयक्तिक स्वतंत्रता उसके उदारवाद का आधार है। इसे अधिक स्पष्ट करने के लिये हेयक ने वैयक्तिक स्वतंत्रता को राजनीतिक स्वतंत्रता, आंतरिक स्वतंत्रता और शक्ति रूपी स्वतंत्रता से पृथक किया है।

हेयक के अनुसार राजनीतिक स्वतंत्रता (Political Freedom) सरकार के चयन, विधि निर्माता की प्रक्रिया और प्रशासनिक नियंत्रण की दृष्टि से लोगों की भागीदारी की मांग करती है। इस तरह की स्वतंत्रता लोकतंत्र का आधार भी है। किन्तु हेयक के अनुसार यह वैयक्तिक स्वतंत्रता के लिये न तो पर्याप्त है और न उसकी आवश्यक शर्त है। क्योंकि गैर लोकतंत्रीय व्यवस्था अनुमति मूलक (Permissive) भी हो सकती है। और इसके विपरीत एक लोकतंत्रीय व्यवस्था प्रतिबन्ध मूलक (Restrictive) भी हो सकती है।

हेयक के अनुसार आंतरिक स्वतंत्रता (Inner Freedom) नैतिकता से सम्बद्ध है। इसका दूसरों के द्वारा विवश किये जाने से कोई सम्बन्ध नहीं है। इस तरह की स्वतंत्रता इस बात की मॉग करती है। कि व्यक्ति अपने कार्यों में क्षणिक आवेग, उद्विग्नता या किसी परिस्थिति का वर्षवर्ती न होकर सुविचारित इच्छा (Considered will) से मार्ग दर्शन प्राप्त करे।

अन्ततः हेयक ने वैयक्तिक स्वतंत्रता को शक्तिरूपी स्वतंत्रता (Freedom as power) से भी भिन्न बताया है। उसके अनुसार शक्ति रूपी स्वतंत्रता व्यक्ति की अपनी कार्यशक्ति (Power to act) पर आधारित है, दूसरों के अहस्तक्षेप से इसका कोई भी सम्बन्ध नहीं होता। इस तरह की स्वतंत्रता यह मांग करती है कि व्यक्ति अपनी आकांक्षा को पूरा करने में सक्षम हो – वह अनेक विकल्पों में से अपनी पसन्द का रास्ता चुन लें।

हेयक ने जिस तरह के स्वतंत्रता विषयक दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया है उससे स्पष्ट होता है कि वह समष्टिवादी दृष्टिकोण से पूरी तरह असहमत है। समष्टिवादी राज्य नियंत्रण का समर्थन करते हैं और एक ऐसी सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था का निर्माण चाहते हैं जिसमें उत्पादन और वितरण के साधनों का राष्ट्रीयकरण हो जिसके परिणाम स्वरूप प्रत्येक व्यक्ति को अपनी प्रारम्भिक आवश्यकता पूरा करने का अवसर मिल सके तथा व्यक्ति द्वारा व्यक्ति का शोषण न हो सके। हेयक के अनुसार स्वतंत्रता के सम्बन्ध में समष्टिवादी दृष्टिकोण उचित नहीं है क्योंकि इसके अन्तर्गत कानूनी नियंत्रण व्यापक होगा और इसके चलते व्यक्ति की असली स्वतंत्रता नष्ट हो जायेगी। स्पष्ट है हेयक ने स्वतंत्रता को प्रतिबन्ध के अभाव (Absence of restraint) के रूप में देखा है।

1.5 स्वतंत्रता के समर्थन में तर्क

हेयक की मान्यता है कि आज ज्ञान का अत्यधिक विस्तार हुआ है, परन्तु यह केन्द्रित न होकर विकेन्द्रित है– असंख्य मनुष्यों तक विस्तीर्ण है। उसके अनुसार विश्व में ज्ञान का आधिक्य जितना होगा उस अनुपात में किसी एक व्यक्ति के ज्ञान का अंश उतना अल्प होगा। इस तरह किसी दूसरे के निर्णय या इच्छा के सम्मुख नतमस्तक होना उसके आधे अधूरे ज्ञान को अपने जीवन का आदर्श बना लेना है, जो उचित नहीं है। इसलिये अच्छा होगा कि सारे लोग अपने लिये अपने अपने ज्ञान का प्रयोग करें ताकि समस्त मानवीय गतिविधियां सहज स्वाभाविक ढंग से आपस में समायोजित हो सकें। अपनी धारणा की पुष्टि के लिये हेयक ने यह तर्क भी दिया है कि यदि एक ही केन्द्र से सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था का निर्देशन होगा तो वह संगठनकर्ता के सीमित ज्ञान पर आधारित होगा, जो उचित नहीं है। अन्ततः हेयक स्वतंत्रता के पक्ष में यह तर्क भी देता है कि इससे प्रतिस्पर्धा बढ़ती है। प्रतिस्पर्धा बढ़ने से योग्यता का सर्वोत्तम प्रयोग होता है और इससे समाज लाभान्वित होता है।

1.6 स्वतंत्रता के महत्व का प्रतिपादन

हेयक ने वैयक्तिक स्वतंत्रता की महत्ता का प्रतिपादन समाज की भौतिक और सांस्कृतिक प्रगति को ध्यान में रखकर किया है उसकी दृष्टि में समाज की प्रगति व्यक्ति की गरिमा से भी अधिक महत्वपूर्ण है। प्रगति मानवीय बुद्धि के अनवरत प्रयोग की प्रक्रिया से प्रदान होती है और इस प्रक्रिया में नये–नये विचार आते और लुप्त होते रहते हैं। प्रगति का तात्पर्य निश्चित लक्ष्य की ओर बढ़ना नहीं है क्योंकि इन लक्ष्यों में निरन्तर बदलाव आते रहते हैं और ये बदलाव विचारों के बदलाव से होते हैं। इस तरह वैयक्तिक स्वतंत्रता का सम्बन्ध व्यक्ति के उन्नयन से अधिक समाज के उन्नयन से है।

1.7 स्वतंत्रता और समानता के सम्बन्ध

हेयक ने स्वतंत्रता और समानता के बीच सम्बन्ध के प्रश्न पर भी विचार किया है तथा दोनों में सामंजस्यशीलता का अभाव पाया है। वह स्वतंत्रता के समान वितरण में विश्वास नहीं करता। उसके अनुसार समाज में किसी विशेष स्वतंत्रता का मूल्यांकन व्यक्तियों की संख्या को ध्यान में रखकर

न किया जाकर इस बात को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए कि वह स्वतंत्रता स्वयं कितनी मूल्यवान है। उसके अनुसार जिस तरह यह उचित माना जाता है कि समाज में कोई स्वतंत्र न हो इससे अच्छा यह है कि कुछ लोग तो स्वतंत्र हों, उसी प्रकार सबको थोड़ी थोड़ी स्वतंत्रता प्रदान करने से अच्छा यह माना जाता है कि कुछ लोगों को पूरी स्वतंत्रता मिले, भले ही बाकी लोग उससे वंचित हो जॉय।

इस प्रकार स्वतंत्रता के महत्व के मूल्यांकन का आधार यह नहीं है कि वह कितने व्यक्तियों को प्राप्त है बल्कि यह है कि वह स्वतंत्रता सभ्यता को कितने ऊपर तक ले जाती है। हेयक ने व्यक्तियों के महत्व का प्रतिपादन सामाजिक प्रगति के साधन के रूप में किया है न कि साक्ष्य के रूप में। स्पश्ट है कि हेयक ने स्वतंत्रता और समानता को परस्पर पूरक मानने से मना कर दिया। अपने विख्यात ग्रन्थ दि कांस्टीट्यूशन आफ लिबर्टी (पृष्ठ 87) में उन्होंने लिखा है कि ''इस तथ्य में से कि लोग एक दूसरे से बहुत भिन्न हैं। यह अर्थ निकलता है कि यदि हम उन्हें समान समझते है। तो इसका परिणाम होगा उनकी वास्तविक स्थिति में समानता और उन्हें समान स्थिति में रखने का एकमात्र उपचार होगा उनके साथ भिन्न ढंग का व्यवहार करना।

1.8 राज्य के कार्य विषयक विचार

हेयक राज्य की न्यूनतम सम्भव गतिविधि की कामना करते हैं ताकि व्यक्तिगत स्वतंत्रता अधिकाधिक रूप में सम्भव हो सके। उसके अनुसार राज्य को मुख्य रूप से दो कार्य करने चाहिये। प्रथम उसे बाजार व्यवस्था के अन्तर्गत प्रतियोगिता को बढ़ावा देना चाहिए ताकि प्रत्येक व्यक्ति अपनी–अपनी योग्यता का सर्वोत्तम प्रयोग करके समाज को उसका लाभ पहॅुचा सकें। द्वितीय राज्य को बाजार व्यवस्था के बाहर उन आवश्यकताओं को पूरा करना चाहिए, जिन्हें बाजार प्रणाली पूरा नहीं कर पाती जैसे सबके लिये न्यूनतम आय की व्यवस्था करना। हेयक के अनुसार राज्य को बल प्रयोग का सहारा लिये बगैर कुछ सेवा कार्य करने चाहिये क्योंकि व्यक्तियों की समस्त आवष्यकताओं को बाजार व्यवस्था के माध्यम से पूरा नहीं किया जा सकता। ध्यातव्य बात यह है कि हेयक यह नहीं चाहता है कि राज्य ऐसे कानून बनाये जिसे बाजार व्यवस्था वितरणात्मक न्याय प्रदान करने में सहयोग कर सकें।

1.9 सारांश

आलोचकों का हेयक पर प्रमुख आरोप यह है कि उसने वैयक्तिक स्वतंत्रता के लिये नियोजन की जिस तरह से आलोचना की है उससे प्रतिस्पर्धा बढ़ती है और इस तरह खोखली स्वतंत्रता की ही प्राप्ति हो सकती है। उसके विचारों में निहित नकारात्मक स्वतंत्रता विशयक दर्षिटकोण को व्यापक समर्थन इसलिये प्राप्त नहीं हो सका क्योंकि यह माना जाता है कि सार्वजनिक कल्याण की प्राप्ति के लिये प्रतिबन्ध अनिवार्य होते हैं। हेयक ने स्वतंत्रता और समानता को परस्पर पूरक न मानकर गम्भीर भूल की है। वास्तविकता तो यही है कि दोनों संकल्पनाओं का मानव के व्यक्तित्व के साथ गहरा सम्बन्ध है। वर्तमान युग यह सहन करने को तैयार नहीं है कि स्वतंत्रता तथा उसके साथ समानता केवल कुलीनों के संसार तक सीमित रहे। दोनों में संघर्ष नहीं है न वे भिन्न हैं बल्कि एक ही आदर्श के दो पहलू हैं।

क्रिश्चियन वे के अनुसार हेयक निर्बल की आवश्यकताओं की तुलना में बलशाली की मांगों को प्राथमिकता देता है। इस तरह वह विशेष वर्गहित का विशेष अधिवक्ता है। आलोचकों का यह भी कहना है कि हेयक ने वैयक्तिक स्वतंत्रता के मार्ग में फासीवाद, साम्यवाद और उदारसमाजवाद को बाधक माना है। इसी तरह हेयक यह बताने में विफल रहा है कि उदार समाजवादी अथवा कीन्स द्वारा बताये नियंत्रणों और नियोज के बिना सामाजिक सुरक्षा की प्राप्ति कैसे की जा सकती है। जार्ज हैल्म का कहना है कि हेयक ने कल्याणकारी राज्य के संस्थापकों की कुछ नीतियों की जो आलोचना की है उससे सहमति तो व्यक्त की जा सकती है। परन्तु उसने सामाजिक सुरक्षा की प्राप्ति अथवा बेकारी को रोकने का कोई वैकल्पिक कार्यक्रम नहीं दिया वस्तुतः बाजार तंत्र में हस्तक्षेप किये बिना राज्य सामाजिक सेवायें कैसे प्रदान करेगा? इस सम्बन्ध में उसने कोई ठोस योजना प्रस्तुत नहीं की है। उसके चितंन में कहीं कहीं सुसंगति का अभाव भी है और कहीं–कहीं समुचित व्याख्या की समस्या भी है। इसके बावजूद हेयक यह स्पष्ट करने में सफल रहा है कि 19वीं शताब्दी के अहस्तक्षेपवादी सिद्धान्त को आज की परिवर्तित परिस्थितियों में क्रियान्वित करना अव्यवहारिक है। वह इस तथ्य को भी स्पष्ट करने में सफल रहा है कि आर्थिक गतिविधियों के सामान्य उतार–चढ़ाव से उत्पन्न विपुल बेरोजगारी की समस्या का निराकरण अति आवश्यक है। उसके दृष्टिकोण में विद्यमान सामाजिक सुरक्षा का भाव प्रशंसनीय है।

निष्कर्षतः वयैक्तिक स्वतंत्रता के प्रचंड पोषक हेयक ने उसकी प्राप्ति का कोई ठोस आधार प्रदान करने में सफलता नहीं प्राप्त की है। इसके बावजूद समकालीन युग में षास्त्रीय उदारवाद के प्रति पुनः चिंतन के प्रति उसने महत्वपूर्ण जागरूकता पैदा की है।

1.10 उपयोगी पुस्तकें

1. जौहरी, जगदीश चन्द्र : आधुनिक राजनीति विज्ञान के सिद्धान्त, स्टर्लिंग पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1992.
2. गाबा, ओ0पी0 : राजनीतिक चिन्तन की रूपरेखा मयूर पेपर बैक्स नोयडा, 2010.
3. जैन, एम0 पी0 : आधुनिक राजनीति के सिद्धान्त आथर्स मिल्ड पब्लिकेशन्स दिल्ली, 1988.
4. संधु, ज्ञान सिंह : राजनीति सिद्धान्त हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय
5. सिंह, एस0 पी0 एन0 : अर्वाचीन राजनीतिक चिन्तन मिश्रा ट्रेडिंग कार्पोरेशन वाराणसी, 2001
6. त्रिपाठी, एस0 एम0 : समकालीन राजनीतिक चिन्तन राज पब्लिकेशन्स नई दिल्ली, 2011
7. Coldwell Bruce : Hayek's Trnasformation in History of Political Economy,
8. Caldwell Bruce : Hayek and Socialism
9. Birner Jack : The mind body problem and social evolution.
10. Caldwell Bruce : Hayek's challenge: An Intellectual Biography.
11. Edelman G. : Neural Darvinism

12. Muller Jerry : The mind and the Market : Capitalism in Western thought
13. Hayek F.A. : The Fortunes of Liberalism
14. Hayek F.A. ; The Trend of Economic Thinking.
15. Hayek F.A. : New Studies in Philosophy, Politics and Economics.
16. Hampton, Jean : Political Philosophy (Oxford University Press, 1988)
17. Rawls, John : A theory of Justice (Harvard University Press) 1972.
18. F.A. Hayel : The Constituton of Liberty.

1.11 सम्बन्धित प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. हेयक ने स्वतंत्रता के कितने प्रकार बताये हैं? उसने वैयक्तिक स्वतंत्रता का समर्थन क्यों किया?
2. स्वतंत्रतावाद क्या है? हेयक को स्वतंत्रता का विचारक क्यों माना जाता है?
3. हेयक ने बाजार अर्थव्यवस्था का समर्थन क्यों किया? उसके अनुसार राज्य के प्रमुख कार्य कौन से है?

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. हेयक ने कीन्स के आर्थिक सिद्धान्त को क्यों अस्वीकार किया?
2. हेयक और समष्टिवादी विचारकों में प्रमुख अन्तर बताइये।
3. स्वतंत्रता के पक्ष में हेयक के प्रमुख तर्क कौन से हैं?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. स्वतंत्रतावाद मुख्यतया निम्नलिखित से सम्बन्धित हैं –

   अ– समतावाद से   ब– सामाजिक न्याय से

स– कल्याणकारिता से   द– स्वतंत्रता से

2. हेयक के प्रमुख आलोचकों में से कौन नहीं है?

अ– क्रिश्चियन वे   ब– जार्ज हैल्म

स– हरमन फाइनर   द– ग्रीन

3. निम्नलिखित में हेयक किसकी परम्परा में नहीं है –

अ– मिल्टन   ब– जेम्स मेडिसन

स– लार्ड एक्टन   द– हर्बर्ट स्पेन्सर

4. हेयक के बारे में क्या सही नहीं है –

अ– हेयक ने वैयक्तिक स्वतंत्रता को महत्व दिया

ब– हेयक ने केन्सीय आर्थिक नीतियों का समर्थन किया

स– फाइनर ने हेयक के ग्रन्थ 'रोड टू सर्फडम' को रोड टू रियक्शन का खिताब दिया।

द– क्रिश्चियन वे ने हेयक की पुस्तक 'दि कांस्टीट्यूशन ऑफ लिबर्टी के बारे में कहा है कि इसके द्वारा हेयक ने चिंतन की बंद प्रणाली की नींव रखी।

1.12 प्रश्नोंत्तर

1. द   2. द   3. अ   4. ब

इकाई–02 जॉन रॉल्स

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 जीवन परिचय

2.3 रॉल्स का उद्देश्य

2.4 रॉल्स के चिन्तन का आधार

2.5 मूल स्थिति विषयक विचार

2.6 रॉल्स का न्याय सिद्धान्त

2.7 रॉल्स का सामाजिक न्याय

2.8 रॉल्स द्वारा शुद्ध प्रक्रियात्मक न्याय का समर्थन

2.9 मूल संरचना विषयक विचार

2.10 रॉल्स का न्यायपूर्ण समाज

2.11 अन्तर्राष्ट्रीय समाज विषयक विचार

2.12 रॉल्स के न्याय सिद्धान्त की विशेषतायें

2.13 सारांश

2.14 उपयोगी पुस्तकें

2.15 सम्बन्धित प्रश्न

2.16 प्रश्नोत्तर

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप –

- जॉन रॉल्स के जीवन पर टिप्पणी कर सकेंगे।
- रॉल्स के न्याय सिद्धान्त की जानकारी कर सकेंगे।

- न्यायपूर्ण समाज के बारे में रॉल्स का दृष्टिकोण जान सकेंगे।
- रॉल्स के शुद्ध प्रक्रियात्मक न्याय की जानकारी कर सकेंगें।
- रॉल्स के न्याय सिद्धान्त की विशेषतायें स्पष्ट कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

उदारवादी विचारधारा के अन्तर्गत रॉल्स जिस धारा का प्रतिनिधित्व करता है उसे समतावाद (Egalitarianism) कहा जा सकता है। यह दृष्टिकोण एफ0 ए0 हेयक के दृष्टिकोण से इसलिये भिन्न है क्योंकि हेयक ने मुख्यतः ऐसे व्यक्ति के लिये उन्नति के अवसरों पर बल दिया जो स्वतः समर्थ, क्षमतावान और साधन सम्पन्न थे जबकि रॉल्स ऐसे व्यक्ति के विकास के लिये प्रयत्नशील था, जो अभावग्रस्त विपन्न और साधनहीन थे।

समतावाद एक ऐसी उदारवादी धारा है जो स्वतंत्रता और समानता में सामंजस्य स्थापित करना चाहती है। इसके अन्तर्गत सम्पन्न के साथ–साथ विपन्न को भी आत्मविकास का उपयुक्त अवसर प्रदान करने की भावना है। इसकी मान्यता है कि जिस समाज में अभावग्रस्त लोग अमानवीय जीवन जीने के लिये विवष हों उसमें सम्पन्न लोगों को व्यक्तिगत उन्नति और सुख–समृद्धि प्राप्त करने की असीमित स्वतंत्रता भले कैसे दी जा सकती है, भले ही वे इसके लिये प्रत्यक्षतः उत्तरदायी न हों। इस धारा के प्रमुख विचारकों में सी0 बी0 मैकफर्सन और जॉन राल्स हैं, जो समाज के सभी सदस्यों को एक श्रृंखला की कड़ियॉ मानते हैं।

रॉल्स का न्याय विषयक चिंतन उस परिस्थिति में आरम्भ हुआ जब संयुक्त राज्य अमेरिका में अश्वेत जो अल्पसंख्यक थे के लिये समान अधिकारों की मांग तीव्रता से उठ रही थी। उस समय पूँजीवाद जन्य परिस्थितियों में उत्पन्न वैषम्यता के प्रतिकार के लिये आमूल परिवर्तनकारी तीव्र राजनीतिक कार्यवाही की मांग कर रहे थे। राजनीतिक चिंतन के क्षेत्र में बुद्धिजीवी वर्ग राजनीतिक सिद्धान्त के समापन को लेकर आशंकित था। आइजिया बर्लिन ने 1961 में कहा था कि अमेरिका और ब्रिटेन में यह मान्यता बल पकड़ती जा रही थी कि राजनीतिक दर्षन में कोई गम्भीर रचना सामने भी नहीं आ रही

थी राल्स का चिन्तन और लेखन उपर्युक्त धारणाओं और आषंकाओं के निवारण का गम्भीर प्रयास था।

2.2 जीवन परिचय

जॉन बोर्डले रॉल्स का जन्म 21 फरवरी 1921 को मैरीलैण्ड के बाल्टीमोर (Baltimore) नामक स्थान पर हुआ था। उनके पिता का नाम विलियम ली रॉल्स (William Lee Rawls) और माँ का नाम अन्ना अबेल स्टम्प (Anna Abell Stump) था। स्नातक होने के बाद 1943 में वे थल सेना में सम्मिलित हो गये और न्यूगिनी फिलीपीन्स व जापान भी गये। 1946 में उन्होंने सेना की नौकरी छोड़ दी उनका विवाह 1949 में मार्गरेट फाक्स (Margaret Fox) से हुआ। सेना से हटकर उन्होंने अपना ध्यान पुनः अध ययन पर केन्द्रित किया। वर्ष 1950 से 1960 तक राल्स ने कार्नेल विश्वविद्यालय में अध्यापन किया। उसके बाद 1962 में वे हावर्ड विश्वविद्यालय में प्रोफेसर नियुक्त हुये, जहॉ वे 40 वर्ष तक रहे। हृदय की गम्भीर बीमारी से ग्रस्त रॉल्स का निधन 24 नवम्बर 1995 में हुआ।

रॉल्स पर आइजिया बर्लिन (Isha Berlin), कॉट और एच0 एल0 हार्ट (H.L. Hart) जैसे विचारकों का गम्भीर प्रभाव पड़ा। राल्स ने ए थ्योरी आफ जस्टिस (1970), पोलिटिकल लिबरलिज्म (1993) जैसी पुस्तकें लिखीं। उनके कलेक्टेड पेपर्स का प्रकाशन 1999 में हुआ। इसके अतिरिक्त उनके लेक्चर्स ऑन दि हिस्ट्री ऑफ मॉरल फिलासफी का प्रकाशन वर्ष 2000 में और जस्टिस एज फेयरनेस : ए रिस्टेटमेंट का प्रकाशन 2001 में हुआ।

रॉल्स का चिन्तन उपयोगितावाद की आलोचना से आरम्भ होता है किन्तु उन्होंने बहुलवाद जिसे उन्होंने प्रज्ञावाद कहा, की भी आलोचना की है। प्रज्ञावाद को उन्होंने नैतिकता के आधार पर असफल माना है। राल्स उपयोगितावाद के प्रखर आलोचक रहे हैं। राल्स के अनुसार उपयोगितावाद में बहुसंख्यकों के हित के लिये अल्पसंख्यकों का बलिदान किया जाता है। राल्स के अनुसार उपयोगितावाद के अन्तर्गत केवल कुछ ही व्यक्तियों के साथ समान वितरण और व्यवहार किया जा सकता है, जो न्याय सम्मत नहीं कहा जा सकता। राल्स की मान्यता है कि बहुसंख्यक की अधिकतम सन्तुष्टि के

लिए न तो किसी अन्य के स्वतंत्रता की उपेक्षा की जा सकती है और न उसके दावेदारी को नकारा जा सकता है। वस्तुतः न्याय का तात्पर्य होता है सभी के साथ समान व्यवहार व वितरण की व्यवस्था करना।

2.3 रॉल्स का उद्‌देश्य

रॉल्स का उद्‌देश्य ऐसे सिद्धान्त का विकास करना था जिसके द्वारा हम समाज के मूल ढॉचे को समझ सकें और यह जान सकें कि समाज की प्रमुख संस्थायें कैसे अधिकारों और कर्तव्यों का वितरण करती है और कैसे सामाजिक सहयोग से होने वाले लाभ का वितरण होता है। राल्स का मंतव्य उदारवादी व्यवस्था को बनाये रखते हुये बिना हिंसक साधनों की ओर अग्रसर हुये सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिये प्रक्रियात्मक सिद्धान्त प्रस्तुत करना था।

2.4 रॉल्स के चिन्तन का आधार

न्याय की सर्वमान्यता की प्राप्ति के लिये रॉल्स ने संविदा सिद्धान्त का अनुसरण किया है। रॉल्स चाहता है कि हम सोंचे की सामाजिक संरचना के मूल सिद्धान्त के बारे में प्रारम्भिक सहमति क्या रही होगी। रॉल्स के अनुसार हम इस प्रश्न पर विचार करें कि यदि व्यक्तियों को उनके वर्तमान सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों से अलग कर दिया जाय और समाज में विद्यमान भेद–भाव के ज्ञान से भी पृथक कर दिया जाय तो वे भावी समाज में अपने हितों की अधिकतम वृद्धि के लिए सामाजिक जीवन के सिद्धान्तों और संस्थाओं का किस प्रकार पुननिर्माण करेंगे। रॉल्स इस विषय पर विचार करने को प्रेरित करता है कि लोगों ने सामाजिक सहयोग के आधार पर उन सिद्धान्तों की रचना कैसे की होगी जिनके आधार पर अधिकारों व कर्त्तव्यों का वितरण किया गया और सामाजिक लाभ का विभाजन हुआ। संविदा सिद्धान्त के माध्यम से रॉल्स उन परिस्थितियों का निर्माण करता है जो एक न्यायपूर्ण सहमति के लिए आवश्यक है फिर वह स्पष्ट करने का प्रयत्न करता है कि इन परिस्थितियों में विवेकपूर्ण लोग अपनी बुद्धि का प्रयोग करके निश्चित रूप से मान्य सिद्धान्तों तक पहुंच जायेंगे।

2.5 मूल स्थिति विषयक विचार

संविदा सिद्धान्त के समर्थकों नें जिस तरह प्राकृतिक अवस्था की कल्पना की है उसी तरह रॉल्स ने मूल स्थिति (Original Position) की कल्पना की है। अन्तर इतना अवश्य है कि जहां हाब्स जैसे विचारकों ने प्राकृतिक अवस्था के मानव को असभ्य व बर्बर माना है वहां रॉल्स के चिंतन का मानव विवेकशील है। राल्स द्वारा कतिपय मनुष्य अज्ञान के पर्दे (Veil of Ignorance) के पीछे बैठे हैं। इस काल्पनिक स्थिति में मनुष्य अपनी आवश्यकताओं, हितों व निपुणताओं से बेपरवाह है। वे न पूर्वाग्रह ग्रस्त हैं, न अहंवादी हैं न ईर्ष्यालु हैं और न उन्हें परस्पर विरोध की जानकारी हैं। इस अवस्था में उन्हें मानव के आर्थिक और मनोवैज्ञानिक पक्ष का आरम्भिक ज्ञान होता है और न्याय प्राप्ति की इच्छा होती है। न्याय के नियमों का पता लगाने के उद्देश्य से वे एकत्र हुये हैं ताकि परस्पर सहमति पर पहुँच सकें। इस मूल स्थिति में मानव अपने स्वार्थ पूर्ति की अपेक्षा प्राथमिक सामाजिक वस्तुओं – सम्पत्ति, स्वतंत्रता, आय–शक्ति व आत्म सम्मान में अपनी भागेदारी चाहता है। अज्ञान के पर्दे के पीछे होने के कारण वे किसी तरह का दॉव लगाने का जोखिम भी नहीं उठा सकते। अतः विकल्प की स्थिति में सर्वाधिक कम हानिप्रद रास्ता अपनाते हैं।

इस तरह राल्स की दृष्टि में समान परिस्थिति में न्याय विषयक सिद्धान्त निष्पक्ष समझौते के परिणाम होंगे तथा प्रत्येक व्यक्ति के पारस्परिक सम्बन्ध समान होंगे। स्पष्ट है संविदावादी विचारक जिस तरह सभ्य समाज की प्राप्ति के लिये समझौता करते हैं उसी तरह रॉल्स की मूल स्थिति में व्यक्ति न्याय के सिद्धान्तों की प्राप्ति की कामना करते हैं। इस स्थिति में प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह उचित होगा कि वे परस्पर मिलकर न्यायपूर्ण व्यवस्था का निर्धारण करें।

2.6 रॉल्स का न्याय सिद्धान्त

मूल स्थिति विषयक पृष्ठभूमि के आलोक में रॉल्स कहता है कि इस स्थिति के मनुश्य जिस सामाजिक व्यवस्था का चयन करेंगे उसके दो मुख्य सिद्धान्त हैं –

1. समान स्वतंत्रता का सिद्धान्त (The Principle of equal liberty) अर्थात प्रत्येक व्यक्ति को सर्वाधिक बुनियादी स्वतंत्रता का समान अधिकार होना चाहिए और यही अधिकार सभी व्यक्तियों को प्राप्त होना चाहिए।

2. समान अधिकारों की स्वीकृति के बावजूद सामाजिक व्यवस्था में वैषम्यता की सम्भाव्यता है। इस सम्बन्ध में रॉल्स कहता है कि सामाजिक और आर्थिक असमानताओं को इस रूप में व्यवस्थित किया जाय कि –

(अ) न्यूनतम सुविधा प्राप्त लोगों को सर्वाधिक लाभ मिले, और

(ब) अवसर की निष्पक्ष समानता के अन्तर्गत सभी के लिये पद और दर्जे खुले हों।

रॉल्स की मान्यता है कि इन सिद्धान्तों को एक निश्चित प्राथमिकता में रखना चाहिए। सिद्धान्त (1) को (2) से प्राथमिकता देनी चाहिए और सिद्धान्त (2) के अन्तर्गत धारा (ब) को (अ) से प्राथमिकता देनी चाहिए। तात्पर्य यह है कि समान स्वतंत्रता का सिद्धान्त 'असमानता के लाभों विषयक दूसरे सिद्धान्त से अधिक महत्वपूर्ण हैं। पुनः दूसरे, सिद्धान्त के दो उपसिद्धान्तों में 'अवसर की निष्पक्ष समानता का सिद्धान्त' 'भेदमूलक सिद्धान्त' से अधिक महत्वपूर्ण है अर्थात् अवसर की निष्पक्ष समानता का आदर्श प्राप्त हो जाने पर ही न्यूनतम सुविधा प्राप्त लोगों के अधिकतम लाभ की व्यवस्था की जानी चाहिए। स्पष्ट है उसने अपने न्याय सिद्धान्त में केवल उन्हीं विषमताओं का समर्थन किया है जो न्यूनतम सुविधा प्राप्त लोगों के लिए लाभप्रद हो। इस सम्बन्ध में रॉल्स ने व्यवस्था दी है कि विशेष योग्यता वाले व्यक्ति विशेष पुरस्कार के पात्र केवल तब होंगे जब वे अपनी योग्यता का प्रयोग न्यूनतम सुविधा प्राप्त लोगों के कल्याण के लिये करेंगें।

रॉल्स का न्याय विषयक प्रथम सिद्धान्त स्पष्ट करता है कि मूल स्वतंत्रतायें समान और व्यापकतम होनी चाहिए। मूल स्वतंत्रताओं का तात्पर्य नागरिकता की स्वतंत्रताओं से है इनमें राजनीतिक स्वतंत्रतायें (जैसे मत देने की स्वतंत्रता व निर्वाचित होने की स्वतंत्रता आदि) भाषण और सभा करने की स्वतंत्रता, चिन्तन की स्वतंत्रता, मनमाने ढंग से बन्दी बनाने या सामान जब्त करने के विरूद्ध स्वतंत्रतायें सम्मिलित हैं। इस तरह की स्वतंत्रतायें समाज के प्रत्येक व्यक्ति को समान रूप से प्राप्त होनी चाहिए। राल्स के अनुसार समान

स्वतंत्रताओं में कमी केवल सभ्यता की दशाओं में वृद्धि करने के लिए ही मान्य हो सकती है।

रॉल्स के दूसरे सिद्धान्त के प्रथम उप सिद्धान्त को विभिन्नता का सिद्धान्त कहा जाता है। यह सिद्धान्त सम्पत्ति और शक्ति के समान वितरण की बात तो नहीं कहता परन्तु इसकी कामना है कि सभी असमानतायें कमजोर वर्गों को सर्वाधिक लाभ पहुँचाये। इसके अनुसार असमान वितरण का उद्देश्य समाज के न्यूनतम सुविधा प्राप्त लोगों को सर्वाधिक लाभ पहुंचाना होना चाहिए।

दूसरे सिद्धान्त के दूसरे उपसिद्धान्त को अवसर की निष्पक्ष समानता का सिद्धान्त कहा गया है। इसका आशय है कि समाज में यह देखे बिना कि उसका क्या स्थान है या वह किस आर्थिक वर्ग का है पद प्राप्ति के लिये उसे समान अवसर मिलना चाहिए। राल्स का यह दृष्टिकोण योग्यता आधारित समाज (Meritocratic society) की व्यवस्था से भिन्न है, क्योंकि मेरिटोक्रेटिक सोसायटी में केवल बुद्धिमान व्यक्तियों को ही उच्च पद प्राप्ति का मौका मिल पाता है और उन्हीं लोगों के पास आर्थिक व राजनीतिक शक्ति का केन्द्रण होता है।

2.7 राल्स का सामाजिक न्याय

न्याय को सुधार का आचारशास्त्र (Ethics of Redressal) बनाने वाले, रॉल्स के अनुसार अतीत में जो लोग सामाजिक व्यवस्था के चलते अभावग्रस्त हो गये हैं, न्यायरूपी साधन उसकी प्राप्ति करता है। उसने प्रक्रियात्मक न्याय का पक्षानुमोदन भी इसीलिये किया ताकि सामाजिक न्याय के लक्ष्य की पूर्ति की जा सके। उसके अनुसार न्याय की प्रक्रिया निर्धारित करते समय सामाजिक न्याय के लक्ष्य को ध्यान में रखना चाहिए। रॉल्स के मंतव्य में विशेष प्रतिभाशाली लोग जब अपनी प्रतिभा का प्रयोग हीनतम व्यक्तियों के कल्याणार्थ करेंगे तभी उन्हें विशेष पुरस्कार का अधिकारी माना जा सकेगा। इसके अतिरिक्त राल्स ने श्रृंखला सम्बन्ध (Chain connection) के उदाहरण द्वारा सर्वाधिक कमजोर कड़ी को सशक्त बनाने का सुझाव दिया है। इस तरह राल्स ने अपने विचारों से सामाजिक न्याय का समर्थन किया है।

2.8 राल्स द्वारा शुद्ध प्रक्रियात्मक न्याय का समर्थन

रॉल्स ने तीन प्रकार के प्रक्रियात्मक न्याय का समर्थन किया है। ये हैं– पूर्ण प्रक्रियात्मक न्याय, अपूर्णप्रक्रियात्मक न्याय और शुद्ध प्रक्रियात्मक न्याय।

(क) पूर्ण प्रक्रियात्मक न्याय (Perfect Procedural justice) ऐसी परिस्थितियों में होना है जहॉ वस्तुओं के उपयुक्त वितरण के स्वाधीन मानदण्ड के साथ साथ ऐसी प्रक्रिया होती है जिससे निष्पक्षता सुनिश्चित की जा सके। जैसे केक के समान व निष्पक्ष वितरण के लिए केक काटने वाले को अंतिम टुकड़ा मिलने की विधि अपनायी जाय।

(ख) अपूर्ण प्रक्रियात्मक न्याय (Imperfect Procedural Justice) ऐसी स्थिति में होता है, जहॉ उपयुक्त वितरण का स्वाधीन मानदण्ड तो होता है किन्तु ऐसी विधि उपलब्ध नहीं होती जिससे यह परिणाम प्राप्त करना सुनिश्चित हो। इस तरह इस विधि में अपेक्षित परिणाम प्राप्त करने की सम्भावना मात्र ही होती है।

(ग) शुद्ध प्रक्रियात्मक न्याय (Pure Procedural Justice) के अन्तर्गत निष्पक्ष नतीजे का स्वतंत्र आधार तो नहीं होता, परन्तु केवल निष्पक्ष विधियों और प्रक्रियाओं का आधार अवश्य होता है। रॉल्स ने प्रक्रियात्मक न्याय के विवेचन के पश्चात यह स्पष्ट किया है कि सामाजिक न्याय का स्वरूप विषुद्धतः प्रक्रियात्मक होता है। उसने अपने न्याय सिद्धान्त के विवेचन में केवल वितरण की प्रक्रिया को न्यायसंगत बनाने का प्रयास किया है, न कि कोई पूर्व निर्धारित परिणाम पर पहुॅचने की चेष्टा की है। उसके विचार में मूल स्थिति के मानव योग्यता के अनुसार वितरण या आवश्यकता के अनुसार वितरण की व्यवस्था से परिचित नहीं थें। अतः उसने शुद्ध प्रक्रियात्मक न्याय का समर्थन किया। उसकी धारणा थी कि यदि वितरण निष्पक्ष प्रक्रिया के आधार पर है तो वह अवश्य न्याय पूर्ण है।

शुद्ध प्रक्रियात्मक न्याय के विचार को व्यावहारिक रूप प्रदान करने के लिए उसने एक ऐसे संस्थात्मक ढांचे का चित्र खींचा है जो आधारभूत न्याय (Background Justice) प्रदान करने में सहायक होगा। इसके अन्तर्गत उसने

हस्तान्तरण शाखा (Transfer Branch) की स्थापना का सुझाव दिया ताकि न्यूनतम सामाजिक आवश्यकताओं की व्यवस्था हो सके। इसी तरह एकाधिकार के निर्माण को रोकने वाली शाखा की स्थापना का भी सुझाव दिया। इस दिशा में उसने अन्य शाखाओं का निर्माण का भी सुझाव दिया जिससे युद्ध प्रक्रियात्मक न्याय की व्यवस्था अपनायी जा सके।

2.9 मूल संरचना विषयक विचार

मूल संरचना का आशय उस पद्धति से है, जिससे एक व्यवस्था के अन्तर्गत प्रमुख सामाजिक संस्थायें एक साथ व्यवस्थित होती हैं और व्यक्तियों के मौलिक अधिकार व कर्तव्य तय किये जाते हैं और लाभों के विभाजन को स्वरूप प्रदान किया जाता है। राल्स ने मूल संरचना के अन्तर्गत संविधान, न्यायिक व्यवस्था और सामाजिक आर्थिक व्यवस्था से सम्बद्ध संस्थाओं को सम्मिलित किया है। रॉल्स ने मूलसंरचना को इसलिए महत्व दिया है क्योंकि इसी से न्याय संगत दशायें सुरक्षित रहती हैं। राल्स ने इन्हें प्राथमिक विषय कहा है।

2.10 रॉल्स का न्यायपूर्ण समाज

रॉल्स अपने प्रथम सिद्धान्त द्वारा एक ऐसे न्याय पूर्ण समाज की परिकल्पना करता है, जिसमें राजनीतिक और बौद्धिक स्वतंत्रता से युक्त एक समतामूलक समाज होगा। वह बाजार व्यवस्था का समर्थक होने के बावजूद असमानता को सीमित रखने के लिए राज्य के हस्तक्षेप की वकालत करता है ताकि सामाजिक सुधार किये जा सके। रॉल्स द्वारा कल्पित समाज में राजनीतिक प्रक्रिया में सबकी समान भागेदारी होगी और उनके मतों का मूल्य भी बराबर होगा। इस व्यवस्था में बने कानून न्यायपूर्ण होंगे और सबको विचाराभिव्यक्ति चिंतन और अंतरात्म की स्वतंत्रता होगी।

इन स्वतंत्रताओं पर समाज के हितार्थ दो तरह के प्रतिबन्ध होंगे। एक समाज की सम्पूर्ण व्यवस्था को और पुष्ट करने के लिये तथा दूसरी समाज को सम्पन्नता के उस वांछित स्तर तक पहुंचाने के लिये जहाँ स्वतंत्रता का समुचित प्रयोग हो जाता है। वैसे कुल मिलाकर उसका मन्तव्य यही है कि राज्य व्यक्ति की मूल स्वतंत्रताओं में हस्तक्षेप नहीं करेंगा।

रॉल्स का दूसरा सिद्धान्त सम्पत्ति व आय के वितरण के सम्बन्ध में राज्य को बाजार में हस्तक्षेप का व्यापक अधिकार देता है। राज्य सबसे गरीब लोगों के हितार्थ टैक्स लगाने की भी व्यवस्था करता है। रॉल्स असमानता को नियंत्रित करने के लिये स्वतंत्रता के एक न्यायोचित स्तर और आत्म सम्मान पर बल देता है। आत्मसम्मान को वह हर हालत में बनाये रखना चाहता है। रॉल्स उन सभी प्रतिबन्धों का समर्थन करता है जिससे एक न्यायपूर्ण समान स्वतंत्रता तथा सबसे निचले वर्ग के आत्मसम्मान की रक्षा कर सके।

रॉल्स वर्तमान समाज में विद्यमान अन्याय के निवारणार्थ भी गम्भीर रूप से चिंतित है। इस सम्बन्ध में रॉल्स मूल संविदावादियों से अपेक्षा करता है कि वे न्याय हेतु प्राकृतिक कर्तव्य के सिद्धान्त पर सहमत होंगे। इस सिद्धान्त के अनुसार वे न्यायपूर्ण संस्थाओं का समर्थन करेंगे और जहॉ वे नहीं हैं, वहॉ उन्हें स्थापित कर अन्याय की समाप्ति हेतु प्रयत्नशील रहेंगे। रॉल्स ने इस सम्बन्ध में सविनय अवज्ञा का भी सुझाव दिया ताकि बहुसंख्यकों में न्याय बोध जागृत किया जा सके। इस तरह का सुझाव ऐसे समाज के लिये ठीक है जो न्याय के काफी नजदीक है, अन्यथा अन्याय पर आधारित समाजों में वह विरोध के अन्य तरीकों यहॉ तक कि हिंसा को भी औचित्यपूर्ण मानता है।

2.11 अन्तर्राष्ट्रीय समाज विषयक विचार

रॉल्स के अनुसार मूल संविदावादी, जो विभिन्न समाजों का प्रतिनिधित्व करते हैं पारस्परिक विवादों को हल करने के लिए मूल सिद्धान्तों का चयन करेंगे। विभिन्न समाजों के मध्य वितरणात्मक न्याय के सम्बन्ध में विचार व्यक्त करते हुए उसने कहा है कि समाज में आन्तरिक पुनर्वितरण के पश्चात बाह्य पुनर्वितरण पर ध्यान देना होगा। राल्स का भिन्नता विषयक सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर गरीबों की भावी अपेक्षाओं को पूरा करने में सहायक होगा। उसने गरीब व निर्धन देशों को अहिंसात्मक तरीके से सम्पत्ति के पुनर्वितरण का सुझाव दिया है। उसके अनुसार गरीब देशों के अधिकार धनी देशों के कर्तव्य की मांग करते हैं। उसके अनुसार यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि जो धन गरीब देशों को प्राप्त हो उसका आन्तरिक पुनर्वितरण वे गरीबों को लाभान्वित करने में करेंगे। इस सम्बन्ध में धनी देश गरीबों पर

इस तरह का दबाव बनाने के लिये स्वतंत्र हैं कि वे उस धन को अपने यहां के सर्वाधिक गरीब लोगों की भावी अपेक्षाओं को पूर्ण करने में लगायें। रॉल्स के अनुसार अगर गरीब देश धन का प्रयोग इस तरह से नहीं करते तो उनके विरूद्ध हस्तक्षेप भी किया जा सकता है, भले ही ऐसे राज्य अपनी सम्प्रभुता के उल्लंघन का तर्क दें।

2.12 रॉल्स के न्याय सिद्धान्त की विशेषतायें

रॉल्स के अनुसार न्याय समाज का प्रथम सद्गुण है। उसके अनुसार उत्तम माज में अनेक सदगुण अपेक्षित होते हैं, उनमें न्याय का स्थान सर्वप्रथम है। न्याय के नियम किसी समाज को जितनी दृढ़ता से बॉधते हैं उतनी दृढ़ता से अन्य नैतिक गुण नहीं बांध सकते। उदाहरणार्थ परोपकार रूपी नैतिक गुण प्रशंसनीय हो सकता है, परन्तु किसी को परोपकार करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता, जबकि न्याय बाध्यकारी होता है – मनुष्यों को न्याय के नियमों का पालन करने के लिए विवश किया जा सकता है। उसके अनुसार सामाजिक उन्नति के कार्यक्रम में न्याय की उपेक्षा करना समाज को नैतिक पतन की ओर अग्रसर करना है। द्वितीयतः रॉल्स के न्याय में प्रक्रियात्मक न्याय और उसमें भी शुद्ध प्रक्रियात्मक न्याय का पक्षपोषण किया गया है। तृतीयतः रॉल्स के न्याय विषयक विचार का सम्बन्ध सामाजिक न्याय से है। हेयक और नोजिक के अनुसार समाज में उत्पादन के स्तर पर पैदा होने वाली विषमताओं को वितरण के स्तर पर बदलने का प्रयास नहीं होना चाहिए। वहीं राल्स इस दृष्टिकोण से सहमत नहीं हैं उसने स्पष्ट कर दिया है कि बाजार के नियमों को हमेशा न्याय के सिद्धान्तों के नियंत्रण में रहना चाहिये।

2.13 सारांश

रॉल्स के सिद्धान्त पर मार्क्सवादियों का प्रमुख आरोप यह है कि रॉल्स ने अपने न्याय सिद्धान्त को प्रतिपादित करने से पहले सामाजिक और आर्थिक पक्ष को ध्यान में नहीं रखा। उसने काल्पनिक मूल स्थिति में अज्ञान के पर्दे के पीछे रखकर सामाजिक और आर्थिक पक्ष की अनदेखी की है।

उदारवादी आलोचकों के अनुसार रॉल्स ने उदारवादी अधिकारों की मान्यता को अस्वीकार किया है।

स्वेच्छातंत्रवादियों के अनुसार रॉल्स ने समानता की चाह में स्वतंत्रता को बलिदान कर दिया है। सामाजिक न्याय की संस्थापना का दायित्व जब राज्यों का होगा तब उसके परिणामस्वरूप व्यक्ति की स्वतंत्रता खतरे में होगी। समष्टिवादियों का आरोप है कि रॉल्स परम्परागत उदारवादी, पूंजीवादी व्यवस्था के औचित्य को ही सिद्ध करना चाहता है। उसका कारण है कि धनवानों द्वारा धन का संचय करके स्वतंत्र जीवन व्यतीत करने से निर्धन लोगों को भी लाभ होगा। समुदायवादियों के अनुसार रॉल्स उत्तम जीवन की किसी भी संकल्पना को दूसरों से श्रेष्ठ या निकृष्ट मानने का दावा नहीं करता और नैतिक तटस्थता की नीति अपना कर शुभ को समर्पित जीवन प्रणाली अपनाने का अवसर खो देताहै।

रॉल्स का महत्व यह है कि उसने न्याय के विषय में कुछ मूलभूत प्रश्न उठाये और उनका समाधान करने का प्रयास किया। उसने सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिये न्याय की प्रक्रिया को प्रभावी बनाने का प्रयास किया। उसने सामाजिक न्याय के ज्वलन्त प्रश्न पर बल देकर सबल और निर्बल के मध्य बढ़ रहे अन्तर को कम करने का प्रयास किया है। रॉल्स ने कांटवादी मान्यता के साथ अपना चिंतन विकसित करके उदारवादी चिंतन में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

2.14 उपयोगी पुस्तकें

1. गाबा, ओ0पी0 : राजनीतिक चिन्तन की रूपरेखा
2. जैन, एम0 पी0 : आधुनिक राजनीति के सिद्धान्त
3. जौहरी जगदीश चन्द्र : आधुनिक राजनीति विज्ञान के सिद्धान्त,
4. सिंह, एस0 पी0 एन0 : अर्वाचीन राजनीतिक चिन्तन
5. त्रिपाठी, एस0 एम0 : समकालीन राजनीतिक चिन्तन
6. L. Wenar : “John Rawls”

7.	Vincent, Andrew	:	Modern Political Ideologies
8.	John C. Goodman	;	What is classical Liberalism
9.	Joseph L. Bast	:	A Guide to Classical-Liberal Think Tanks.
10.	Knowles, D.	:	Political Philosophy (Rouledge London 2004)
11.	Simmonds S.E.	:	Central issues in Jurisprudence justice, Law and Rights. (Eastern Book Company, 2003)
12.	Rawls, J.	:	A Theory of Justice (Clarendon Press Oxford, 1972)

2.15 सम्बन्धित प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. रॉल्स के न्याय सिद्धान्त को स्पष्ट कीजिए और उसके महत्व को बताइये?
2. रॉल्स द्वारा विवेचित शुद्ध प्रक्रियात्मक न्याय को स्पष्ट कीजिये।
3. रॉल्स के सामाजिक न्याय विषयक विचार को स्पष्ट कीजिए और उसके न्याय की विशेषताओं की विवेचना कीजिये।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. रॉल्स ने उपयोगितावाद की आलोचना क्यों की है?
2. 'मूल स्थिति' के बारे में रॉल्स के विचार स्पष्ट कीजिए।
3. रॉल्स अपने न्याय सिद्धान्त द्वारा किस प्रकार के न्याय पूर्ण समाज की विवेचना करता है?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. रॉल्स का मत है कि स्वतंत्रता पर केवल निम्नलिखित स्थिति में प्रतिबन्ध लगाया जा सकता है –

   अ– स्वतंत्रता की रक्षा की स्थिति में

   ब– समानता की रक्षा की स्थिति में

   स– राज्य की सुविधा की स्थिति में

   द– आपात अवस्था में।

2. रॉल्स किस तरह के प्रक्रियात्मक न्याय का समर्थक है –

   अ– पूर्ण प्रक्रियात्मक न्याय

   ब– अपूर्ण प्रक्रियात्मक न्याय

   स– शुद्ध प्रक्रियात्मक न्याय

   द– पूर्ण प्रक्रियात्मक न्याय और शुद्ध प्रक्रियात्मक न्याय

3. रॉल्स के बारे में क्या सही नहीं है –

   अ– उसने उपयोगितावाद की आलोचना की है।

   ब– उसने प्रज्ञावाद का समर्थन किया है।

   स– रॉल्स ने समान स्वतंत्रता के सिद्धान्त को अत्यधिक महत्व दिया है।

   द– रॉल्स ने सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिये प्रयास किया है।

2.16 प्रश्नोत्तर

1. अ 2. स 3. ब

इकाई–03 राबर्ट नोजिक

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 आरम्भिक जीवन एवं शिक्षा
3.3 राज्य विषयक विचार
3.4 न्यूनतम राज्य का समर्थन
3.5 व्यक्तिवाद का पोषण
3.6 नोजिक और न्याय सिद्धान्त
3.7 नोजिक और राल्स
3.8 नोजिक और मार्क्स
3.9 मूल्यांकन
3.10 उपयोगी पुस्तकें
3.11 सम्बन्धित प्रश्न
3.12 प्रश्नोत्तर

3.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप –

- राबर्ट नोजिक के जीवन पर टिप्पणी कर सकेंगे।
- राबर्ट नोजिक के न्याय सिद्धान्त को समझ सकेंगे।
- राबर्ट नोजिक और जॉन रॉल्स के विचारों में अन्तर कर सकेंगे।
- 'न्यूनतम राज्य' के बारे में नोजिक के विचार जान सकेंगें।

3.1 प्रस्तावना

राबर्ट नोजिक इच्छा स्वातंत्र्यवाद का श्रेष्ठतम आधुनिक समर्थक है। इच्छा स्वातंत्र्यवाद, व्यक्ति की स्वतंत्रताओं व उसके अधिकारों का प्रबल पोषण करता है। अपनी इसी मान्यता के चलते ऐसे विचारक, व्यक्ति को आर्थिक क्षेत्र में अधिकाधिक पहल की नीति का समर्थन करते हैं और न्यूनतमीय राज्य का पक्ष लेते हैं। इस तरह के इच्छा स्वातंत्र्यवादी दो तरह के हैं – हेयक जैसे परिणामवादी इच्छा स्वातंत्र्यवादी मानते हैं कि व्यक्ति द्वारा प्राप्त अधिकाधिक नागरिक व आर्थिक–राजनीतिक स्वतंत्रतायें समाज में अधिकतम लोकहित व कार्यकुशलता प्रदान करने वाली होती है जबकि दूसरी तरफ अधिकार इच्छा स्वातंत्र्यवादी मानते हैं कि समस्त वैयक्तिक व सरकारी गतिविधियां सहमति जन्य होनी चाहिए तथा किसी पर बल प्रयोग करना या सम्पत्ति से वंचित करना उसके अधिकारों सें उसे वंचित करना है। इस तरह उनके अनुसार उत्पीड़न घृणास्पद है।

3.2 प्रारम्भिक जीवन एवं शिक्षा

राबर्ट नोजिक का जन्म 16 नवम्बर 1938 को अमेरिका के ब्रुकलिन नामक स्थान पर हुआ। शिक्षा प्राप्ति के पश्चात् वे हावर्ड विश्वविद्यालय में अध्यापन करने लगे। शीघ्र ही उनकी प्रसिद्धि अमेरिका में सुप्रसिद्ध राजनीतिक दार्शनिक के रूप में होने लगी। वर्ष 1974 में उन्होंने रॉल्स की 'ए थ्योरी ऑफ जस्टिस' का उदारवादी उत्तर देने के लिये अपनी सुप्रसिद्ध रचना 'एनार्की स्टेट एण्ड यूटोपिया' का प्रकाशन किया।

लॉक की विचारधारा से विशेष रूप से प्रभावित राबर्ट नोजिक ने सम्पत्ति के अधिकार का सशक्त समर्थन किया है। अपनी इसी विशिष्ट धारणा के चलते उन्होंने न्यूनतम राज्य–शक्ति और न्यूनतम कर प्रणाली का पक्ष लिया तथा स्पष्ट किया कि राज्य के कल्याणकारी स्वरूप एवं पुनर्वितरण को शिथिल किया जाना चाहिए।

नोजिक के अनुसार वस्तुओं का वितरण अगर वयस्क लोगों की सहमति से हुआ हो और प्रारम्भ में विषमता न हो तो वह वितरण न्यायपूर्ण है, भले ही बाद में विषमता आ जाय। नोजिक ने काण्ट की भाँति व्यक्तियों को साधन न मानकर साध्य माना है। नोजिक ने दासता को भी उस समय उचित बनाया है। अगर कोई स्वेच्छा से स्वयं को बेच देता है। नोजिक ने उपयोगितावाद

को अनुचित बताया और राज्य के विस्तृत कार्यक्षेत्र का विरोध किया। निरपेक्ष न्याय का समर्थन करने वाले इस विचारक का स्वेच्छातंत्रवाद के विकास में विशिष्ट योगदान है।

नोजिक की प्रमुख कृतियाँ हैं – एनार्की, स्टेट एण्ड यूरोपिया (1974), फिलोसोफिकल एक्सप्लेनेशन (1981), दि एक्जामिंड लाइफ (1989), दि नेचर आफ रेशनेलिटी (1993) और सोक्रेटिक पजल्स (1997)

3.3 राज्य विषयक विचार

नोजिक ने राज्य के पूर्व प्राकृतिक अवस्था का अस्तित्व स्वीकार किया है। लॉक की तरह उसने यह बताने का प्रयास किया है कि प्राकृतिक अवस्था की अराजकता को छोड़कर विवेकशील व्यक्तियों ने सर्वसम्मति से राज्य रूपी संगठन का निर्माण किया। उसने प्राकृतिक अवस्था में व्यक्तियों के अधिकारों के रक्षार्थ समाज और राज्य के निर्माण के कारण को माना है। नोजिक ने इन अधिकारों में सम्पत्ति के अधिकार को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना है। नोजिक ने राज्य को एक निश्चित भू–भाग पर शक्ति का एकाधिकार रखने वाली संस्था माना है। उसने कहा है कि राज्य इन अधिकारों की रक्षा के लिये एक संरक्षक संस्था है। अतः राज्य दण्ड प्रतिरोध व सुरक्षा देने के लिए उत्तरदायी है। दूसरे शब्दों में राज्य एक निर्दिष्ट भू–भाग में बल प्रयोग का एकाधिकार रखने वाली संस्था है। इस तरह उसने पुलिस राज्य का समर्थन किया है।

3.4 न्यूनतम राज्य का समर्थन

राबर्ट नोजिक ने ए0 जे0 नाक (A.J.Nock), ओकशाट और फ्राइडमैन की तरह बीसवीं शताब्दी में सीमित राज्य का समर्थन किया है। नोजिक के अनुसार भले ही राज्य बाध्यकारी व हिंसा पर एकाधिकार रखने वाला एक प्रभावी संरक्षक समुदाय हो किन्तु वह व्यक्तियों के अधिकारों का हनन नहीं कर सकता। नोजिक ने तर्क दिया है कि अगर राज्य हस्तक्षेप कर किसी भी प्रकार से अधिकारों का पुनर्वितरण करता है, तो वह उन व्यक्तियों के अधिकारों का हनन होगा, जिनसे राज्य स्वयं अधिकार प्राप्त करता है। इस तरह नोजिक ने स्पष्ट किया है कि न्यूनतम या सीमित राज्य से अधिक किसी भी

राज्य की अवधारणा वैयक्तिक अधिकारों का हनन करती है और इसलिये अन्यायपूर्ण है। वस्तुतः नोजिक ने स्पष्ट किया है कि राज्य का कार्य सम्पत्ति की रक्षा करना है, न कि सम्पत्ति का पुनर्वितरण करना।

'सीमित राज्य' का विचार व्यक्ति की आत्म–निर्भरता, व्यक्तित्व विकास और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की दृष्टि से उपयुक्त है। वह व्यक्ति को साध्य मानता है। इसलिए राज्य द्वारा व्यक्तियों की स्वतंत्र गतिविधियों में हस्तक्षेप को अनुचित मानता है। नोजिक की मान्यता है कि व्यक्ति के अधिकारों का हनन किये बिना न्यूनतम–राज्य का अस्तित्व हो सकता है। जॉन लॉक ने सरकार को न्यास के रूप में देखा था। उसी तरह नोजिक भी राज्य की शक्ति की सीमा निर्धारित करता है। इस तरह उसने कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को अस्वीकार कर न्यूनतम राज्य की अवधारणा का समर्थन किया। वह न्यूनतम राज्य की धारणा को नैतिक दृष्टि से उपयुक्त मानता है।

3.5 व्यक्तिवाद का पोषण

नोजिक के विचारों में सत्रहवीं शताब्दी में उद्‌भूत व्यक्तिवाद को बचाने की लालसा प्रतिध्वनित होती है। उसके द्वारा प्राकृतिक अवस्था की विवेचना, संविदा के माध्यम से राज्य के औचित्य का तार्किक आधार खोजना, व्यक्तिगत सम्पत्ति के अधिकार को प्राकृतिक मानना और व्यक्ति को साध्य मानना जैसे कारणों से इस विचार की पुष्टि होती है।

परन्तु व्यक्तिवाद के पोषण के प्रयास में नोजिक अराजकतावाद के पथ पर अग्रसर नहीं होता। यह सही है कि अराजकतावादी मंतव्य में राज्य नहीं होगा और इस तरह व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकारों में कोई हस्तक्षेप भी नहीं हो सकेगा परन्तु अराजकतावादी दृष्टिकोण में व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा भी तो नहीं हो सकेगी। नोजिक ने इस तथ्य को समझते हुये अराजकतावाद से असहमति व्यक्त की और न्यूनतम राज्य की धारणा का प्रतिपादन कर व्यक्तिवाद के प्रति अपना झुकाव प्रदर्शित किया। नोजिक के मंतव्य में राज्य शक्ति वहीं तक ही विधि मान्य है जहां तक वह व्यक्तियों के अधिकारों की रक्षा में सहायक हो। नोजिक के अनुसार कराधान (Taxation) भी वहीं तक उचित है, जहॉ तक वह न्यूनतम राज्य का व्यय उठाने के लिये आवश्यक हो।

3.6 नोजिक का न्याय सिद्धान्त

नोजिक द्वारा प्रस्तुत न्याय सिद्धान्त 'एन्टाइटिलमेन्ट सिद्धान्त' के नाम से विख्यात है। इसका प्रतिपादन नोजिक ने रॉल्स के वितरणात्मक न्याय के विरोध स्वरूप किया है। इस सिद्धान्त के 3 महत्वपूर्ण अवयव हैं –

(1) भू–स्वामित्व प्राप्त करने में न्याय – न्याय सिद्धान्त के अनुसार भू–स्वामित्व प्राप्त करना।

(2) भू–स्वामित्व हस्तांतरण में न्याय – किसी भू–स्वामी से न्याय सिद्धान्त के आधार पर भूमि प्राप्त करना।

(3) अन्याय का निराकरण – अर्थात यदि किसी के पास उपर्युक्त विधियों के अलावा किसी अन्य विधि से भू–स्वामित्व प्राप्त है तो वह अन्यायपूर्ण है और उसका निदान आवश्यक है। इसके लिये उन परिस्थितियों को उत्पन्न करना होगा जिससे न्याय पूर्ण स्वामित्व व हस्तांतरण संभव हो सके।

इस सिद्धान्त द्वारा नोजिक ने स्पष्ट किया है कि सम्पत्ति दो तरह से प्राप्त की जा सकती है – (1) सम्पत्ति का अर्जन वैधानिक हो अर्थात उसके अर्जन में न किसी दूसरे के अधिकार का उल्लंघन हो और न ही अन्याय का कोई प्रयत्न हो और (2) वैध तरीके से अर्जित सम्पत्ति का वैध तरीके से हस्तांतरण हो अर्थात दो पक्षों में छल या बल के बिना सम्पत्ति का अधिग्रहण या हस्तांतरण हो। नोजिक के अनुसार इस तरह से अर्जित सम्पत्ति न्यायपूर्ण होती है। उसके अनुसार इस आधार पर सम्पत्ति के न्यायपूर्ण संचय से अगर आर्थिक विषमतायें भी पैदा होती है तो उन्हें भी न्यायपूर्ण मान लेना चाहिये। इस तरह नोजिक ने स्पष्ट किया है कि उत्पादन और अपनी इच्छा से किये गये हस्तांतरण के द्वारा उत्पन्न भेद–भाव को वितरण द्वारा बदलने का प्रयास अन्याय पूर्ण होगा।

इसके साथ ही नोजिक ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि अगर सम्पत्ति व संसाधनों का स्वामित्व मूलरूप में अधिग्रहण के न्यायपूर्ण सिद्धान्त के अनुरूप नहीं है तो उसका हस्तांतरण भी न्यायपूर्ण नहीं माना जा सकता। इस तरह प्रथम व द्वितीय सिद्धान्तों की अवहेलना से वर्तमान स्वामित्व का

स्वरूप अन्यायपूर्ण सिद्ध किया जा सकता है और तब ऐसी स्थिति में तीसरे सिद्धान्त को क्रियान्वित करने की आवश्यकता पड़ेगी, जो अन्यायपूर्ण स्वामित्व का समाधान चाहता है। नोजिक का मानना है कि इस आधार पर कुछ लोगों को प्रतीत हो सकता है कि उनकी स्वतंत्रता की अवहेलना हो रही है परन्तु इस तरह से सम्पत्ति में हस्तक्षेप अन्याय नहीं है। इसके साथ ही नोजिक ने यह भी स्पष्ट किया कि भले ही इस तरह का हस्तक्षेप अपरिहार्य व न्यायपूर्ण हो किन्तु इससे यह आशा करना ठीक नहीं कि वह सम्पत्ति व संसाधनों का समतापूर्ण वितरण करेगा।

नोजिक के इस सिद्धान्त में 'सम्पत्ति के अधिकार' की विद्यमानता अन्तर्निहित है। अतः सामाजिक न्याय के नाम पर किसी व्यक्ति से उसकी वस्तुओं या सेवाओं की मांग करना उचित नहीं है। निदर्शनार्थ किसी डाक्टर की सहमति के बिना उसे सेवायें प्रदान करने के लिये बाध्य करना अन्याय है। दूसरी तरफ अगर कोई डाक्टर भयंकर रोग के उपचारार्थ कोई औषधि खोज लेता है तब उसे उसकी मुंहमांगी कीमत लेने का अधिकार है।

नोजिक ने सम्पत्ति के इस अधिकार पर 'अस्तित्व' की मर्यादा अवश्य लगायी है। नोजिक की लॉक के समान यह मान्यता है कि किसी भी संसाधन का स्वामित्व ग्रहण करने से अगर सम्पूर्ण समाज पर संकट आ जाय या जीवन मरण का प्रश्न जुड़ जाय तब उसे नियंत्रित करना पड़ेगा जैसे किसी रेगिस्तान में पानी का एकमात्र स्रोत हो तब किसी का भी उस पर एकाधिकार नहीं स्वीकार किया जा सकता।

3.7 नोजिक और रॉल्स

दोनों अमेंरिकी विचारक है और समकालिक उदारवादी चिंतक। दोनों ने आर्थिक असमानता के औचित्य पर अपने न्याय सिद्धान्त को स्थापित किया है, दोनों विचारकों ने प्रक्रियात्मक पर बल दिया है। किन्तु दोनों विचारकों में अनेक अन्तर हैं–

1. नोजिक ने मुख्य रूप से साधन सम्पन्न लोगों की उन्नति के अवसरों पर बल दिया है, जबकि रॉल्स ने ऐसे व्यक्ति के उन्नयन का लक्ष्य सामने रखा जो निर्बल, विवष और विपन्न हैं।

2. नोजिक ने मुख्यतया स्वतंत्रता पर बल दिया है जबकि रॉल्स ने स्वतंत्रता और समानता में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया है।

3. नोजिक ने बुर्जुआ का प्रचण्ड पोषण किया है इसी आधार पर उसने रॉल्स द्वारा बुर्जआ समाज के कमजोर पक्षानुमोदन को चुनौती दी है।

4. नोजिक ने 'आर्थिक मनुष्य' की अवधारणा को स्वीकार किया है – अधिक धन प्राप्त करने के लिये अधिक काम करना। रॉल्स आर्थिक व सामाजिक वैषम्यता स्वीकार करते हुये निर्बल व विपन्न के पक्ष में हर्जाने की बात भी कहता है। नोजिक में सम्पत्ति के अधिकार के प्रति स्पष्ट प्रतिबद्धता है।

वस्तुतः नोजिक, रॉल्स के न्याय सिद्धान्त का प्रखर आलोचक है। नोजिक के विचार से रॉल्स का न्याय सिद्धान्त लोगों के अधिकारों का हनन करता है, अतः वह नैतिक नहीं है। उसकी दृष्टि में दूसरे विचारकों द्वारा प्रस्तुत न्याय सिद्धान्तों की भाँति ही रॉल्स का सिद्धान्त भी लोगों के हक (एन्टाइटिलमेन्ट) की अवहेलना करता है। इसी तरह नोजिक का मत है कि रॉल्स का विवरणात्मक सिद्धान्त समाजवाद का पथ प्रशस्त करता है। नोजिक को समाजवाद स्वीकार्य नहीं है। हम कह सकते हैं रॉल्स अपने न्याय की सर्वमान्यता के प्रति सजग है जबकि नोजिक उसके अति सरलीकरण के लिये इच्छुक।

3.8 नोजिक और मार्क्स

दोनों विचारक सर्वथा विपरीत विचारधारा से सम्बद्ध हैं, परन्तु दोनों ने अपने ढंग से व्यक्ति की महत्ता प्रतिपादित की है। मार्क्स ने इसके लिए राज्य विहीन समाज की परिकल्पना की है वहीं नोजिक ने न्यूनतम राज्य की अवधारणा का समर्थन किया है। मार्क्स बुर्जआ समाज के अन्त की तीव्र लालसा रखता है जबकि नोजिक उसका समर्थन करता है। वस्तुतः मार्क्स का अभीष्ट एक राज्य विहीन, वर्गविहीन समाज की स्थापना करना है जबकि नोजिक का दृष्टिकोण किसी समरसता पूर्ण समाज की स्थापना करना नहीं है।

3.9 मूल्यांकन

नोजिक के विचारों में कुछ प्रश्नों का उत्तर नहीं प्राप्त हो पाता, जैसे– वह यह नहीं स्पष्ट कर पाता कि 'मूल न्यायपूर्ण स्वामित्व' क्या है? जबकि मूल स्वामित्व प्राप्त करने की प्रक्रिया के आधार पर ही स्वामित्व को न्यायपूर्ण या अन्यायपूर्ण माना जा सकता है। इसी तरह नोजिक 'न्यायपूर्ण स्वामित्व' व 'न्यायपूर्ण हस्तांतरण' को स्पष्ट रूप से विवेचित नहीं करता और न ही यह बताता है कि न्याय पूर्ण स्वामित्व व हस्तांतरण के लिये उपयुक्त पात्र कौन हैं? नोजिक आय व सम्पत्ति के वितरण के लिये बाजार व्यवस्था को उपयुक्त मानता है। उसने व्यक्ति को साध्य बनाकर समाज की उपेक्षा की है। वह राज्य के लोक कल्याणकारी रूप की पूरी तरह अवहेलना करता है। वह न्यूनतम राज्य की अवधारणा का समर्थन करके बुर्जआ व्यक्तिवाद को बचाने के लिये प्रयत्नशील है।

इसके बावजूद नोजिक के विचारों में प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धान्त का प्रबल पोषण है, अराजकतावादियों के विरूद्ध प्रभावशाली तर्क है और राल्स के न्याय सिद्धान्त की बौद्धिक समीक्षा का गम्भीर प्रयास।

3.10 उपयोगी पुस्तकें

1. गाबा, ओ0पी0 : राजनीतिक चिन्तन की रूपरेखा (दरियागंज, नई दिल्ली)
2. संधु ज्ञान सिंह : राजनीति सिद्धान्त (हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय)
3. त्रिपाठी, एस0पी0एम0 : समकालीन राजनीतिक चिन्तन (राज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली 2011)
4. सिंह, एस0 पी0 एन0 : अर्वाचीन राजनीतिक चिन्तन (मिश्रा ट्रेडिंग कार्पोरेशन वाराणसी)

5. L. P. Baradat : Political ideologies (New Jersy, Prentice Hall 1979)

6. R.C. Vermani : An Introduction to Political Theory.

(Gitanjali publishing House, New Delhi)

7. John Dunn : Rethinking Modern Political Theory

(Cambridge University Press, 1985)

8. D.D.Rophael : Problems of Political Philosophy

(The Millinnium press Ltd. London)

9. Gotman : Liberal Equality (Cambridge University Press, 1986)

10. R.H. Tawney. : Equality (George Allen & Unwin London,1931)

11. Nozick, R. : Anarchy, State and Utopia, Basic Books New York, 1974.

3.11 सम्बन्धित प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. न्यूनतम राज्य के बारे में नोजिक के विचारों की विवेचना करें।
2. नोजिक के न्याय सिद्धान्त का आलोचनात्मक विवेचन करें।
3. ''व्यक्तिवादी विचारधारा के पोषक नोजिक रॉल्स और मार्क्स से स्पष्ट अन्तर रखते हैं''। स्पष्ट करें।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. नोजिक का प्रक्रियात्मक न्याय रॉल्स के प्रक्रियात्मक न्याय से भिन्न है। स्पष्ट करें।

2. राज्य के बारे में नोजिक के विचार क्या हैं? स्पष्ट करें।

3. नोजिक ने सम्पत्ति के अधकार का क्यों समर्थन किया?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. नोजिक के अनुसार व्यक्ति के अधिकार इसलिये प्राकृतिक होते है क्योंकि –

अ– वह समाज का सदस्य होता है

ब– वह व्यक्ति होता है

स– वह राजनीतिक कर्तव्यों का पालन करता है

द– वह सरकार की रचना में भाग लेता है।

2. स्वतंत्रतावादी निम्न प्रकार के प्रवक्ता हैं –

अ– स्वतंत्रता व समानता

ब– सम्पत्ति व स्वतंत्रता

स– स्वतंत्रता व बन्धुत्व

द– समानता और सम्पत्ति

3. निम्नलिखित में किसे दक्षिणपंथी स्वतंत्रतावादी बताया जाता है –

अ– नोजिक को

ब– हेयक को

स– रॉल्स को

द– डुवारकिन को

4. निम्नलिखित में से नोजिक के बारे में क्या सही नहीं है –

अ– नोजिक ने रॉल्स के न्याय सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया है।

ब– नोजिक अराजकतावाद से असहमत हैं।

स– नोजिक ने न्यूनतम राज्य का समर्थन किया है।

द– नोजिक कल्याणकारी राज्य की विचारधारा का प्रचंड समर्थक है

3.12 प्रश्नोत्तर

1. ब   2. ब   3. अ   4. द

MAPS-118
अर्वाचीन राजनीतिक सिद्धान्त

खण्ड
5
समुदायवाद एवं उत्तर आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त

इकाई - 1 — 5
चार्ल्स टेलर

इकाई -2 — 14
माइकल वाल्जर

इकाई -3 — 23
उत्तर-आधुनिकता एवं राजनीति

संरक्षक

प्रो० एम०पी० दुबे — कुलपति

प्रो० डी.पी. त्रिपाठी — कुलसचिव

पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड/विशेषज्ञ समिति)

डॉ० एम०एन० सिंह
निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज।

प्रो. संजय श्रीवास्तव
राजनीति विज्ञान विभाग
बी.एच.यू. वाराणसी

प्रो० एच०के० शर्मा
प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश

डॉ. के.डी. सिंह
राजनीति विज्ञान विभाग
हंडिया पी.जी. कालेज, इलाहाबाद

डॉ. दीपशिखा श्रीवास्तव
असि० प्रोफेसर (सं), राजनीतिक विज्ञान,
समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज।

पाठ्यक्रम लेखन

प्रो. संजय श्रीवास्तव
राजनीति विज्ञान विभाग
बी.एच.यू. वाराणसी
लेखक
खण्ड. 01
इकाई – 01, 02, 03

डॉ. ए.पी. सिंह
शैक्षणिक परामर्शदाता, राजनीतिक विज्ञान,
समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज।
लेखक
खण्ड. 02
इकाई – 01, 02, 03

डॉ. दीपशिखा श्रीवास्तव
असि० प्रोफेसर (सं), राजनीतिक विज्ञान,
समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज।
लेखक
खण्ड. 03
इकाई – 01, 02, 03

डॉ. के.डी. सिंह
राजनीति विज्ञान विभाग
हंडिया पी.जी. कालेज,, इलाहाबाद
लेखक
खण्ड. 04
इकाई – 01, 02, 03

प्रो० एच०के० शर्मा
प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश
लेखक
खण्ड. 05
इकाई – 01, 02, 03

डॉ. दीपशिखा श्रीवास्तव — **समन्वयक**

असि० प्रोफेसर (सं), राजनीतिक विज्ञान,
समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज।

संपादक

प्रो० एच०के० शर्मा — प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज– 2022

MAPS - 110 – अर्वाचीन राजनीतिक चिन्तन
ISBN:

सर्वाधिक सुरक्षित। इस सामग्री के किसी भी अंश को उत्तर प्रदेश राजर्षि टंडन मुक्त विश्वविद्याल की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में माइमोग्राफी (चक्रमुद्रण) द्वारा या किसी अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नही है।
उत्तर प्रदेश राजर्षि टंडन मुक्त विश्वविद्याल, प्रयागराज सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्यसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टंडन मुक्त विश्वविद्याल, की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।
नोट : पाठ्य सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आमडों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

खण्ड–5 : समुदायवाद एवं उत्तर आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त

खण्ड परिचय :

लोगों में विभिन्न मुद्दों पर असहमति रखना, राजनीति के अस्तित्व को जन्म देता है। लोगों के बीच यह असहमति – उन्हें कैसे रहना चाहिए, समाज में किसको कितना और कैसे प्राप्त होना चाहिए, शक्ति एवं संसाधनों के वितरण कैसे निर्धारित होने चाहिए, समाज का आधार सहयोग होना चाहिए या संघर्ष, समाज में व्यक्ति प्रभाव को व्यक्तिगत मान्यता मिलनी चाहिए या सामूहिक, तथा समाज एवं व्यक्ति के शुभ के लिए मूल्यों (समानता, स्वतंत्रता, न्याय इत्यादि) के निर्धारण के लिए कौन से मानक अपनाये जाएं इत्यादि जैसे मुद्दों पर रहती है। ये असहमतियां राजनीति को सदैव ऐसी सार्वजनिक संवाद की गतिविधि बना देती है, जिसमें मानव सदैव अपने शुभ को प्राप्त करने तथा अपने जीवन को उच्चतर बनाने के साथ–साथ एक अच्छे समाज निर्माण का भी प्रयत्न करता रहता है।

लोग जिन सामान्य नियमों के तहत रहते हैं, उपरोक्त लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु इन नियमों एवं मानकों में संरक्षण व सुधार दोनों गतिविधियां अपनाते हैं। मानव की यही गतिविधियां राजनीति चिंतन में नवीन सिद्धान्तों विचारधाराओं व प्रवृत्तियों को जन्म देती है। स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुत्व फ्रांसीसी क्रान्ति के नारे थे, जिससे राजनीति में उदारवाद एवं मार्क्सवाद जैसे चिंतन का जन्म हुआ जो व्यक्ति की स्वतंत्रता एवं समानता पर बल दिया जो, कालान्तर में अनेक आधुनिक राजनीतिक विचारों जैसे – पूंजीवाद, साम्यवाद, आधुनिकता, अलगाववाद, नारीवाद इत्यादि का आधार बना। उपरोक्त विचारों की कुछ कमियों के चलते समतावाद एवं स्वच्छन्दतावाद जैसे राजनीतिक चिन्तन अस्तित्व में आया। परन्तु उपरोक्त चिंतन में भी कुछ सामुदायिक मूल्यों की उपेक्षा करने तथा अतिशय आधुनिकीकरण के कारण मूल्यों की सार्वभौमिकता अपनाये जाने के कारण समुदायवाद एवं उत्तर आधुनिकता जैसी प्रवृत्तियों का जन्म हुआ।

प्रस्तुत खण्ड की इकाई 1 व 2 में राजनीतिक चिंतन की एक प्रवृत्ति के रूप में समुदायवाद की विवेचना की गई है। इसमें समुदायवाद के सामान्य परिचय के साथ–साथ कनाडाई राजनीतिक दार्शनिक चार्ल्स टेलर एवं अमरीकी राजनीतिक दार्शनिक माइकल वाल्जर के विचारों की संक्षिप्त रूप–रेखा प्रस्तुत की गई है।

1960 का दशक आते–आते धीरे–धीरे यूरोप में आधुनिकता की असीमित प्रगति की धारणा से लोगों का विश्वास डिगने लगा और लोग उपभोक्तावादी संस्कृति एवं सार्वभौम मानकीकरण से ऊब कर अपने सोचने के तरीकों को बदलने लगे जिससे उत्तर–आधुनिकता की मनोवृत्ति का राजनीति चिंतन में प्रचलन हुआ, जो पहचान,असमानता, लिंग आधारित, सहभागिता एवं मुक्ति की राजनीति पर बल देने के साथ–साथ सार्वभौमिकता एवं उन्नति की सततता को नकारते हुए समाज सापेक्ष मूल्यों एवं सन्दर्भ सापेक्ष व्याख्या

इकाई–01 चार्ल्स टेलर

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 समुदायवाद का अर्थ एवं सामान्य परिचय

1.3 चार्ल्स टेलर : परिचय

1.4 चार्ल्स टेलर के समुदायवादी के रूप में उनका राजनीतिक चिंतन

1.5 सारांश

1.6 उपयोगी पुस्तकें

1.7 सम्बन्धित प्रश्न

1.8 प्रश्नोत्तर

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप –

- समुदायवाद की धारणा व राजनीति में उसकी प्रवृत्तियों को समझ सकेंगे।
- राजनीति में व्यक्ति व समाज के हितों के प्रति उदारवादी एवं समुदायवादी दृष्टिकोणों को समझ सकेंगे।
- चार्ल्स टेलर के राजनीतिक चिंतन की संक्षिप्त रूपरेखा जानने के अलावा समुदायवाद की कुछ कमियों को जान सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

मनुष्य एक सामाजिक एवं राजनीतिक प्राणी होता है तथा न चाहते हुए भी उसका अपने समाज समुदाय व उसके सांस्कृतिक वातावरण से घनिष्ठ रूप से सम्बन्ध जुड़ जाता है। व्यक्ति का यही जुड़ाव अपने समाज के प्रति सम्मान व निश्ठा का भाव उसमें उत्पन्न करता है। व्यक्ति की समाज के प्रति निष्ठा एवं व्यक्ति के विकास में समाज के महत्व देने की परम्परा ग्रीक चिंतन से ही प्रारम्भ होती है, जिसे आदर्शवादियों, स्वप्नलौकिक समाजवादियों तथा मार्क्सवादियों ने बढ़ाया परन्तु 'समुदाय' के महत्व को राजनीति विज्ञान में एक सैद्धान्तिक प्रवृत्ति के रूप में समुदायवादियों ने प्रचलित किया। अपने वास्तविक अर्थों में

समुदायवाद 1980 के दशक में एक विचार सम्प्रदाय के रूप में, एलेस्डेयर मैकिंटाइर (Alasdair Mac Intyre), माइकल सैंडेल (Michael Sandel), चार्ल्स टेलर (Charles Taylor), तथा माइकल वाल्जर (Michael Walzer) के नेतृत्व में उभरा।

1.2 समुदायवाद का अर्थ एवं सामान्य परिचय

'समुदायवाद' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 1840 के दशक में गुडविन बारम्बी ने किया था। यह कोई विचारधारा नहीं है, बल्कि एक सैद्धान्तिक प्रवृत्ति है, जो राजनीतिक जीवन में समुदाय के महत्व को प्राथमिकता देती है। इसकी मूल मान्यता है कि व्यक्ति अपने अस्तित्व के लिए समाज पर निर्भर है। व्यक्ति अपने अस्तित्व के लिए ऐसी सामाजिक स्थिति, भूमिकाओं व प्रथाओं पर निर्भर है जो समाज की देन होती है, जिनके प्रति प्रतिबद्धता उसके व्यक्तित्व का आवश्यक अंग है। अतः यह व्यक्ति के अस्तित्व व उसकी क्षमता के बारे में उदारवादी धारणा का खण्डन करता है, जो यह मानता है कि व्यक्ति अपने लक्ष्यों को स्वयं निर्धारित कर सकता है तथा उसकी पूर्ति के लिए समाज या अन्य व्यक्तियों के प्रति ऋणी नहीं है।

उदारवाद या व्यक्तिवाद व्यक्ति की स्वतंत्रता, व्यक्तिगत अधिकार तथा हितों को प्राथमिकता देता है। जबकि समुदायवाद सामान्य हित को सर्वोपरि मानते हुए समुदाय के प्रति दायित्व व कर्त्तव्यों तथा समाज द्वारा निर्धारित मूल्यों व मान्यताओं के पालन पर बल देता है। अतः, समुदायवादी न्यूनतम राज्य की अवधारणा या तटस्थ राज्य की अवधारणा का खण्डन करते हुए नागरिक समाज की संस्थाओं की स्थापना व उन्हें बनाये रखने में राज्य की सक्रिय भागीदारी की मांग करते हैं।

समुदायवाद स्वयं कोई विचारधारा नहीं है, परन्तु इसकी सैद्धान्तिक प्रवृत्तियों को अनेक विचारधारात्मक परम्पराओं में अपनाया गया है। इसके वामपंथी प्रारूप में समुदाय को अनियंत्रित स्वतंत्रता और सामाजिक समानता के विशेषणों से सम्बन्धित किया जाता है, जैसे अराजकतावाद एवं स्वप्नलौकिक समाजवाद। समुदायवाद का मुख्य प्रारूप, इसे ऐसे समाज से जोड़ता है, जहां व्यक्ति समुदाय के लोगों के पारस्परिक अधिकारों एवं दायित्वों के प्रति सजग रहता है, जैसे सामाजिक लोकतंत्र। दक्षिणपंथी प्रारूप में समुदायवाद को 'समाज में स्थापित सत्ता व मूल्यों के प्रति सम्मान' के रूप में देखा जाता है, जैसे –फासीवाद एवं नवरूढ़िवाद ।

इस प्रकार 20वीं शताब्दी के अन्त में उभरा समुदायवाद, सामाजिक कर्तव्यों तथा नैतिक दायित्व इत्यादि पर बल देकर अरस्तू के 'सामान्य शुभ की राजनीति' (Politics of Common Good) पर बल देता है। यह समाज में 'अहस्तक्षेप की राजनीति' (Politics of laissez-faire) का खण्डन कर समाज में विखण्डन व प्रतिस्पर्द्धा के बजाय एकीकरण का प्रयास है। परन्तु समुदायवाद के आलोचक इसे रूढ़िवादी तथा सत्तावादी दोनों मानते हैं। इसे रूढ़िवादी इस अर्थ में कहा जाता है क्योंकि यह विद्यमान सामाजिक संगठनों व नैतिक नियमों को बनाये रखते हुए उनकी दुहाई देता है। अधिकरों की अपेक्षा दायित्वों पर ज्यादा बल देने के कारण इस पर सत्तावादी होने का आरोप भी लगाया जाता है ।

1.3 चार्ल्स टेलर : परिचय

चार्ल्स टेलर जिनका पूरा नाम चार्ल्स मारग्रेव टेलर (1931 –) है, जो एक महान कनाडाई राजनीतिक दार्शनिक हैं अपने 'आधुनिक आत्म के विश्लेषण' (Examination of modern self), उदारवादियों – स्वच्छंदतावादियों की समीक्षा तथा समुदाय के विचारों को प्राथमिकता देने के कारण इनको एक प्रसिद्ध समुदावादी विचारक कहा जाता है। इनकी प्रसिद्ध पुस्तक Sources of the self : The Making of the Modern Identity (1989) है।

1.4 चार्ल्स टेलर : समुदावादी चिंतन

चार्ल्स टेलर के चिंतन का केन्द्र बिन्दु समुदाय एवं संस्कृति के महत्व को सार्वजनिक जीवन में स्थापित करना है, जिसे स्वच्छन्दतावाद एवं समतावाद, अपने सार्वभौमिक सिद्धान्तों के द्वारा निरन्तर इसके महत्व को कम करते जा रहे हैं, जिससे समाज असहिष्णुता, स्वार्थ एवं विघटन जैसे बुरे मूल्यों का प्रसार हो रहा है।

अन्य समुदायवादियों की भांति चार्ल्स टेलर का भी 'समुदाय' से तात्पर्य क्षेत्र विशेष एवं संस्कृति विशेष के प्रति आस्था रखने वाले लोगों के समूहों से है, जहाँ लोग पैदा होते हैं, पालन–पोषण पाते हैं तथा एक सामाजीकरण के द्वारा कुछ निश्चित मूल्यों व आस्थाओं के प्रति लगाव रखते हैं। समुदाय के सदस्यों में एक मनोवैज्ञानिक एकता की भावना पायी जाती है, जिससे उनके बीच परस्पर विश्वास, सहयोग, परोपकार (परार्थभाव) तथा उभयनिष्ठ कार्यों में सहभागिता करके एक सहभागी लक्ष्य को प्राप्त करने की भावना होती है। समुदाय की यही भावना लोगों में एक इतिहास एवं सामुदायिक

हितों की प्राप्ति के लिए व्यक्ति को प्रेरित करता है। ऐसे में व्यक्ति समाज से अलग अपने स्व संकल्प (Self determination) को कैसे पूरा कर सकता है? इसी को स्पष्ट करते हुए चार्ल्स टेलर 'आत्म का विश्लेषण' तथा 'सोसल थीसिस' की अवधारणा देते हैं।

1.4.1 'आत्म' का अवधारणा (Concept of Self)

'आत्म' की अवधारणा 'स्व संकल्प' (Self Determination) से जुड़ी हुई है, जो हमें बताती है कि हमें अपने जीवन के साथ क्या करना है तथा कैसे निर्णय लेना है। उदारवाद 'आत्म' के निर्धारण में समाज के कर्ज को व्यक्ति के ऊपर नहीं थोपता। इसके अनुसार व्यक्ति किसी भी सामाजिक व्यवहार व परम्परा को अपनी इच्छा अनुसार ही अपनाता है। उसके शुभ की प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि उसे चयन की पूर्ण स्वतंत्रता मिले क्योंकि आत्म उन लक्ष्यों से पहले आता है, जिसकी पुष्टि इसके द्वारा की जाती हैं। व्यक्ति अस्तित्ववान सामाजिक व्यवहारों (आर्थिक, धार्मिक, सेक्सुअल या मनोरंजन) में अपनी भागीदारी पर सवाल खड़ा करने के लिए स्वतंत्र हैं। व्यक्ति अपने उद्‌देष्य व सामाजिक भूमिकाएं तय करते समय, अन्य व्यक्तियों या समाज के प्रति उत्तरदायी नहीं हैं। व्यक्ति को प्राप्त अधिक से अधिक स्वतंत्रता तथा राज्य से कम से कम हस्तक्षेप उसके व्यक्तित्व के विकास में महत्वपूर्ण है।

अन्य समुदायवादियों की भॉति चार्ल्स टेलर, 'आत्म' के इस उदारवादी दृष्टिकोण को गलत मानते हैं। उनके अनुसार 'आत्म' अस्तित्वमान सामाजिक व्यवहारों से अलग नहीं हो सकता, बल्कि वह उसमें समाहित होता है। मनुष्य सामाजिक व्यवहारों को मानने के लिए बाध्य होता है, वह उससे पीछे नहीं हट सकता तथा यही व्यक्ति की सामाजिक भूमिकाएं एवं सम्बन्ध तय करते हैं। आत्म निर्धारण इन सामाजिक भूमिकाओं के भीतर ही संभव है। अतः टेलर उदारवाद के अधिकारवादी एवं स्वच्छन्दतावादी आत्म की आलोचना करते हुए कहते हैं –

''पूर्ण आजादी शून्य होगी, जिसमें कुछ भी सार्थक करने के लिए नहीं होगा, कोई भी चीज किसी गणना की हकदार नहीं होगी। सभी बाहरी बाधाओं और अतिक्रमणों को एक तरफ हटाकर जो आत्म आजादी तक पहुँचता है, वह गुणनिरपेक्ष होता है। इसलिए इसका कोई परिभाषित उद्‌देश्य नहीं होता है।''

चार्ल्स टेलर के अनुसार 'आत्म' की सच्ची आजादी सामाजिक वातावरण में स्थित होना चाहिए, क्योंकि सामाजिक स्थिति के सभी पहलू में तार्किक

आत्म निर्णय से समाज में अराजकता व्याप्त हो जायेंगी क्योंकि सामाजिक मूल्यों के बिना हमारे लक्ष्यों में न तो स्थायित्व होगा न ही हमारी सृजनशीलता के लिए कोई प्रेरणास्रोत। उदारवाद की यह अवधारणा कि 'अधिक से अधिक स्वतंत्रता जीवन को अधिक से अधिक मूल्यवान बनायेगी', जिंदगी में गहराई व चरित्र नहीं प्रदान कर सकता। अतः व्यक्ति पूरी तरह समाज से भारमुक्त जीवन का अनुभव नहीं कर सकता। टेलर के अनुसार व्यक्ति की आत्म अवधारणा वह नहीं है, जिसे एकाकी रूप में प्राप्त किया जा सके बल्कि अपने अनुभव के लिए यह दूसरे की पहचान पर निर्भर है। व्यक्ति स्वयं को समय, स्थान, संस्कृति, भाषा, पर्यावरण, क्षेत्र इत्यादि के आधार पर परिभाषित करता है। इसीलिए टेलर सामाजिक वातावरण' को आत्म के निर्धारण में 'मजबूत निर्धारक' (Strong evaluator) कहते हैं। टेलर के अनुसार इन्हीं तत्वोंकी अवहेलना के कारण पाश्चात्य समाज के सार्वजनिक जीवन में विशेष पहचान (लिंग, जाति, नृजातियता इत्यादि) की राजनीति का बोलबाला है।

1.4.2 सामाजिक – थीसिस (Social Thesis)

चार्ल्स टेलर के सामाजिक थीसिस अवधारणा, उनके आत्म के विश्लेषण से जुड़ी है, जो उदारवाद के अणुवाद (atomism) के विपरीत है। उदारवाद का अणुवादी सिद्धान्त व्यक्ति को समाज से बाहर अपने–आप में पूर्ण मानता है तथा यह स्वीकारता है कि व्यक्ति सामाजिक सन्दर्भ के बिना भी अपने आत्म निर्णय की क्षमता का विकास कर सकता है। इसके विपरीत टेलर का सामाजिक–थीसिस का तर्क यह कहता है कि 'आत्म निर्णय की क्षमता का प्रयोग केवल एक निश्चित प्रकार के सामाजिक वातावरण वाले एक निश्चित प्रकार के समाज में ही किया जा सकता है।' विकल्पों का चयन सामाजिक दशाओं के बिना संभव नहीं हो सकती। सामाजिक थीसिस की अवधारणा, सामुदायिक राजनीति, सामान्य हित, राज्य के हस्तक्षेप इत्यादि पर बल देती है।

चार्ल्स टेलर सामाजिक थेसिस के माध्यम से तीन बातों को सिद्ध करने का प्रयास करते हैं –

1. सामाजिक थीसिस उस सांस्कृतिक संरचना को बनाये रखने के लिए आवश्यक है, जो व्यक्ति के चुनाव हेतु सार्थक विकल्प उपलब्ध कराती है।
2. यह विकल्पों के मूल्यांयकन हेतु एक मंच प्रदान करती है।
3. यह समाज में एकजुटता एवं राजनीतिक वैधता के पूर्व शर्त रूप में अनिवार्य है।

1.4.3 सामुदायिक राजनीति : सामान्य शुभ की राजनीति

अन्य समुदायवादियों की भाँति टेलर भी अधिकार की राजनीति की जगह, सामान्य हित की राजनीति पर बल देते हैं। टेलर के अनुसार सामान्य हित एक ऐसा मानक उपलब्ध कराता है, जिसके आधार पर लोगों के चयन के विकल्पों का मूल्यांकन कर समुदाय के शुभ की जीवन शैली का मानक बनाया जा सकता है। इसी से सार्वजनिक जीवन में सहभागी लक्ष्यों की प्राप्ति की जा सकती है। टेलर तटस्थ राज्य की उदारवादी अवधारणा को नकारते हुए तर्क देते हैं कि एक राज्य को सामुदायिक हितों को बढ़ावा देना चाहिए न कि तटस्थ रहकर समाज के व्यक्तियों के बीच हितों के टकराव को बढ़ावा दे। एक समुदायवादी राज्य लोगों को शुभ की उन संकल्पनाओं को अपनाने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए जो समुदाय की जीवन शैली के अनुरूप हो तथा उन शुभ की संकल्पनाओं को हतोत्साहित करना चाहिए जिनका इनके साथ टकराव हो।

टेलर के अनुसार एक तटस्थ राज्य आत्म निर्णय के लिए जरूरी सामाजिक वातावरण की सही तरीके से सुरक्षा नहीं कर सकता और न ही यह उत्तम जीवन की संकल्पनाओं की तात्विक उच्चता या निम्नता के आधार पर कार्यों का औचित्य ही बता पाता है। समुदाय को केवल सामान्य हित की राजनीति के द्वारा ही कायम रखा जा सकता है, क्योंकि व्यक्ति के आत्म निर्णय पर कुछ सीमाएं लगाये बिना सामाजिक या सामुदायिक हित संभव नहीं है।

टेलर के अनुसार तटस्थता के सिद्धान्त पर शासित होने वाली राजनीतिक संस्थाएं, अपनी वैधता को कायम नहीं रख सकतीं क्योंकि राज्य के प्रति जुड़ाव के लिए आवश्यक है कि राज्य नागरिकों की वैध मांगों और उनके सामान्य जीवन शैली के द्वारा निर्धारित शुभ की प्राप्ति में सहयोग दे। टेलर के अनुसार सामूहिक फैसलों पर बढ़ता व्यक्तिगत हितो का दबाव (उदारवाद के कारण), अन्ततः लोकतंत्र की उपेक्षा करने लगता है। सामान्य हित की राजनीति के आधार के रूप में टेलर सांस्कृतिक परम्परा के लक्ष्यों एवं व्यवहारों के उपयोग पर बल देते हैं। इस प्रकार समुदायवादी की संभावना स्थानीय स्तर पर ज्यादा हैं, क्योंकि वहीं पर उत्तम जीवन के सवालों पर आम सहमति होने की संभावना होती है। टेलर के अनुसार उदारवादी लोकतंत्र वैधता के संकट की तरफ बढ़ रहा है, जहां न्याय के नाम पर नागरिकों को अधिक से अधिक कुर्बानी की मांग की जा रही है, परन्तु जिनके प्रति बलिदान की मांग की जा रही है, उनके बीच सहभागिता या सामंजस्य बेहद कम है।

टेलर के अनुसार लोग तब तक दूसरों के दावों को सम्मान नहीं दे सकते जब तक कि वे एक सामान्य शुभ के प्रति सहमत न हो तथा अपने को सामान्य षुभ की राजनीति के एक भाग के रूप में न पहचानते हों।

1.4.4 स्वतंत्रता व न्याय

चार्ल्स टेलर, हेगेल के दर्शन का विश्लेषण करते हुए कहा कि किसी समुदाय का शुभ उसके सदस्यों के इस दायित्व का संकेत देता है कि उन्हें अपने समुदाय में निहित नैतिक संभावनाओं को पूरा करना होगा। इसी दायित्व के द्वारा मानवीय स्वतंत्रता की संकल्पना को साकार किया जा सकता है क्योंकि मूल्यवान जिंदगी वह है, जो वचनबद्धताओं व सम्बन्धों से भरी–पूरी हो। दायित्व के अभाव में स्वतंत्रता बिना मूल्य के शून्य हो जाती है। चूँकि टेलर अधिकार व स्वतंत्रता के निर्धारण में सांस्कृतिक तत्वों को उनकी वरीयताक्रम के निर्धारक, वैधता, नैतिक आधार इत्यादि के रूप में स्वीकार करते हैं, अतः न्याय की उनकी अवधारणा सार्वभौम के बजाय सांस्कृतिक मूल्यों के सापेक्ष है, जिसके मानक समुदाय के आधार पर बदलते रहने चाहिए। सार्वभौम सिद्धान्त के सम्बन्ध में टेलर विभिन्न संस्कृतियों के परम्पराओं के बीच संवाद स्थापित करने की बात करते हैं जो वास्तविक, व बिना बल के सहमति पर आधारित हों।

1.5 सारांश

चाार्ल्स टेलर के समुदायवादी चिंतन का निष्कर्ष यह निकलता है कि समुदाय के भीतर ही व्यक्ति की आत्मपूर्णता, व्यक्तिगत पहचान और दुनिया के सम्बन्ध में एक दृष्टिकोण का विकास होता है। यह सहभागी प्रक्रिया ही नागरिक जीवन है और इसका आधार दूसरे लोगों के साथ मिलना–जुलना है। 'आत्म' अपने साध्यों के चुनाव के द्वारा नहीं आता बल्कि खोज के द्वारा आता है। सामाजिक एकता के आधार के रूप में एक सहभागी जीवन शैली होनी चाहिए। यदि एक राज्य के भीतर नागरिक एक जीवनशैली में सहभागिता करते हैं, तो वे स्वाभाविक रूप से एक राज्य में रहना चाहेंगे और राज्य की सीमाओं की वैधता स्वीकार करेंगे। टेलर राज्य से समुदाय की संस्कृति, भाषा इत्यादि बढ़ावा देने की बात करते हैं। परन्तु, सवाल यह है कि विविधतापूर्ण समाज में किस समूह की भाषा, संस्कृति इत्यादि को राज्य बढ़ावा दे? टेलर का यह कहना तो सही है कि समुदाय सार्वजनिक कार्य करने की प्रेरणा देता है, परन्तु जब यह प्रेरणा ही गलत मिले तो कार्य कैसे सही हो सकता है? टेलर यह नहीं समझा सका कि समुदाय में अनेक रूढ़िवादी तत्वों से कैसे

निपटा जाय या कभी कभी नवीन मूल्यों को भी समाज में लाना अनिवार्य हो जाता है, तो उन्हें कैसे प्रचलित किया जाये।

1.6 सन्दर्भ ग्रन्थ/उपयोगी पुस्तकें

1. Taylor, Charles : Sources of the Self : The Making of the Modern Identity.

2. Kymlicka, Will : Contemporary Political Philosophy.

3. Singh, S. N. : Modern Political Theory

4. Mulhall, S., and : Liberals and Communitarians Swif A.

5. Tams, H. : Communitarianism : A New Agenda for Politics and Citizenship.

1.7 सम्बन्धित प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. 'समुदाय' शब्द से सामान्यतः आप क्या समझते हैं ?
2. 'समुदायवाद' को परिभाषित कीजिए।
3. चार्ल्स टेलर अपने 'सामाजिक थीसिस' की अवधारणा से मुख्यतः किन बातों को सिद्ध करना चाहते हैं ?
4. राज्य का समुदाय के प्रति तटस्थ होना, चार्ल्स टेलर के अनुसार क्यों हानिकारक है?
5. 'सोशल थीसिस' क्या है?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. ''सामाजिक सन्दर्भ के बिना शून्य में चयन संभव नहीं'' इस कथन के सन्दर्भ में चार्ल्स टेलर के विचारों की समीक्षा कीजिए।
2. ''सामान्य शुभ व सामान्य हित की राजनीति ही राज्य व राजनीतिक संस्थाओं को वैधता प्रदान कर सकता है'' इस कथन के सन्दर्भ में चार्ल्स टेलर की उदारवादी राजनीति पर किये गये आक्षेपों की व्याख्या कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. चार्ल्स टेलर की लिखी पुस्तक का नाम है –

अ– ऑन वरचु ब– फॉर वरचु

स– सोर्सेस ऑफ सेल्फ द– थियरी ऑफ जस्टिस

2. चार्ल्स टेलर 'तटस्थ राज्य' की उदारवादी अवधारणा को नकारते हैं, क्योंकि यह–

अ– तटस्थ राज्य आत्म निर्णय के लिए जरूरी सामाजिक वतावरण की सही तरीके से सुरक्षा नहीं कर सकता।

ब– यह व्यक्ति के व्यक्तिगत हितों की रक्षा नहीं कर सकता।

स– यह समाज में टकराव के बजाय सहयोग को बढ़ाता है।

द– तटस्थ राज्य विभिन्न सांस्कषतिक मूल्यों व नैतिकता को बढ़ावा देता है।

3. यदि आप नारीवादी दृष्टिकोण रखते हैं, तो आप टेलर को बतायेंगे–

अ– वे सत्तावादी हैं।

ब– वे रूढ़िवादी हैं।

स– वे अधिनायकवादी हैं।

द– वे पूंजीवादी हैं।

4. चार्ल्स टेलर की 'सामाजिक थीसिस' की अवधारणा क्या नहीं बताती–

अ– विकल्पों के मूल्यांकन का आधार।

ब– समाज में एकजुटता एवं राजनीतिक वैधता की अनिवार्य पूर्व शर्त।

स– एक निश्चित सांस्कृतिक संरचना बनाये रखने की आवश्यकता

द– उदारवादी राजनीतिक मूल्यों का समर्थन ।

1.8 प्रश्नोत्तर

1. स 2. अ 3. ब 4. द

इकाई–02 माइकल वाल्जर

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 माइकल वाल्जर : एक परिचय
2.3 माइकल वाल्जर : समुदायवादी चिंतन
2.4 सारांश
2.5 उपयोगी पुस्तकें
2.6 सम्बन्धित प्रश्न
2.7 प्रश्नोंत्तर

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप –

- माइकल वाल्जर के विचारों को जान सकेंगे,
- समुदायवाद की बेहतर समझ के साथ समुदायवादियों द्वारा उदारवाद की गई समीक्षा पर टिप्पणी कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के दो दशक अमरीकी समाज में व्यक्ति की स्वतंत्रता को लेकर दो विपरीत उदारवादी मूल्यों में टकराव के रूप में जाने जाते हैं। एक तरफ रॉबर्ट नोजिक, स्वेच्छातंत्रवाद (Lebertarianism) का समर्थन करते हुए व्यक्ति को अपनी योग्यतानुरूप पूर्ण स्वतंत्रता देने की वकालत की तथा राज्य के सामाजिक कार्य को व्यक्ति की योग्यता के साथ अन्याय बताया। इसके विपरीत जॉन रॉल्स व्यक्ति की स्वतंत्रता की तो बात की परन्तु समाज के कमजोर वर्गों के हित में स्वतंत्रता पर अंकुश की बात भी की। परन्तु उपरोक्त दोनों धाराएं – स्वेच्छातंत्रवाद व समतावाद, किसी ने समुदाय के मूल्यों एवं संस्कृतियों को सार्वजनिक जीवन में नहीं स्वीकारा। दोनों विचारधाराएं मूल्यों के सार्वभौमीकरण पर बल देती थीं। अतः इसके प्रतिक्रिया स्वरूप माइकल वाल्जर का समुदायवादी चिंतन सामने आता है।

2.2 माइकल वाल्जर : परिचय

माइकल वाल्जर एक प्रसिद्ध राजनीतिक चिंतक हैं, जिनके विचारों की बुनियाद इस बात पर आधारित है कि किसी देश, धर्म, विचारधारा या समुदाय के प्रति मूल्यों निरूपण किस प्रकार होता है तथा समुदाय या समूह के सन्दर्भ अधिकार कैसे अपने स्वरूप को तय करता है? इसी आधार पर वाल्जर समुदाय, न्याय, समानता, बहुलवाद तथा राजनीति पर विचार व्यक्त करते हैं। इनकी सबसे प्रसिद्ध पुस्तक (Spheres of Justice : A Defence of Pluralism and Equality (1983) है। अन्य कुछ प्रमुख पुस्तकें -Just and Unjust wars (1977) तथा In God's Shadow हैं।

2.3 माइकल वाल्जर : समुदायवादी चिंतन

वाल्जर, चार्ल्स टेलर के आत्म की अवधारणा, सोसल थेसिस, समुदाय आधारित राजनीति तथा समुदाय सन्दर्भ मूल्यों को मोटे तौर पर स्वीकार करके उदारवाद की समुदायवादी समीक्षा करते हैं।

2.3.1 उदारवाद की समुदायवादी समीक्षा

वाल्जर के अनुसार उदारवादी एक असमाजिक समाज की स्थापना का प्रयास करते हैं, क्योंकि उदारवादी समाज के सदस्य किसी राजनीतिक या धार्मिक परम्पराओं को साझा नहीं करते। इसमें व्यक्ति अपने तर्क बुद्धि की सर्वोच्चता, स्वयं अस्तित्ववान की अवधारणा और अलग अलग अधिकारों के कारण व्यक्ति समाज में एकाकी बन जाता है, जिससे समाज की परम्पराओं समुदायों एवं सत्ताओं के बीच संघर्ष होता रहता है, जिससे इनका कोई सामान्य इतिहास नहीं रह जाता।

वाल्जर के अनुसार उदारवादी समाज में ''प्रत्येक व्यक्ति यह कल्पना करता है कि वह स्वयं स्वच्छंद है, समाज के प्रति कर्जदार नहीं है, और स्वयं से समाज में प्रवेश में करता है तथा अपने दायित्वों को स्वीकारता है। व्यक्ति यह सब केवल अपने संकटों को कम करने के लिए करता है, उसका लक्ष्य केवल अपने हितों की समाज से सुरक्षा चाहना है।'' अतः उदारवादी समाज में व्यक्तियों के बीच बंधन केवल प्राकृतिक अनिवार्यता, व्यक्तिगत हित एवं आवश्यकता पूर्ति के लिए है। इसलिए उदारवाद, व्यक्ति को यह नहीं बता सकता एक नैतिक संस्कृति का निर्माण कैसे हो तथा उसमें कैसे रहा जाना चाहिए?

वाल्जर के अनुसार उदारवादी समाज में सहमति का अभाव पाया जाता है क्योंकि अच्छे जीवन या शुभ के सम्बन्ध में लोगों के बीच मांसिक सामंजस्य नहीं होता। इसमें निजी सनक (स्वच्छंदता) की विजय को ही मूल्यवान माना जाता है। चयन की स्वतंत्रता तो यहां प्राप्त होती है, लेकिन चयन में कोई नियमन न रहने से मेल–मिलाप तथा क्रमबद्धता की कमी आ जाती है, जिससे तय करना कठिन हो जाता है, कि हम कल क्या थे और कल क्या रहेंगे? उदारवाद हर व्यक्ति के शुभ को अलग अलग मानता है तथा किसी अन्य का निर्णय किसी अन्य पर नहीं थोपना चाहता, यही संघर्ष का कारण है।

वाल्जर के अनुसार व्यवहार में उदारवादी समाज विखण्डित होता है तथा समुदाय का अर्थ (जहाँ सहमति, जुडाव तथा सृजनात्मक क्षमता हो) एकदम उल्टा बताता है। ऐसे में हम यह आशा नहीं कर सकते कि उदारवादी राजनीति के तरीके ही सबसे अच्छे ढंग से समस्याओं का समाधान कर पायेंगे। विखण्डित समाज में शुभ के लक्ष्यों के प्रति मतैक्य संभव नहीं हो सकता।

वाल्जर के अनुसार उदारवाद वास्तविक जीवन को गलत ढंग से व्यक्त करता है। उदारवाद समाज में सभी जुड़ाव को बाजार मित्रता (Market friendship) पर आधारित बताता है, जिसमें स्वार्थ सर्वोपरि होता है। परन्तु वाल्जर के अनुसार व्यक्ति का अपने माता–पिता, जिससे वह जन्म लिया है, सगे, सम्बन्धी, पड़ोसी, सहकर्मी, जिन्होंने उसकी सदैव मदद की है, वह कैसे उनसे बाजारू रिश्ते निभा सकेगा?

वाल्जर के अनुसार उदारवादी तटस्थ राज्य संघ की स्वतंत्रता को नष्ट कर देगा क्योंकि तटस्थता शक्तिशाली संघ को कमजोर संघों के शोषण से नहीं बचा सकती। साथ ही साथ यह समूहों में सामन्जस्य भी नहीं बैठा सकेगा क्योंकि तटस्थता में किसी भी समूह के हित को अन्य के हित में नहीं रोका जा सकता।

2.3.2 न्याय एवं समानता

समुदायवादी न्याय की अवधारणा की सबसे विस्तृत व्याख्या माइकल वाल्जर ने दिया है, जिसे 'जटिल समानता' (Complex equality) के सिद्धान्त के नाम से जाना जाता है। वाल्जर की न्याय की अवधारणा जॉन रॉल्स की अवधारणा से बिल्कुल भिन्न है। जॉन रॉल्स अपने न्याय सिद्धान्त को 'निष्पक्ष समानता' (Fair Equality) कहते हैं। इसमें वे एक ऐसी मूल स्थिति (Original

Position) की कल्पना करते हैं जिसमें व्यक्ति अज्ञान के पर्दे (Veil of Ignorance) बैठा होता है, जिससे व्यक्ति अपनी आवश्यकता, योग्यता, हित इत्यादि के बारे में नहीं जानता। ऐसे ही व्यक्ति न्याय के सम्बन्ध में दो सिद्धान्तों पर सहमत होते हैं –

अ) समान स्वतंत्रता का सिद्धान्त, जिसके तहत स्वीकारा जाता है कि सबको ऐसे समान स्वतंत्रता का अधिकार मिले जो दूसरे की वैसी स्वतंत्रता के साथ निभ जाये।

ब) यदि राज्य सामाजिक व आर्थिक विषमता के आधार पर स्वतंत्रता में हस्तक्षेप करना चाहे, तो ऐसे कार्यों से –

(1) हीनतम स्थिति वाले व्यक्तियों को अधिकतम लाभ मिले (भेद मूलक सिद्धान्त)

(2) उपरोक्त भेदमूलक सिद्धान्त अपनाये जाते समय अवसर की उचित समानता के सिद्धान्त का पालन हो।

उपरोक्त सार्वभौम प्रवृत्ति वाले न्याय की धारणा के विपरीत वाल्जर का न्याय सिद्धान्त, समाज की विविधता एवं उनके सामाजिक शुभों की धारणा के सापेक्ष है। वाल्जर के अनुसार एक समुदाय या समाज के मूल्य, योग्यता या नैतिकता के मानक दूसरे समाज से अलग होते हैं, जिससे उनके शुभ की धारणा अलग अलग होती है। इन्हें आपस में नहीं बदला जाना चाहिए।

वाल्जर, रॉल्स के 'साधारण समानता' (Simple Equality) की धारणा का खण्डन करते हैं। साधारण समानता की रॉल्स की धारणा में राज्य को किसी भी बाधा या संकट को दूर करने हेतु बार–बार हस्तक्षेप की आवश्यकता होती है, जो भेदमूलक सिद्धान्त को निरर्थक बना देता है। इसके विपरीत जटिल समानता में वितरण में स्वायत्तता पायी जाती है (समुदाय की), जिसका समर्थन खुद व्यक्तियों द्वारा किया जाता है, न कि राज्य द्वारा। यह व्यवस्था क्षेत्रीय एकाधिकार पर आधारित होना चाहिए। क्षेत्रीय या स्थानीय एकाधिकार में यह हो सकता है कि शुभ के निर्धारण में कुछ ही व्यक्ति भाग लें, परन्तु इसमें शक्ति के बल पर लोगों की आवश्यकताएं नहीं तय की जाती। ये आवश्यकताएं स्वयं समुदाय द्वारा तय की जानी चाहिए।

समानता के बारे में वाल्जर लिखते हैं ''यह लोगों के बीच जटिल सम्बन्ध है, जिसमें वे शुभ मध्यस्थ होते हैं, जिन्हें हम बनाते हैं, जिसमें सहभागिता करते हैं और स्वयं के बीच बँटवारा करते हैं। यह एक अधिकार की पहचान नहीं है। यह वितरण के विविध मानक की मांग करती है जो अपने

में सामाजिक शुभ की विविधता के दर्पण होते हैं'' । अतः वाल्जर के अनुसार न्याय समाज विशेष की नैतिक प्रभुता पर आधारित होगा।

इस प्रकार वाल्जर न्याय को समुदाय के अन्दर ही खोजने की बात करते हैं क्योंकि उनके अनुसार हमारे पास संस्कृति व इतिहास से बाहर निकलने का कोई रास्ता नहीं है। उनके अनुसार न्याय की जरूरतों को पहचानने का एकमात्र तरीका यह देखना है कि किस तरह से हर विशिष्ट समुदाय सामाजिक वस्तुओं के मूल्य को समझता है। यदि कोई समाज अपने सदस्यों के साझी सहभागी समझदारियों के अनुरूप (According to shared understanding) कार्य करता है तो वह न्यायसंगत है। ये सहभागी समझदारियाँ उस समाज की बुनियादी विशेषता को बताने वाले व्यवहारों व संस्थाओं में अभिव्यक्त होती हैं। समाज में यह सहभागी समझदारियॉ जटिल समानता (Complex Equality) की मांग करती हैं, जिसका तात्पर्य 'एक ऐसी व्यवस्थाा से है जो सभी वस्तुओं को बराबर करने की कोशिश नहीं करती बल्कि यह इस बात को सुनिश्चित करना चाहती है कि एक क्षेत्र (जैसे – सम्पत्ति) की असमानता दूसरे क्षेत्र (जैसे – राजनीतिक शक्ति, स्वास्थ्य सेवा इत्यादि) में न फैले।'

वाल्जर अपनी पुस्तक 'स्फीयर्स ऑफ जस्टिस' में संस्कृति सापेक्ष न्याय की अवधारणा को स्पष्ट करने हेतु भारतीय जाति व्यवस्था का उदाहरण दिया है, जो मूलतः गैर उदारवादी समाज का उदाहरण है, जहां समाजिकता का तात्पर्य एकीकृत और पदसोपानीयता है। वाल्जर के अनुसार यह समाज अपने मानकों के अनुसार न्यायसंगत समाज हो सकता है। वाल्जर इस बात को स्वीकार करते हैं कि कई समाज न्याय की इस अवधारणा को नहीं स्वीकारते तथा कुछ समाज न्याय को अधिकारों व वस्तुओं के वास्तविक असीमित असमानता के रूप में भी देखते हैं।

2.3.3 बहुलवाद : वितरण का एक मात्र तरीका

वाल्जर के अनुसार मानव समाज एक वितरणात्मक समुदाय है, जहां वितरण के किसी एक मानक को नहीं अपनाया जा सकता। त्याग, योग्यता, जन्म व रक्त सम्बन्ध, मित्रता, आवश्यकता, राजनैतिक वफादारी, समाज में अनेक हित समूहों का अस्तित्व इत्यादि; वितरण के प्रश्न को जटिल बना देता है। वाल्जर के अनुसार ऐसे में रॉल्स के 'वितरणात्मक न्याय' (Distributive justice) को नहीं अपनाया जा सकता, इसके लिए हमें वितरण के बहुलवादी सिद्धान्त को अपनाना होगा क्योंकि यही समाज में वैध हो सकता है। वितरण

को भिन्न भिन्न सामाजिक शुभों को अलग अलग कारणों, अलग अलग तरीकों तथा अलग अलग एजेंटों द्वारा बाँटा जाना चाहिए, क्योंकि यह किसी विशेष इतिहास एवं सांस्कृतिक बहुलता के लिए अनिवार्य है।

2.3.4 राष्ट्र–राज्य एवं बहुसंस्कृतिवाद

राष्ट्र–राज्य की अवधारणा के उदभव में संस्कृतिक विविधता को प्रोत्साहित किया है, जिसे वर्तमान प्रजातांत्रिक समाज में न दबाया जा सकता है और न ही कम किया जा सकता है। अल्पसंख्यक, जो विचारों एवं जीवनशैली में बहुसंख्यक से अलग हैं, ऐसे में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि दोनों साथ कैसे रह सकते हैं तथा दोनों समान तथा स्वतंत्र कैसे रह सकते हैं? दोनों समान है या भिन्न–भिन्न, यह प्रश्न आज अत्यधिक संवाद का विषय बन जाता है। इसके समाधान हेतु वाल्जर अपनी 'जटिल समानता' के सिद्धान्त के तहत समुचित निबंधन के द्वारा एक अच्छा समुदाय पर बल देते हैं। इसमें सांस्कृतिक बहुलता के आधार पर स्वायत्तता होनी चाहिए। इसमें इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि सहभागी मूल्य समय व स्थान के अनुसार बदलते रहते हैं। अतः इसके लिए सार्वभौम संस्कृति के बजाय क्षेत्रीय व विशेष संस्कृति पर बल होना चाहिए।

2.3.5 राजनीतिक समुदाय एवं राजनीति की धारणा

वाल्जर के अनुसार राजनीतिक समुदाय, लोगों की सहभागी समझदारियों पर आधारित ऐसा समुदाय होता है, जहां इस बात का निर्णय होता है कि हमें संस्कृति और इतिहास द्वारा प्रदत्त सामाजिक शुभों का वितरण कैसे करना चाहिए। इतिहास व संस्कृति से अलग विचार–विमर्श निरर्थक होगा। वाल्जर के अनुसार राजनीतिक समुदाय, एक ऐसे नैतिक समुदाय के समान होता है, जहां लोगों को एक समुदाय की सम्पत्ति व वैधानिक पहचान के रूप में जाना जाता है। यही पहचान, सार्वजनिक नीति को तय करने में भागीदार होती है। इसीलिए वाल्जर के अनुसार कल्याणकारी राज्य का औचित्य केवल राज्य की सदस्यता के आधार पर स्थापित किया जा सकता है, अधिकार की धारणा के आधार पर नहीं।

अपने राजनीति के दृष्टिकोण के सम्बन्ध में वाल्जर का कहना है ''मै राजनीति के सम्बन्ध में लोकतंत्र के उदारवादी समाजवाद के नजदीक हूँ। परन्तु मेरा सामाजिक लोकतंत्र का प्रारूप उन आवश्यकताओं पर बल देता है, जो लोग अपने समुदाय के प्रति रखते हैं, जिसे सामाजिक लोकतांत्रिक लोग इसलिए नजरअन्दाज कर दिये थे, क्योंकि वे अपने को बहुत अधिक राज्य और उसे क्या करना है पर केन्द्रित कर लिये थे।''

2.4 सारांश

वाल्जर के अनुसार व्यक्ति कोई एकाकी प्राणी नहीं है। उसका 'मूल' समुदाय से ही पनपता है क्योंकि वह उसी में पैदा होता है तथा उसी से संस्कार ग्रहण करके अपना बौद्धिक विकास करता है। अतः समुदाय के प्रति उसका आदर व सम्मान स्वाभाविक है। राजनीति में व्यक्ति अपने सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक परिवेश में रह कर ही भाग लेता है। अतः राजनीति द्वारा मूल्यों का आधिकारिक आवंटन वह अपने मूल्यों के आधार पर चाहता है। अतः एक न्याय संगत समाज के लिए एक सार्वभौम मानक, जो सामाजिक मूल्यों का आवंटन करने पर बल देता हो, लागू नहीं किया जा सकता। ऐसा आवंटन लोगों को बाहर से थोपा हुआ जान पड़ेगा और लोग राजनीतिक प्रक्रियाओं को सहजता से स्वीकार नहीं करेंगे। इसके लिए राज्य समाज में जटिल समानता के सिद्धान्त को वितरण हेतु अपनाना चाहिए, जिससे समाज में सांस्कृतिक बहुलता एवं राजनैतिक प्रक्रियाओं की वैधता दोनों बनी रहे। परन्तु वाल्जर के विचारों के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती यह आ जाती है कि क्या आधुनिक प्रजातंत्र इतनी सांस्कृतिक विविधता को लेकर चल पायेगा? यदि न्याय को 'सहभागी समझदारी' के रूप में माना जायेगा तो इसकी पहचान मुश्किल हो जायेगी तथा सांस्कृतिक सापेक्षतावाद तो न्याय की मूल धारणा जो सार्वभौम नैतिकता का समर्थन करता है, को ही समाप्त कर सकती है।

2.5 सन्दर्भ ग्रन्थ / उपयोगी पुस्तकें

1.	Walzer, Michael	:	Spheres of Justice : A Defence of Pluralism and Equality.
2.	Kymlicka, Will	:	Contemporary Political Philosophy
3.	Singh, S.N.	:	Modern Political Theory
4.	Walzer, Michael	:	Interpretation and Social Criticism

2.6 सम्बन्धित प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. वाल्जर के अनुसार सरल समानता क्या है ?
2. वाल्जर के जटिल समानता की अवधारणा को अपने शब्दों में परिभाषित कीजिए?

3. वाल्जर के अनुसार राजनीतिक समुदाय क्या है ?
4. वाल्जर के अनुसार कल्याणकारी राज्य का औचित्य किस –किस आधार पर स्थापित किया जा सकता है ?
5. न्याय के वितरण के सम्बन्ध में वाल्जर क्यूं बहुलवादी आधार पर वितरण को एक मात्र तरीका बताते हैं ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. वाल्जर के उदारवाद की समुदायवादी समीक्षा पर टिप्पणी कीजिए।
2. ''न्याय के सार्वभौमिक सिद्धान्त की खोज एक भटकी हुई खोज है। न्याय के सिद्धान्तों को पहचानना दार्शनिक तर्क से ज्यादा सांस्कृतिक व्याख्या का प्रश्न है।'' इस कथन के सन्दर्भ में वाल्जर के मत को स्पष्ट करें।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. निम्न में से कौन सी वाल्जर की पुस्तक है –

   अ– ऑन वरचु　　　　ब– सोर्सेस आफ सेल्फ

   स– स्फीयर्स आफ जस्टिस　　द– थियरी आफ जस्टिस

2. वाल्जर के उदारवाद की समुदायवादी समीक्षा का मुख्य आधार –

   अ– उदारवाद द्वारा व्यक्ति को समुदाय का एक अंग मानना ।

   ब– राज्य द्वारा व्यक्ति की स्वतंत्रता में बाधा ।

   स– व्यक्ति का राज्य द्वारा सामाजिक सुरक्षा न दिया जाना।

   द– उदारवाद की यह धारणा कि व्यक्ति स्वच्छंद है तथा वह समाज के प्रति कर्जदार नहीं है।

3. वाल्जर के अनुसार उदारवाद वास्तविक जीवन को गलत ढंग से व्यक्त करता है, क्योंकि –

   अ– उदारवादी समाज में व्यक्तियों के बीच सभी जुड़ाव बाजारू मित्रता (Market Friendship) पर आधारित होते हैं ।

   ब– यह समाज में विखण्डन के बजाय सृजनात्मक एकता पर बल देता है।

   स– यह व्यक्तियों को चयन के विकल्प, सार्थक नियमन के साथ प्रदान करता है।

द– इसमें जीवन को राज्य द्वारा नियंत्रित किया जाता है।

4. वाल्जर के अनुसार तटस्थ राज्य संघ की स्वतंत्रता को नष्ट कर देगा क्योंकि–

अ– यह संघ को राजनीतिक गतिविधि से रोकेगा।

ब– यह शक्तिशाली संघों द्वारा कमजोर संघों के शोषण से नहीं बचा सकता तथा समूहों के हितों में सामंजस्य नहीं ला सकता।

स– यह संघ को मान्यता नहीं देता।

द– व्यक्ति के हितों को यह संघ से खतरा मानता है ।

2.7 प्रश्नोत्तर

1. स 2. द 3. अ 4. ब

इकाई–03 उत्तर–आधुनिकता एवं राजनीति

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 आधुनिकता से उत्तरआधुनिकता

3.3 उत्तर आधुनिकता अर्थ एवं परिभाषा

3.4 कुछ प्रमुख उत्तर आधुनिक विचारक

3.5 उत्तर आधुनिकता के विविध आयाम (राजनीति, समाज, संस्कृति एवं अर्थव्यवस्था)

3.6 सारांश

3.7 उपयोगी पुस्तकें

3.8 सम्बन्धित प्रश्न

3.9 प्रश्नोंत्तर

3.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप –

- उत्तर–आधुनिकता की सामान्य धारणा से परिचित हो सकेंगे,
- इसकी विशेषताओं, लक्षणों व समाज एवं राजनीति के सन्दर्भ में इसकी धारणा जान सकेंगे,
- इसके कुछ विचारकों के विचार भी जान सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

पिछली दो इकाइयों में हमने देखा कि कैसे टेलर एवं वाल्जर उदारवादी मूल्यों की सार्वभौमिकता का खण्डन करके समुदाय एवं संस्कृति सापेक्ष मूल्यों की वकालत की। एक ऐसी ही विचारधारा द्वितीय विश्व युद्ध के बाद धीरे धीरे पनपने लगी जो आधुनिकता की मूलधारणा–वस्तुनिष्ठता, सार्वभौमिकता, संपूर्णता इत्यादि को नकारने लगी। यह प्रवृत्ति मूलतः भवन निर्माण एवं साहित्य में सर्वप्रथम आयी (आधुनिक जीवनशैली की निराशा के फलस्वरूप) परन्तु धीरे धीरे यह सामाजिक विज्ञानों की सभी उपशाखाओं में देखी गयी।

इसी नवीन प्रवृत्ति को उत्तर आधुनिकता कहा गया जो कुछ आधुनिक धारणाओं को स्वीकार करते हुए भी अनेक परम्परागत मूल्यों को भी अपनाया।

3.2 आधुनिकता से उत्तर–आधुनिकता

आधुनिकता एक बहुआयामी अवधारणा है, जिसमें व्यक्ति की गरिमा, सार्वजनिक मूल्यों में आस्था, व्यक्ति के परम्परागत विशेषाधिकार के बजाय व्यक्तिगत उपलब्धि को मान्यता तथा सार्वजनिक जीवन में जवाबदेही; पर बल दिया जाता है।

टेलकट पारसंस के अनुसार आधुनिक समाज वह है, जिसमें भावात्मक तटस्थता, विशिष्टता, सर्वव्यापकता, उपलब्धि और सामूहिकता के मूल्य होते हैं। इन मूल्यों का विकास चूंकि पुनर्जागरण काल से मानी जाती है, जिससे आधुनिकता भी अन्ततः इसी काल से प्रारम्भ मानी जा सकती है। आधुनिकता के इन्हीं मूल्यों को केन्द्र रख कर हीगल, लॉक, मार्क्स इत्यादि विचारकों ने अपने सिद्धान्त दिये जो सम्पूर्ण विश्व को एक ही सिद्धान्त एवं संस्कृति के द्वारा समझने का प्रयास किया। धीरे–धीरे इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप ही उत्तर आधुनिकता का विकास होने लगा।

उत्तर–आधुनिकता की शुरूआत फेडिरिको डी ओनिस (Fedirico de Onis) नामक लेखक से मानी जाती है, जिसने 1905–1914 के दौरान अपनी स्पेनिश एवं लैटिन अमरीकी कविताओं में ऐसे मुद्दे रखे जो आधुनिकता से अलग थे। 'उत्तर आधुनिकता' (Postmodernism) शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम 1939 में आरनोल्ड टॉयन्बी (Arnold Toynbee), ने तत्कालीन कुछ सामाजिक परिवर्तन को दिखाने के लिए किया था। टॉयन्बी ने कहा कि 1914 के बाद समाज में केवल कुलीन वर्ग ही आधिपत्य स्थापित नहीं कर रहा, बल्कि अब जन समाज भी बहुत महत्वपूर्ण हो गया है। इसे उसने जन समाज की विजय कहते हुए उत्तर आधुनिक समाज कहा। इसी प्रकार इसी समय बी0 बेल (B.Bell) ने भी 1939 में कहा कि 20वीं शताब्दी में आधुनिकता के दावे (बौद्धिकता, धर्मनिरपेक्षता, विज्ञान एवं तकनीकी विकास) के बावजूद धर्म का पुनरूत्थान (Revise) हो रहा है । धर्मनिरपेक्षता की आधुनिक धारणा धर्म को हटाने में असमर्थ प्रतीत हो रही है, जिससे यह समाज आधुनिक के बजाय उत्तर आधुनिक युग में प्रवेश कर रहा है। नीत्शे ने अपनी कविताओं के माध्यम से बताया कि भाषा, ज्ञान, नैतिकता, सुन्दरता इत्यादि का कोई सार्वभौम

मानक नहीं हैं। सत्य उसके अनुसार सापेक्ष होता है, जो समय के साथ साथ बदलता रहता है।

उत्तर आधुनिकता 1970 के दशक में फ्रांस में सर्वप्रथम भवन निर्माण (Architecture) में प्रचलित हुई, जहां आधुनिक कामप्लेक्स, आधुनिकता की समस्त सुविधाओं के बावजूद सुरक्षा एवं सहयोग के अभाव में मानव जीवन दुर्लभ होता जा रहा था। धीरे–धीरे वहाँ कामप्लेक्स संस्कृति (एक जैसे मकान, पड़ोसियों से जान–पहचान का अभाव, उपभोक्तावाद) को छोड़ कर ऐसे मकान बनाये जाने लगे, जिसमें आधुनिकता के साथ साथ अनेक परम्परागत तत्व भी शामिल होने लगे, जिसे उत्तर आधुनिक कहा जाने लगा। धीरे धीरे यह प्रभाव अर्थव्यवस्था, समाज, राजनीति सभी क्षेत्रों में दिखलाई पड़ने लगा। आधुनिकता से उत्तर आधुनिक परिवर्तन को हम निम्न बिन्दुओं के आधार पर समझ सकते हैं :–

मुद्दे	**आधुनिक**	**उत्तर–आधुनिक**
1. भवन निर्माण	एक सेट पैटर्न	आधुनिकता एवं परम्परा का मिश्रण, सेट पैटर्न नहीं।
2. उत्पादन	एक ही जगह पर अत्यधिक उत्पादन फोर्डवाद (Fordism)	ज्ञान व सूचना की प्रधानता से युक्त उत्तर फोर्डवाद,जिसमें उत्पादन कई जगह से होता है।
3. संगठन का स्वरूप	पद सोपानीय	पदसोपानीयता का अभाव, सभी समान
4. समाज	एकल परिवार	बिखरा परिवार
5. दर्शन	तार्किक प्रत्यक्षवाद	तथ्यों एवं मूल्यों दोनों को मान्यता
6. विचारधारा	सार्वभौमिकता की खोज	सार्वभौमिकता की खोज व्यर्थ है।
7. नैतिकता	उपयोगिता पर आधारित	परिस्थिति पर आधारित नैतिकता

8. धारणा	वृहद आख्यान (Metanarratic) तथा सिद्धान्त निर्माण पर बल	विखण्डन पर बल
9. विज्ञान	सार्वभौम सिद्धान्त (न्यूटन)	संभावना से युक्त सिद्धान्त (हाइजेनवर्ग)

3.3 उत्तर–आधुनिकता अर्थ एवं परिभाषा

उत्तर–आधुनिकता, जैसा कि नाम से स्पष्ट होता है, आधुनिकता के बाद की अवस्था है, जो शीघ्रता से आधुनिकता का स्थान लेती जा रही है। यह अवधारणा काफी लचीली है, कोई इसे आधुनिकता का ही एक चरण मानता है तो कोई इसे आधुनिकता से अलग। उत्तर–आधुनिकता की कोई सर्वसम्मत परिभाषा नहीं है, क्योंकि विचारकों ने समाज को समझने के लिए अलग–अलग सन्दर्भों में इसका प्रयोग किया है। यह एक आन्दोलन की भांति है जिसे दर्शन, कला, साहित्य, अर्थव्यवस्था, राजनीति, संस्कृति, भवननिर्माण इत्यादि के साथ साथ भावनाओं एवं मनोभावों में भी देखा जा सकता है। इसीलिए कुछ विद्वान इसे एक प्रकार की मानसिकता या मनोवृत्ति बताते हैं। यह आधुनिकता की विरोधी धारणा के बजाय आधुनिकता के पुनर्निर्माण पर बल देती है। यह एक ऐसी विचारधारा है, जिसमें दार्शनिक, भाषाविद, कलाकार, साहित्यकार, आदि सभी आते हैं। उत्तर–आधुनिकता के प्रमुख चिंतकों में – ल्योटार्ड (Jean Francois Lyotrad), फूको (Michael Foucault), दरिदा (Jacques Derrida), जेमसन (Fedric Jameson), बोड्रिलार्ड (Jean Baudrillard), रिचर्ड एश्ल (Richard Ashley), नेन्सी फ्रेसर (Nency Fraser) इत्यादि हैं।

उत्तर आधुनिकता का विचार यूरोप (विषेशतः फ्रांस) महाद्वीप में एंग्लो–अमरीकी सिद्धान्तों के सेट पैटर्न की आधुनिकता की धारणा के प्रतिक्रिया फलस्वरूप आया। यहाँ आधुनिक समाजों की पहचान औद्योगीकरण, उत्पादन के आधार पर व्यक्ति पहचान तथा वर्ग की एकता पर टिकी थी। इसके विपरीत उत्तर–आधुनिक समाज में व्यक्ति की पहचान उसके उपभोग, संचार एवं तकनीकी के आधार पर की जाने लगी। रिचर्ड गोट (Richard Gott) ने इसकी परिभाषा देते हुए कहा – "उत्तर–आधुनिकता, आधुनिकता से मुक्ति दिलाने वाला एक स्वरूप है। यह एक विखण्डित आन्दोलन है,

जिसमें सैकड़ों फूल खिल सकते हैं। उत्तर आधुनिक में बहुसंस्कृतियों का निवास हो सकता है।''

ल्योटाई ने उत्तर–आधुनिकता की अति संक्षिप्त परिभाषा देते हुए कहा – ''उत्तर–आधुनिकता की परिभाषा महान वृत्तान्तों/बृहद आख्यान (Metanarratives) में अविश्वास करना है। हमें सकलता (Totality) के खिलाफ युद्ध छेड़ देना चाहिए, इसकी अपेक्षा हमारी सक्रियता विशिष्टता (Difference) के प्रति होनी चाहिए। वास्तव में उत्तर– आधुनिकता केवल अधिकृत व्यक्तियों का औजार ही नहीं है, इसका लक्ष्य विशिष्टता के प्रति हमें संवेदनशील करना है और वे वस्तुएं जो हमें अनुपयुक्त लगती हैं, उन्हें उदारता के साथ अस्वीकार करने की योग्यता पैदा करना है।''

बोड्रिलार्ड उत्तर–आधुनिकता को अति यथार्थता (Hyper Reality) मानते हैं जो प्रतिकृति (Simulacrum) द्वारा निर्मित होती है और इस प्रतिकृति का आधार संचार होता है। इसी प्रकार जेमसन ने उत्तर–आधुनिकता को विलम्बित पूंजीवाद (Late Capitalism) कहा जिसमें संस्कृति की सामान्य क्रय विक्रय की वस्तु बन गई है। दरिदा ने उत्तर आधुनिकता को उत्तर संरचनावाद के भाषायी सन्दर्भ में देखा और विखण्डनवाद (Deconstruction) सिद्धान्त दिया जिसमें माना गया कि भाषा में शब्दों का अर्थ सदैव बदलता रहता है। इसी प्रकार फूको भी शक्ति व प्रभुत्व को सार्वभौम न मानकर इसे परिवर्तनीय माना और इसे ज्ञान से जोड़ कर देखा।

उपरोक्त सभी परिभाषाओं में वृहद आख्यान व सकलता को नकारने की कोशिश की गई है। यहां वृहद आख्यान से तात्पर्य ऐसे सिद्धान्तों एवं मानकों से है जो मानव इतिहास को सदैव एक सेट पैटर्न (निश्चित क्रम) पर चलता मानता है, जिसकी गति सदैव आगे की ओर होती है। जैसे – मार्क्स व हीगल का दर्शन। सकलता से तात्पर्य सार्वभौम मूल्यों से है जिसे सम्पूर्ण विश्व में लागू किया जाता है। उत्तर–आधुनिकतावादी विचारक स्थानीयता व विविधता के समर्थक होने के कारण इसका खण्डन करते हैं।

इस प्रकार उत्तर–आधुनिकता के विचार का केन्द्र बिन्दु यह है कि कोई भी चीज निश्चित नहीं है, सार्वभौम सत्य का पूर्ण ज्ञान जैसी धारणा कल्पना मात्र है। अतः इसे त्याग देना चाहिए। क्योंकि ज्ञान सदैव किसी न किसी समुदाय के दृष्टिकोण पर आधारित होने के कारण स्थानीय एवं पक्षपातपूर्ण होता है। इस प्रकार यह इतिहास के सभी मत एवं विचारधाराओं पर संदेह करता है, जो समाज की समरूपता में विश्वास करते हैं। इसका

प्रार्दुभाव उपभोक्तावादी पूंजीवाद से होता है जो संस्कृति का विरोध करता है तथा वास्तविकता की नकल इसमें आम बात हो जाती है।

3.4 कुछ प्रमुख उत्तर–आधुनिक विचारक

चूंकि उत्तर–आधुनिकता आज एक फैशन हो गया है, अतः सब विचारक आज कहीं न कहीं इससे प्रभावित दिखलाई पड़ते हैं। परन्तु यहां केवल पाँच विचारकों – दरिदा, ल्योटार्ड, फूको, बोड्रिलार्ड तथा जेम्सन के विचारों का अति संक्षेप में वर्णन किया जा रहा है, जिससे उत्तर–आधुनिकता को समझने में आसानी हो।

3.4.1 जॉक् दरिदा : विखण्डनवाद (Jacques Derrida : Deconstruction)

दरिदा एक फ्रांसीसी विचारक है जो उत्तर संरचनावादी विचारकों की श्रेणी में आते हैं। दरिदा का विखण्डवाद संरचनावादियों, विशेषकर सोसुर (Ferdinand Saussure) के प्रतिक्रिया स्वरूप आया। सोसुर जैसे भाषा विज्ञानी कहते हैं कि भाषा एक व्यवस्था है जो नियमों एवं उपनियमों (व्याकरण) पर आधारित होती है। इसमें आन्तरिक व्याकरण होता है जो भाषा में शब्दों का स्थान व उसका अर्थ तय करता है। उनके अनुसार भाषा प्रतीकों या चिन्हों से बनी होती है, जो दो प्रकार के होते हैं – शब्द को सूचित करने वाले (Signifier) तथा गुण को सूचित करने वाले (Signified)। गुण एवं शब्दों में यह आवश्यक नहीं कि सदैव सम्बन्ध हो क्योंकि वस्तु का नाम परम्परा पर भी होते हैं, जैसे किसी का नाम शंकर होने पर उसमें यह आवश्यक नहीं कि उसमें भगवान शिव के गुण हों। परन्तु सोसुर के अनुसार हम व्याकरण को पूरी व्यवस्था समझकर दोनों के अन्तनिर्भरता को समझ सकते हैं। व्यवस्था या संरचना समझकर किसी किसी वस्तु एवं उसके कार्य को आसानी से समझा जा सकता है, क्योंकि व्यवस्था नियमों से बंधी होती है।

दरिदा, सोसुर के उपरोक्त विचारों को नहीं मानते कि समाज की संरचना में हर चीज एकदम सटीक बैठी है तथा कोई भी तत्व इस संरचना से बाहर नहीं है। दरिदा के अनुसार अभी तक सभी चिन्तकों ने जो सिद्धान्त दिये हैं, वे एक संरचना या व्याख्या के तहत ही है, जिससे वे यथार्थता को नहीं बता सकते। दरिदा के अनुसार जो कुछ हम कहना चाहते है, हो सकता है कि सुनने वाला उसका दूसरा अर्थ लगा ले या हम कहना कुछ चाहते हैं

परन्तु सुनने वाला उससे अलग अर्थ लगा लें। हमें शब्दों के आधार पर यह नहीं कहना चाहिए कि उसने यह कहा है, बल्कि हमें चिंतक के मस्तिष्क को समझना होगा। शब्द नये–नये अर्थ को परिस्थिति के आधार पर नये–नये अर्थ ग्रहण करता रहता है। अतः दरिदा के अनुसार ''अर्थ अनिश्चित है।'' उसके अनुसार हम व्यक्ति के मस्तिष्क को उसके पाठ्य (Text) के आधार पर नहीं समझ सकते क्योंकि वह कहता है "Author is dead, long live tha text" अर्थात् लेखक की रचना तो बहुत पुरानी है परन्तु पाठक तो वर्तमान में अपने मूल्यों के आधार पर अध्ययन कर रहा है। समानता, स्वतंत्रता, न्याय, सत्य, नैतिकता इत्यादि के सम्बन्ध सार्वभौम मान्यताएं स्वीकार नहीं की जा सकती क्योंकि सभी संस्कृति सापेक्ष होती हैं। अतः पहले के वृहद आख्यान आंख बन्द करके नहीं स्वीकारा जाना चाहिए बल्कि इसके लिए विखण्डन का सहारा लेना होगा।

दरिदा के विखण्डन (Deconstruction) की अवधारणा भेद पर आधारित है, जो शब्द केन्द्रित विवेचन को नकारते हैं। इसका कार्य वृहद आख्यानों की अस्पष्टता को बाहर कर स्पष्ट करना तथा जो अर्थ तर्क की कसौटी पर खरा नहीं उतरता उसका विखण्डन करना है। दरिदा के शब्दों में – ''विखण्डन का मतलब होता है मूल पाठ को उसके निर्देश, संकेत, अनिश्चितता आदि के सन्दर्भ में पढ़ना। ऐसा करते हुए यह देखना कि इसमें कौन से अर्थ स्पष्ट हैं और कौन से अस्पष्ट। अस्पष्ट अर्थ को निकालना और तर्क की कसौटी पर खरा न उतरने पर उसे अस्वीकार करना ही विखण्डन है।'' अति सरल शब्दों में विखण्डन से तात्पर्य मूल पाठों (Text) का आलोचनात्मक अध्ययन करना है अर्थात इसमें निहित सत्य को बिना जांच–पड़ताल के न स्वीकारा जाय।

दरिदा के अनुसार मूल पाठ का केवल एक ही अर्थ हो, ऐसा नहीं है। उसके अनुसार एक ही शब्द के अनेक अर्थ हो सकते हैं, जो सन्दर्भ सापेक्ष होते हैं। अतः शब्दों का अर्थ संरचना के बजाय सन्दर्भ में खोजा जाना चाहिए।

3.4.2 मिशेल फूको : शक्ति व ज्ञान का विमर्श (Michael Foucault: Discourse of Power and knowledge)

फूको (1926–1984) एक फ्रांसीसी विचारक थे, जिन्हें शक्ति की अवधारणा की नई व्याख्या देने के कारण उत्तर–आधुनिक माना जाता है। दरिदा की भांति फूको भी एक व्यवस्था के तहत सभी चीजों के संयोजन को नकारते हैं। फूको इस बात को नहीं मानते कि सभ्यता का इतिहास उन्नति की सतत

गाथा है। फूको के अनुसार सभ्यता की उन्नति में सततता नहीं है, इसमें रूकावट, विखण्डन एवं आकस्मिकता का भी कुछ अंश पाया जाता है। इसके अनुसार समाज का विकास विमर्श (Discourse) के माध्यम से हुआ। विमर्ष से उसका तात्पर्य किसी चीज के बारे में लोगों के सोचने–समझने के तरीके या बातचीत करने की पद्धति से है, जो मिलकर लोगों की सामान्य धारणा बनाते हैं।

फूको के अनुसार शक्ति एवं सत्यता (Power and Truth) एक दूसरे से जुड़े हैं। उसके अनुसार शक्ति ही सत्य को पैदा करती है। सत्य इस बात पर निर्भर है कि शक्ति का प्रयोग कौन कर रहा है तथा कैसे कर रहा है? उसके अनुसार प्रत्येक शासक सत्ता में बने रहने के लिए शक्ति का प्रयोग करता है। परन्तु सदैव शक्ति से सत्ता नहीं रखी जा सकती। सत्ता में बने रहने के लिए शासक ज्ञान शक्ति (Knowledge power) का प्रयोग करके शासित को अपने पक्ष में प्रभावित करता रहता है। फूको शक्ति को क्षमता मानने से संकोच किया क्योंकि यह कभी–कभी गलत भी हो सकती है, जैसे – अमरीका – वियतनाम युद्ध ।

फूको के अनुसार शक्ति का अपने आप में कोई अर्थ नहीं होता क्योंकि यह अपना अर्थ विमर्श के माध्यम प्राप्त करती है। विमर्श के द्वारा ही लोग वस्तुओं व मूल्यों के बारे में अपनी अभिवृत्तियाँ बदलते हैं । शासक वर्ग इन्हीं विमर्श को बदलकर शक्तिशाली बनता है। इस विमर्श को ज्ञान के द्वारा ही बदला जा सकता है। अतः ज्ञान ही प्रभुत्व का साधन है जो व्यक्ति समाज में सुरक्षित या असुरक्षित तथा समर्थ्य या असमर्थ्य बनाता है। समाज में जिसके पास विशिष्ट ज्ञान होगा वही शक्तिशाली होगा। अतः सार्वभौम सत्य व सार्वभौम शक्ति की धारणा गलत है।

3.4.3 फ्रेड्रिक जेमसन : विलम्बित पूंजीवाद (Fedric Jameson : late Capitalism)

जेमसन एक उत्तर–आधुनिक मार्क्सवादी विचारक है, जिसने उत्तर–आधुनिकता को मार्क्सवाद से जोड़ा। इनका उत्तर–आधुनिकता सम्बन्धी विचार इनके पूंजीवादी संस्कृति के विश्लेषण में निहित है। जेमसन मार्क्स के महान वृत्तान्त (अर्थात आर्थिक निर्धारणवाद एवं साम्यवाद आने की भविष्यवाणी) को सिद्धान्त स्वीकार करते हैं। परन्तु, वे पूंजीवाद के एक समान स्वरूप को नहीं स्वीकारते। जेमसन ने कहा कि पूंजीवाद नित नये अवतार ग्रहण करके ही आज तक चल रहा है। मार्क्स के समय इसने विशाल उत्पादन (Mass

Production) की रणनीति अपनायी, इसके बाद क्रमशः कारपोरेट पूंजीवाद एवं फोर्डवाद आया। वर्तमान में यह विलम्बित पूंजीवाद के रूप में है, जिसमें संस्कृति को भी बाजार में बेचा जाने लगा है। जेमसन के अनुसार पूंजीवाद का यह विकास अतिरिक्त श्रम (अतिरिक्त मूल्य) के बजाय सांस्कृतिक गतिविधियों द्वारा हो रहा है। आज के उत्तर–आधुनिक समाज की आर्थिक एवं सामाजिक संस्थाओं ने संस्कृति को नये नये मूल्यों में प्रस्तुत किया जा रहा है जिससे संस्कृति के मूल्यों में विस्फोट सा प्रतीत होने लगा है, जिससे मूल्यों में ठहराव गायब हो गया है।

जेमसन के अनुसार संस्कृति एवं अर्थव्यवस्था के आपस में मिश्रण के कारण संस्कृति बाजार में बिक रही है, जिसे सत्ता का समर्थन होता है। जेमसन के अनुसार मार्क्स, संस्कृति और पूंजीवाद के मिश्रण को न समझ सके थे जिसके कारण उन्होंने अपने सिद्धान्त में अधिसंरचना को वरीयता नहीं दी थी। जेमसन के अनुसार इस विलम्बित पूंजीवाद वाले उत्तर आधुनिक समाज में प्रचार साधनों द्वारा लोगों में आवश्यकता (Need) तथा कमी (want) में भ्रम पैदा करके जबरदस्ती मांग पैदा की जाती है। पूरा बाजार संकेतों और प्रतिकृतियों (Sign and simulation) के द्वारा वस्तुओं की बिक्री करता है। इस संस्कृति में सब कुछ बिना रोक टोक के चलता है क्योंकि यह समाज सतही है, जिसमें लोगों के बीच संवेदनशीलता धीरे–धीरे समाप्त हो रही है।

3.4.4 जीन–फ्रेकोज ल्योटार्ड : महान वृत्तान्त की मृत्यु (Jean-Francois Lyotard : Death of Meta-Narratives)

ल्योटार्ड (1926–1988) एक प्रसिद्ध उत्तर–आधुनिक विचारक (फ्रांसीसी) थे। इन्होंने अपनी पुस्तक 'The Post Modern Condition : A Report on Knowledge' में उत्तर आधुनिकता को 'महान वृत्तान्तों में अविश्वास तथा सकल ज्ञान (Total Knowledge) की धारणा का त्याग' के रूप में व्याख्यायित किया। इसी कारण ल्योटार्ड मार्क्सवादी होते हुए भी उसके महान वृत्तान्तों को नकार दिये। ल्योटार्ड के अनुसार, आधुनिक युग के सम्पूर्ण ज्ञान मार्क्स, हीगल, प्लेटो, लॉक इत्यादि के महान वृत्तान्तों में हैं, आज की परिस्थितियों में वैध नहीं है। महानवृत्तान्त के ज्ञान सार्वभौम वैध होने का दावा अवश्य करते हैं, परन्तु गहराई से जांचने पर पता चलता है कि ये नितान्त स्थानीय हैं और इनका लक्ष्य कुछ ही लोगों को सुख–सुविधाएं प्रदान करना रहा है।

ल्योटार्ड के अनुसार संसार बहुत विशाल है जिसमें असंख्य विविधता व्याप्त है। अतः सकलता में विश्व को समझ पाना संभव नहीं है । हमें समाज

को एकरूपता, सामूहिकता व सार्वभौमिकता के बजाय व्यक्तिकता, विखण्डता व अन्तर के आधार पर समझना होगा। ल्योटार्ड के अनुसार उत्तर–आधुनिक समाज में ज्ञान लाभ के लिए अर्जित किया जा रहा है न कि सर्वजन सुखाय हेतु। इसका कारण ज्ञान को उसकी उत्पादक क्षमता से जोड़ना है।

3.4.5 जीन बोड्रिलार्ड : आधुनिक समाज में उग्र टूटन (Jean Baudrillard : Radical Rupture in Modern Society)

बोड्रिलार्ड फ्रांसीसी विचारक हैं, जिन्होंने मॉस मीडिया की भूमिका के आधार पर उत्तर–आधुनिक समाज का विश्लेषण किया। इनके अनुसार उत्तर – आधुनिक समाज मूलतः संचार समाज है जिसकी एकता संचार से निर्धारित होती है। यह समाज एक उपभोक्तावादी समाज है, जो व्यक्ति या समूह की पहचान उपभोग के आधार पर करती है। इसी कारण इस समाज की संस्कृति में प्रतिकृति (नकल या सिम्यूलेशन्स) का प्रभुत्व होता है जिसके कारण यह समाज अतियथार्थ समाज में बदल जाता है। बोड्रिलार्ड ने मार्क्स की इसीलिए आलोचना की कि मार्क्स केवल उत्पादन सम्बन्धों पर ही बल दिया, उपभोग की चर्चा नहीं की।

बोड्रिलार्ड के अनुसार उत्तर–आधुनिक समाज प्रतिकृति (Simulation) का समाज है जिसमें संकेत तथा वास्तविकता इस तरह से संचार साधनों के प्रयोग से मिल–जुल गया है कि यह तय करना कठिन है कि कौन सी वस्तु वास्तविक है और कौन संकेत मात्र। आज संचार साधन सूचना का इतना भारी बोझ व्यक्ति के सामने रख देते हैं कि वह इसके अर्थ को नहीं समझ पाता। जैसे – वर्तमान में प्रत्येक कोचिंग संस्थान अपने को सर्वोच्च होने का तर्क देना। आज मीडिया को समाज के दर्पण के बजाय बाजार का यंत्र मानना चाहिए।

3.5 उत्तर–आधुनिकता के विविध आयाम

जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया गया है कि उत्तर–आधुनिकता एक आन्दोलन स्वरूप आयी, जिससे इसका प्रभाव धीरे धीरे समाज, अर्थव्यवस्था, संस्कृति, राजनीति आदि सभी क्षेत्रों में दिखलाई देने लगा।

उत्तर–आधुनिक समाज में परिवार का आधार एकल परिवार (Nuclear family) के बजाय बिखराव वाला परिवार है जिसमें व्यक्ति, उसकी पत्नी तथा

बच्चे सभी अलग–अलग जगहों पर हैं, जिनमें जुड़ाव केवल संचार साधनों के द्वारा संभव हो पाता है। समाज परार्थ के बजाय स्वार्थ पर आधारित होता है। इसकी संस्कृति उपभोक्तावादी है। इसमें अर्थव्यवस्था का रूपान्तरण उत्तर–फोर्डवाद या उत्तर–औद्योगीकरण में हो जाता है, जिसमें उत्पादन केन्द्रीकृत व समूह उत्पादन के बजाय विकेन्द्रीकृत तथा क्वालिटी वस्तुओं का उत्पादन होने लगा। आज बाजार में वस्तु की कीमत उसकी तकनीक से मापी जाने लगी है। आज अर्थव्यवस्था में ज्ञान व सूचना महत्वपूर्ण हो गया है। आज पूरी चीज एक ही स्थान पर नहीं बन रही है। बल्कि उसका उत्पादन विखण्डित व विकेन्द्रीकृत है। जैसे – मोबाइल में बैट्री कहीं, उसका साफ्टवेयर कहीं तथा उसका हार्डवेयर अन्य जगह से बन कर आना।

3.5.1 उत्तर–आधुनिकता व राजनीति

उत्तर आधुनिकता में वर्ग आधारित राजनीति का धीरे–धीरे लोप हो रहा है क्योंकि इसका स्थान कई सामाजिक समूह लेते जा रहे हैं। आज नागरिकों के कई ऐसे अराजनीतिक समूह बनने लगे हैं, जिनका वर्ग राजनीति से कुछ लेना–देना नहीं होता – जैसे – पर्यावरणवादियो, महिलाओं, मानवाधिकार्यकर्ताओं आदि का समूह। इन समूहों ने जिस राजनीति प्रक्रिया को जन्म दिया है, उसे सूक्ष्म राजनीति (Micro Politics) कहा जाता है, जो मूलतः स्थानीय राजनीति होती है। पहले राजनीति के लिए किसी संगठन या दल की जरूरत थी, परन्तु आज इसकी आवश्यकता नहीं रह गई क्योंकि इसके लिए मुद्दे ही पर्याप्त होते हैं। उत्तर–आधुनिक राजनीति पहचान, अन्तर तथा जीवन शैली पर आधारित है जिसका उद्देश्य लोगों को मुक्ति, सहभागिता तथा जीवन की गुणवत्ता को सुनिश्चित करना है। यह सहभागी लोकतंत्र, विकेन्द्रीकरण तथा समुदायवादी व्यक्तिवाद पर बल देती है। इसका नारा 'Think globally, act locally' है, जिससे यह आज नव सामाजिक आन्दोलनों (New Social Movements) का आधार बन गई हैं ।

3.6 सारांश

उत्तर–आधुनिकता, आधुनिकता की धारणा में ह्रास का परिणाम है, जो परम्परागत रूढ़ियों के प्रति संदेह रखते हुए सार्वभौमिक सम्पूर्णता की धारणा को नकारती है। इसका जुड़ाव परम्परा से बना हुआ है। इसका विकास, लोकतंत्र मॉस मीडिया, वैश्वीकरण तथा उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण हो रहा है, इसकी मूलधारणा यह है कि कोई भी चीज निश्चित या सेट पैटर्न पर

नहीं है। इसके समर्थक महान वृत्तान्तों को मिथक बताते हुए अवैध बताते हैं, परन्तु इसे रद्द कैसे किया जाये या जन मानस से इन्हें कैसे हटाया जाये, इसकी रूपरेखा ये प्रस्तुत नहीं कर पाते। यदि हम प्रत्येक जगह सापेक्षता की इनकी मान्यता स्वीकार कर लें तो हम सच–झूठ में अन्तर नहीं कर सकते। इसीलिए जेमसन इसे यथास्थिति का समर्थक मानते हैं। हैबरमास उत्तर–आधुनिकता की विचारधारा को उसके सापेक्षता के कारण संदेहास्पद मानते हैं जो कोई लक्ष्य तय नहीं कर सकती। कोकर एवं कुक ने इसे हड़बड़ाहट की संस्कृति कहा जिसमें मूल्यों में तेजी से बदलाव होता रहता है।

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ / उपयोगी पुस्तकें

1.	Dosi, S.L.	:	Modernity, Post Modernity and Neo-Sociological Theories.
2.	Lyotard, Francois	:	The Post Modern Condition : A Report on Knowledge.
3.	Jameson, Fredric	:	Post modernism, or, the Cultural Logic of Late Capitalism
4.	Derrida, Jacques	;	Writing and difference.

3.8 सम्बन्धित प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. उत्तर–आधुनिक विचारकों के अनुसार वृहद आख्यान क्या हैं?
2. दरिदा के विखण्डनवाद को स्पष्ट कीजिए।
3. जेमसन की विलम्बित पूंजीवादी अवधारणा क्या है?
4. 'विमर्श (Discourse) ही शक्ति का वास्तविक स्रोत है' इस कथन के सन्दर्भ में फूको के विमर्श की धारणा स्पष्ट करें तथा इसका शक्ति प्राप्ति में भूमिका की विवेचना करें।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. ''यह वृहद आख्यानों के प्रति अविश्वास तथा सकलता की धारणा को

नकारती है।'' कथन के सन्दर्भ में उत्तर आधुनिकता की धारणा को स्पष्ट कीजिए।

2. ''उत्तर आधुनिकता राजनीति, समाज एवं संस्कृति के प्रति आधुनिकता से भिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है।'' इस कथन की व्याख्या उत्तर–आधुनिकता की मान्यताओं के आधार पर कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. उत्तर आधुनिकतावाद के सन्दर्भ में 'विलम्बित पूंजीवाद की धारणा सम्बन्धित है –

अ– ल्योटार्ड

ब– फूको

स– जेमसन

द– दरिदा

2. 'विखण्डन' (Deconstruction) का सम्बन्ध निम्न में से कि उत्तर आधुनिक विचारक से है –

अ– रिचर्ड एश्ले

ब– नीत्से

स– बोड्रिलार्ड

द– दरिदा

3. उत्तर आधुनिकतावाद की शुरूआत किस लेखक से मानी जाती है –

अ– फेडरिको डी ओनिस

ब– टायन्बी

स– सोसुर

द– नीत्से

4. Postmodernism शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम किया –

अ– फेडरिको डी ओनिस

ब– टायन्बी

स– बी. बेल

द– नेन्सी फ्रेसर

3.9 प्रश्नोत्तर

1. स 2. द 3. अ 4. ब

Notes

Notes